ग्रामीण विकास संदेश

वर्ष – 18
संयुक्तांक – 1, 2
जनवरी 2023 – दिसम्बर 2023

संस्था के संस्थापक
स्व० डॉ. गोपाल पाण्डेय

कार्यकारिणी सदस्य

संरक्षक
डॉ. एस.सी. पाठक

अध्यक्ष
प्रो० कृष्णा मिश्रा

सचिव
डॉ. हेमलता पन्त

सलाहकार मण्डल

प्रो. आर. एस. बिसेन
पूर्व कुलसचिव,
चन्द्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्यागिकी
विश्वविद्यालय, कानपुर (उ.प्र.)

डा. दुर्गा दत्त ओझा
पूर्व अध्यक्ष एवम् वरिष्ठ वैज्ञानिक
रासायनिक प्रयोगशाला,
भूतल जल विभाग, जोधपुर (राजस्थान)

प्रो. आनन्द कुमार श्रीवास्तव
पूर्व प्राचार्य
सी.एम.पी. डिग्री कालेज, प्रयागराज, (उ.प्र.)

प्रो० के. एन. उत्तम
भौतिक विज्ञान विभाग, इ0 वि0 वि0, प्रयागराज, (उ.प्र.)

डॉ० डी. के. श्रीवास्तव
संयुक्त निदेशक (कृषि)
उत्तर प्रदेश विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी परिषद, लखनऊ, (उ.प्र.)

डॉ. राजेन्द्र यादव
प्रधानाचार्य
कार्डेट, इफको, फूलपुर, प्रयागराज, (उ.प्र.)

डॉ. आनन्द सिंह
प्रो0 एवं सह निदेशक (प्रसार)
बाँदा कृषि एवं तकनीकी विश्वविद्याल, बाँदा, (उ.प्र.)

डॉ. हरेन्द्र कुमार मिश्र
उप कृषि निदेशक
कृषि भवन, लखनऊ, (उ.प्र.)

डॉ. ए.के. सिंह
असिस्टेन्ट प्रोफेसर
पादप रोग संभाग, शेरे काशमीर, कृषि विज्ञान एवं
तकनीनकी विश्वविद्यालय, चाथा, जम्मू

सम्पादक, मुद्रक एवं प्रकाशक
डॉ. हेमलता पन्त, प्रयागराज, (उ.प्र.)

संयुक्त–सम्पादक
डॉ. मनोज कुमार सिंह, प्रयागराज, (उ.प्र.)

सह–सम्पादक
श्री पीयूष रमन पाण्डेय, अपर सियांग (अरूणांचल प्रदेश)

विषय क्रम

- सम्पादकीय
- केकड़ा पालन
  हरि प्रसाद मोहले', संजय चन्द्रवंशी, भोसले रामेश्वर एवं पी0 जवाहर — 1–2
- भिन्डी के मुख्य रोग एवं नियंत्रण
  डा. अर्चना उदय सिंह — 3–7
- धान फसल में नाशीजीव प्रबंधन
  अरूणेन्द्र पाण्डेय, डा. प्रदीप कुमार1 एवं डा. अखिलेश कुमार — 8–12
- रेशम कीट पालन
  वाणी श्रीवैश्य — 13–15
- आम के पुराने एवं अनुत्पादक बागों की जीर्णोद्धार तकनीक
  डा0 विनय कुमार, डा0 प्रदीप कुमार मिश्र एवं डा0 मनोज सिंह — 16–18
- आंवला फल का मूल्य संवर्धन
  डॉ. मनोज कुमार सिंह — 19–20
- भूमिहीन किसानों की खेती–श्वेत बटन मशरूम
  अमित कुमार मौर्य, विन्नी जॉन, मुकेश कुमार, मधुमिता पाण्डेय और हेमलता पन्त — 21–24
- धान का हल्दी (कंडुआ) रोग, लक्षण और इलाज
  विन्नी जॉन, अमित कुमार मौर्य एवं मुकेश कुमार — 25–26
- गेंदा की रैटूनिंग – कृषक आय बढ़ाने का सशक्त उपागम
  डॉ. मनोज कुमार सिंह — 27–28
- वर्मीकम्पोस्ट : परिचय एवं उपयोगिता
  डॉ0 हेमलता पन्त, डॉ0 ज्योति वर्मा, निधि गुप्ता एवं अनुराधा यादव — 29–31
- सूरन जिमीकंद की खेती ने खोले सफलता के द्वार
  डा0 प्रदीप कुमार मिश्र, डा0 विनय कुमार एवं डा0 मनोज सिंह — 32–34
- उत्तर प्रदेश में रेशम की खेती : सम्भावनाएं एवं आवश्यकता
  डॉ. हेमलता पन्त — 35–36

स्वामी, जैविक विज्ञान एवम् ग्रामीण विकास समिति, 10/96 गोला बाजार, नई झूंसी, प्रयागराज, प्रकाशक एवं मुद्रक डॉ. हेमलता पन्त द्वारा प्रकाशित तथा शाइन ग्राफिक्स एण्ड प्रिन्टर्स जीरो रोड, प्रयागराज, मो0: 9335466300 से मुद्रित।
सम्पादक : डॉ. हेमलता पन्त

सम्पादक मण्डल

डॉ. उमाशंकर मिश्र, चित्रकूट
डॉ. एस.पी. विश्वकर्मा, प्रयागराज
डॉ. देवन्द्र स्वरूप, मैनपुरी
डॉ. संजय गोस्वामी, मुम्बई
डॉ. नवीन त्रिपाठी, मुम्बई
डॉ. प्रदीप सिंह, प्रतापगढ़
डॉ. प्रदीप कुमार, पांती, अम्बेडकर
डॉ. प्रदीप कुमार मिश्रा, गोंडा
डॉ. विकास गुप्ता, जम्मू
डॉ. अखिलेश त्रिपाठी, प्रयागराज
डॉ. हरपाल सिंह, झाँसी
डा. अश्वनी कुमार, मथुरा
श्रीमती तनया राय, प्रयागराज
डॉ. प्रदीप कुमार बरेलिया, झाँसी
डॉ. पूर्णिमा सिंह सिकरवार, सतना
डॉ. दीपक कुमार वर्मा, प्रयागराज
डॉ. अमित कुमार मौर्या, प्रयागराज

विषय क्रम

- **किसान उत्पादक संगठन – दोगुनी आय का नया रास्ता**
  डॉ. सूर्य नारायण, डॉ. मनोज कुमार सिंह एवं डॉ. हेमलता पन्त — 37–38
- **परंपरागत खेती में वर्मी कम्पोस्ट का महत्व**
  मधुमिता पाण्डेय, विनय कुमार मौर्या एवं अरविन्द मौर्या — 39–41
- **औषधीय फसल अश्वगंधा का कृषि व्यवसायीकरण**
  डा0 सियाराम, डॉ0 आर0के0 आनन्द, डा0 एस.के. वर्मा, डा0 जय प्रकाश एवं प्रमोद कुमार — 42–44
- **ट्राइकोग्रामा का उत्पादन सब्जियों की फसलों में प्रत्यारोपण एवं उपयोगिता**
  डॉ0 धर्मेन्द्र सिंह एवं डॉ0 अतुल कुमार कुशवाहा — 45–46
- **पशुओं को प्रमुख संक्रामक रोगों से बचाव हेतु समय से टीकाकरण आवश्यक**
  डॉ0 विद्या सागर, डॉ0 प्रदीप कुमार, डॉ0 रेखा, डॉ0 रामजीत एवं डॉ0 राम गोपाल — 47–49
- **ग्रामीण महिलाओं द्वारा प्याज संरक्षण के उपाय**
  रेनू आर्या और डॉ.हर्षिता — 50–52
- **सफेद मूसली– एक महत्वपूर्ण औषधीय पौधा**
  अनुभा श्रीवास्तव — 53–63
- **कृषक उत्पादक संगठन द्वारा कृषक आय संवर्धन**
  जय प्रकाश, एस0के0 वर्मा, सियाराम3, प्रमोद कुमार — 64–68
- **बकरी पालन कृषकों के लिये एक लाभकारी व्यवसाय**
  डॉ विद्या सागर, डॉ प्रदीप कुमार, डॉ राम जीत एवं डॉ0 रेखा एवं डॉ0 राम गोपाल — 69–72
- **मत्स्य पालन हेतु नए तालाब का निर्माण**
  प्रमोद कुमार, ए0के0 पान्डेय एवं एस0के0 वर्मा — 73–74
- **बीज उपचार क्यों और कैसे**
  सुनील कुमार एवं डॉ. वी.पी. शाही — 75–77
- **भारतीय समाज में ग्रामीण महिला भाक्तिकरण में शिक्षा का योगदान**
  साधना त्रिपाठी — 78–80
- **पपीता में रोग–व्याधि प्रबंधन**
  प्रदीप कुमार, प्रवीण कुमार मौर्य, राम गोपाल, विद्या सागर एवं राम जीत — 81–84
- **मृदा स्वास्थ हेतु हरी खाद का प्रयोग**
  डा0 शशिकान्त यादव, पंकज कुमार सिंह एवं डॉ0 विनय कुमार चौरसिया — 85–87
- **पपेन और उपयोगा**
  डॉ0 मनोज कुमार सिंह — 88
- **सब्जियों की जैविक खेती**
  डॉ0 रामगोपाल, डॉ0 प्रदीप कुमार, डॉ0 विद्यासागर एवं डॉ0 प्रवीण कुमार — 89–94
- **धान की फसल में जिंक की कमी एवं उसका निदान**
  डा0 शशिकान्त यादव, पंकज कुमार सिंह एवं डॉ0 विनय कुमार चौरसिया — 95–97
- **नियमित नियमित आय के लिए लाभदायक व्यवसाय बकरी पालन**
  डॉक्टर देवेंद्र स्वरूप, डॉक्टर विकास रंजन चौधरी, एवं श्री नरेंद्र कुमार वर्मा — 98–100

विषय क्रम

⊙ **सुगन्धित धान की बैज्ञानिक खेती**

डॉ. उमेश बाबू एवं डॉ0 राम भरोसे 101—103

⊙ **बोन्साई**

डॉ0 मनोज कुमार सिंह 104

⊙ **परवल की वैज्ञानिक खेती**

डॉ0 रामगोपाल, डॉ0 प्रदीप कुमार एवं डॉ0 विद्यासागर 105—109

⊙ **केले की उन्नत खेती**

डा0 शशि कान्त यादवए डॉ0 रामगोपाल एवं प्रवीण कुमार मिश्रा 110—113

⊙ **हरी खाद से बढ़ाएं खेतों की उर्वरा शक्ति**

डॉ0 रामगोपाल, डॉ0 विद्यासागर एवं डॉ0 प्रदीप कुमार 114—117

⊙ **अदरक की वैज्ञानिक खेती**

जय प्रकाश, अनिल कुमार, एस0 के0 वर्मा एवं सियाराम 118—120

⊙ **भिन्डी की वैज्ञानिक खेती**

आदित्य शर्मा एवं डॉ. हेमलता पन्त 121—123

⊙ **खाद्य सुरक्षा : शुष्क क्षेत्रों में उन्नत खेसारी उत्पादन एवं सुरक्षित उपभोग**

प्रदीप कुमार, राम गोपाल, विद्या सागर एवं राम जीत 124—126

⊙ **मत्स्य उत्पादन हेतु तालाब प्रबन्धन**

प्रमोद कुमार, ए0के0 पान्डेय एवं एस0के0 वर्मा एवं सियाराम 127—129

⊙ **भारतीय नारी की स्थिति : एक अध्ययन**

रत्न कुमार पाण्डेय 130—132

⊙ **मृदा एवं पर्यावरण स्वास्थ्य के लिए आवश्यक फसल अवशेष प्रबंधन**

राम जीत, प्रवीण कुमार मौर्य, विद्या सागर एवं प्रदीप कुमार 133—135

⊙ **पोषण वाटिका कुपोषण दूर करने का जरिया**

डा0 रेखा, डा0 प्रदीप एवं डा0 वरून 136—138

⊙ **शिमला मिर्च की वैज्ञानिक खेती**

डा0 रेखा, डा0 प्रदीप एवं डा0 वरून 138

⊙ **श्री अन्न (मोटे अनाजों) का मानव जीवन में महत्व**

डॉ0 राम जीत, डॉ0 विद्या सागर, डॉ0 प्रवीण कुमार, डॉ0 प्रदीप कुमार एवं डॉ0 राम गोपाल यादव 139—141

⊙ **वैज्ञानिक तथ्यों पर हो विज्ञान—गल्प—लेखन**

संजय गोस्वामी 142

सम्पादकीय !

भारत की जनसंख्या विश्व में अब प्रथम स्थान पर आ ही गयी है । बढ़ी हुई आबादी को उनकी मौलिक आवश्यकाताओं की पूर्ति हेतु कृषि, बागबानी और वानिकी पर निर्भर होना पड़ता है । हमारे देश में यह अच्छाई है कि हमारे पास हर प्रकार की ऋतुएं, मौसम और जैव विविधता है । आज भी हमारे पास लगभग 64–65 प्रतिशत कृषि भूमि है । वास्तविक भारत आज भी गाँवां में ही निवास करता है । कृषि भूमि और उत्पादन ठीक होने से ही हम सब जीवित बच पा रहे हैं । कृषि ग्रामीण अर्थव्यवस्था की रीढ़ है ।

अब विकास हो रहा है लेकिन विकास के नाम पर कीटनाशकों, फफूंदनाशकों, खतपरवार नाशकों, बिना मृदा परीक्षण के जरूरत से अधिक रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग, सही मात्रा में पानी का उपयोग न करना, प्लास्टिक का अंधाधुन्ध प्रयोग, पशुधन को न पालना आदि जैसे बहुत सारे कारण हैं जिनसे मृदा का स्वास्थ्य खराब हो रहा है । पर्यावरण प्रदूषित हो रहा है तथा नित नयी बीमारियों पौधों, जानवरों एवम् मनुष्यों में उत्पन्न हो रही है ।

अब कृषि जोतों का आकार भी कम होता जा रहा है, अतः अब आवश्यकता यह है कि सही कृषि प्रशिक्षण और जानकारी ली जाय । जो भी योजनाएं सरकारी हैं उनसे लाभ लिया जाए । संतुलित उर्वरक व जल, रोगरोधी प्रजातियों का प्रयोग, सस्य समायोजन, जैविक कृषि को अपनाना, एकीकृतनाशी जीव प्रबन्धन करना, भौतिक व यांत्रिक विधियों का प्रयोग करके रासायनिक विधियों को धीरे–धीरे कम करने की जरूरत है । अर्थात परम्परागत और नवीन विधियों को संतुलित रूप से एक साथ मिलकर प्रयोग करने की आवश्यकता है जिससे हमारी कृषि अच्छी हो, मृदा जल व पर्यावरण में सुधार हो और बीमारियों में कमी आये जिससे ग्रामीण विकास और बढ़ता जाये। कृषि से जुड़े जो व्यवसाय हैं उन्हें युवाओं को अपनाने की अति आवश्यकता है ।

मैं ग्रामीण विकास सन्देश का 18वाँ संयुक्त अंक आप सभी के सम्मुख ला रही हूँ। इस अंक में 45 कृषि एवम् ग्रामीण विकास से सम्बन्धित लेख हैं । मैं आशा करती हूं कि आप सभी इस अंक से कहीं ना कहीं लाभान्वित होंगे । मैं अपने सभी लेखकों को इस अंक में सहयोग देने हेतु धन्यवाद समर्पित करती हूं तथा आपके अति महत्वपूर्ण सुझावों की मुझे अपेक्षा हमेशा रहेगी ।

सुझावों की प्रतीक्षा में ....

सम्पादक !

केकड़ा पालन

हरि प्रसाद मोहले', संजय चन्द्रवंशी, भोसले रामेश्वर एवं पी0 जवाहर
मात्स्कीय महाविद्यालय एवं अनुसांधान संस्थान तुथूकुड़ी – 628 008

केकड़ा पालन

आप ने मछली पालन, कुक्कुट पालन, और पशुपालन सुना होगा। ऐसी ही कुछ पालन विधि है, जिसे किसान करके बहुत ही ज्यादा मुनाफा कमा सकते है, जिसे हम केकड़ा पालन कहते है। आज कि दुनिया मे हमारे किसान ज्यादा लाभ पाने के लिये ज्यादा तर रासायनिक खाद का उपयोग करते है, जिससे भूमि कि उर्वरक क्षमता समाप्त हो जा रही है और इससे हमारे पर्यावरण पर भी काफी प्रभाव होगा। इस सबसे बचने के लिये सिर्फ एक ही उपाय है और वो है, नये तकनीक का ज्यादातर उपयोग करना और उनमे से एक है केकड़ा पालन। जिससे किसान बिना किसी रासायनिक खाद का उपयोग करके कम समय और कम जमीनो मे भी ज्यादा लाभ ले सकता है। केकड़ा पालन एक ऐसी तकनीक है जिससे हमारे किसान एकीकृत खेती जैसे– धान के साथ और इसके अलावा मछली पालन, मुर्गी पालन एवम् बतख पालन के साथ भी किया जा सकता है।

जमीन का चयन– केकड़ा पालन के लिये हमे सबसे पहले उस जमीन का चुनाव करना है जहा कि मिट्टी भुरभुरा चिकनी और काली किस्म कि हो क्योकि ऐसे मिट्टी मे जल धारण क्षमता ज्यादा होती है। जहा पानी का स्त्रोत भरपुर या फिर उसके आस–पास नदी हो।

बीज

बीज का चयन – बीज का चयन करते समय हमे इन बातों पे ध्यान देना है कि, बीज अच्छी प्रजाति कि हो, कम समय मे ज्यादा बड़हाव हो, असानी से वातावरण मे अनुकुल हो और स्वस्थ हो।

बीज का संग्रह– केकड़ा पालन के लिये हमे सबसे पहले बीज कि जरूरत होती है, तो बीज का संग्रह उन जगहो से कर सकते जहाँ पहले से कोई पालन कर रहा हो या फिर हमारे प्रकृतिक संसाधन जैसे– नदी, तालाब, जलाशय आदि। संग्रह करने के लिये बासं से बने पिंजरा या जाल का उपयोग कर सकते है।

पालन विधि– केकड़ा पालन मुख्य रूप से दो प्रकार से कर सकते है–

- **तलाब में पालन**
- **पिंजरा में पालन**

तालाब में पालन – तालाबो मे केकड़ा पालन के लिये उसकी आकार छोटी या फिर 0.5 –2 हे0 तथा गहराई 80 – 100 सेंमी0 तक होनी चाहिये। सबसे पहले तालाब को अच्छी से साफ करने के बाद में पानी भरना होता है, पानी भरने के बाद उसमें 100–200 किग्रा0 पर हे0 चूना डालना चाहिये जिससे पानी का पीएच क्षारकता हो जो हमारे तालाब का उत्पादकता बनी रहे। इसके बाद तालाब को चारो ओर से बांस और जाल की सहायता से घेर दे ताकि केकड़ा तालाब से बाहर न निकल सके और तालाब में जो मेड़ होते है उसमें पानी बाहर निकलने

के लिये पाईप लगा दें ताकि तालाब का पानी बाहर निकल सके क्योकिं पालन के दौरान बीच—बीच में 30—50 प्रतिशत पानी बाहर निकाल सके। बाद में जो हम संग्रह किये हुये छोटे केकड़ो को 1000 पर हे0 नग से तालाब में डाले तथा उसे चारा के रूप में छोटी मछली, मुर्गी आदि को 5 प्रतिशत शरीर के वजन अनुसार खिलाना है। इस तरह लगभग 5—6 माह तक होने के बाद जो हमारा केकड़ा है वो बाजार में बेचने लायक तैयार हो जाता है।

तालाबो मे केकड़ा पालन

पिंजरा में पालन— केकड़ा को पिंजरा पालन के लिय पिंजरा का आकार 1मी0 X 1मी0 X 20 सेंमी0 की होने चाहिये। इस तरह कि आकार लगभग 9—10 पिंजरो को एक—साथ हर एक पिंजरा में 20—30 नग केकड़ा रख कर पालन किया जा सकता है। पिंजरा बनाने के बास कि लकड़ी या प्लास्टीक एंव जाल का उपयोग कर सकते है। पिंजरा तैयार हो जाने के बाद इसे हम नदी, तालाब, और जलाशयों में रख के रस्सी से बांध कर वहां पर केकड़ा का पालन कर सकते हैं।

पिंजरा में केकड़ा पालन

बाजार में बेचना— इस तरह के पालन के बाद केकड़ो को हाथ या जाल की सहायता से पकड़ कर किसान बाजारो में असानि से बेच कर बहुत ही ज्यादा लाभ ले सकते हैं।

बाजार में बेचना

केकड़ा पालन लाभ—

- ये कम समय और कम लागत में तैयार हो जाती है
- कम समय में ज्यादा लाभ ले सकते है
- इसमे अधिक मात्रा में प्रोटीन मिलता है, जो सेहत के लिये फायदे मंद है।

❖ ❖ ❖

भिन्डी के मुख्य रोग एवं नियंत्रण

डा. अर्चना उदय सिंह
सूत्रकृमि विज्ञान संभाग,
भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली–110012

भिण्डी संसार के मुख्यतः सभी भागों में उगाई जाने वाली 90–100 दिन की सब्जी की फसल है। इसका जनक मुख्यतः ऐशिया या अफ्रीका को माना गया है।यह विटामिन ए, बी तथा सी का मुख्य स्त्रोत है। इसमें प्रोटीन, खनिज लवण तथा आयोडीन भी मुख्य रूप से मिलता है। इसके तने के फाइवर को पेपर बनाने के काम में लाया जाता है। भिन्डी गर्म मौसम व मिट्टी के उच्च तापमान में उगाई जाने वाली एक खरीफ की फसल है। दिन और रात का उच्च तापमान इसकी अच्छी पैदावर के लिए जरूरी है। अधिकतर किसान अच्छे पैसे लेने के लिए इस जनवरी से ही बुवाई शरू कर देते है। दो महीनो मे फल देने लगती है। अधिकतर पैदावार गर्मी के महीनों में होती है। इसके लिए मुख्यत : 25–30^{0}C तापमान जरूरी है और अधिक पैदावर देता है।

भिण्डी की औसत पैदावार 20 टन / हे0 होती है परन्तु कुवैत में 68.8 टन / हे0 तक पाई गई है। भिन्डी की पैदावार मिट्टी का प्रकार, तैयार के ढंग, समय पर बुवाई के ढंग, बीज, सिंचाई, खाद तथा निराई गुड़ाई आदि पर निर्भर करती है। बीमारियों को भी नजर अन्दाज नहीं किया जा सकता। हर साल भिण्डी पर कीड़ें और बीमारियों का अलग–अलग प्रभाव पड़ता है। यह विषाणु का प्रभाव, पौधों की प्रतिरोधक क्षमता तथा वातावरण के ऊपर निर्भर करता है। बीमारियों का समेकित प्रबन्धन ही एक अच्छा कारगर तथा सस्ता तरीका है। लेकिन बहुत से उत्पादक इस बारे में कम जानकारी रखते हैं। पेड़ी की फसल की अधिक बीमारी वाली जगहों पर नहीं उगाना चाहिए जब तक कि उचित सिचाई, खाद, गुड़ाई, खरपतवार निकालने तथा बीमारी प्रबन्धन का उचित प्रबन्ध न हो।

मुख्यतः निम्न लिखित सारिणी से इसकी पैदावार दी गई है।

देश	क्षेत्रफल / है०	पैदावर / मी० टन	पैदावार / कि०ग्राम / हैक्टर
संसार	780323	4990839	6395
वेनिन	24000	8600	3583
कैयरोन	18000	32000	1777
घाना	18000	100000	5555
भारत	370000	3550000	9594
नाइजीरिया	276000	730000	2644
पाकिस्तान	13833	106722	7715

भिण्डी में पोषक तत्त्व निम्न मात्रा में पाये जाते हैं।

अवयव	तत्त्व / 100 ग्राम (प्रतिशत)
पानी	89.6
प्रोटीन	1.9
फैट (चर्बी)	0.2
रेशे	1.2
केलोरी	3.5
फास्फोरस	5.6 mg
सोडियम	6.9 mg
विटामिन ए	88 I.U
राइवोफ्लेविन	0.1 mg
एस्कारविक एसिड	8 mg
सल्फर	30 mg
मिनरल	0.7 mg
कार्बोहाइड्रेटस	6.4 mg
कैल्शियम	66 mg
लोहा	1.5 mg
पोटेशियम	103 mg
निकोटिनिक एसिड	0.6 mg
विटामिन सी	13 mg
मैग्नीशियम	43 mg
कापर	0.19 mg

1. फ्यूजेरियम म्लानि रोग :– इस रोग का जनक फ्यूजेरियम आक्सीस्पोरम है। इस रोग का मुख्य लक्षण पौधे में एक विशिष्ट प्रकार का मुरझान होता है। इसमें पौधा पीला पड़ जाता है तथा वृद्वि रूक जाती है। पत्तियाँ मुड़ जाती है, पौधा मुरझान होने से पूर्व पत्तियों में शिरा प्रकट होता है। कभी–कभी पत्तियाँ दिन में लटक जाती है व रात को सामान्य हो जाती है परन्तु आखिर में पौधा मुरझा कर मर जाता है। पौधे के सवहनी वंडल काले धारीदार हो जाते है एवं रोग का अधिक प्रकोप होने की दशा में पूरा तना काला हो जाता है। कभी–कभी पौधा स्वस्थ दिखायी पड़ता है परन्तू उसकी शीर्षस्थ कलिका व फल सूख जाते है।

2. सर्कोस्पोरा पत्ती दाग रोग :– यह रोग सर्कोस्पोरा कवक की विभिन्न प्रजातियों एविलयोसचि, हिविस्काई, हिविस्काईना व मेलयेनसिस द्वारा होता है। इनके लक्षण अलग अलग होते हैं। सर्कोस्पोरा हिविस्काईना का संक्रयण होने पर पत्तियों की निचली सतह पर फफूंद की थाली तेलीय चकत्तियाँ बन जाती है। सर्कोस्पोरा एविलयोयचि का संक्रमण होने पर कोई निश्चित तरह के दाग नहीं बनते हैं बलिक पत्ती की निचली सतह पर काले कवक तन्तुओं द्वारा काले रंग की फफूँद का कज्जली आवरण सा बन जाता है।

सर्कोस्पोरा येलेपेनसिस का प्रकाप होने पर पत्तियों पर भूरे रंग के गहरे किनारे वाले अनियमित दाग बन जाता है। जिनके केन्द्र घूसर रंग के होते है।

3. **आर्द्रगलन** :– यह रोग पिथियम प्रजाति के कवक द्वारा होता है। इस रोग का प्रकोप देर से वोयी गई गर्मियों की फसल में अधिक देखा गया है। जब खेत में पौधों की संख्या अधिक एंव नमी भी अत्यधिक हो तो रोग का प्रवल प्रकोप होता है। ये कवक प्रायः शुरू में पौधों के भूमिगत भागों को प्रभावित करते हैं और बाद में भूमि के ऊपर पहुँच कर पौधों को तेजी से नष्ट कर देते है। साधारणतः संक्रमण वीजपत्राधार या भूमि की सतह के ठीक नीचे ऊपरी मूसला जड़ो पर होता है।

4. **फलगलन रोग** :– इस रोग के जनक पिलियम अफेनीडर्मेटम व फाडटोप्थोरा पासीवोरा हैं। इस रोग का प्रकोप तब होता है जब भिन्डी की पैकिंग ज्यादा कसकर की जाती है एवं ढुलाई तथा भण्डारण अधिक नमी व गर्मी वाली जगहों पर किया जाता है।

5. **फाइलोस्टिकटा पत्तीदाग रोग** :–इसका रोगजनक फाइलोस्टिकटा हिविस्काइन है। इस रोग में पत्तियों पर घूसर रंग के केन्द्र वाले बड़े आकार के दाग बनते हैं जो कि बाद में छिद्र में बदल जाते हैं। इस रोग के दाग पत्तियों पर सर्कोस्पोरा दागों के साथ बहुत कम देखने में आते हैं। इस रोगजनक के वीजाणु वेलनाकार, रंगहीन व पारदर्शक होते है।

6. **आल्टरनेरिया पत्तीदाग रोग** :– इस रोग का जनक आल्टरनेरिया हिविस्काईनम है। इस रोग के दाग पुरानी पत्तियों या कमजोर पड़ गये पौधों की पत्तियों पर मिलते हैं। इस रोग में पत्तियों पर भूरे रंग के विभिन्न आकार वाले उपवृताकार दाग बन जाते हैं। कभी–कभी संकेन्द्री घेरे भी बने पाये जाते है।

7. **पीत मोजेक रोग** :– यह रोग पीली शिरा मोजक विषाणु द्वारा होता है। इस रोग के विषाणु का संचारण एक पौधे से दूसरे पौधो में श्वेत मक्खी (विमिसिया टेवेसि व वि० अरजेंटी फौली) द्वारा रस चूसने से होता है। इस रोग में पत्तियों में शिरा प्रकटन वासिरा हरिमाहीनता हो जाती है। पत्तियों का हरा रंग परिवर्तित होकर पीला हो जाता है। पत्तियों पर चमकीली व पीली शिराओं का जाल अधिक स्पष्ट दिखाई देता है। रोग का अधिक होने पर पत्तियों में हरिमाहीनता अंतरा शिरा तक पहुचँ जाती है। पूरी पत्तियाँ पीले रंग की हो जाती है। नई पत्तियाँ पीली पड़कर छोटी रह जाती है। रोगी पौधै के फल आकार में छोटे, देखने में कुरूप तथा पीलापन लिए हुए हरे रंग के होते है।

8, **जड़गाँठ रोग** :– यह रोग मेलेडोगाइन स्पीसिज द्वारा होता है। इस रोग से पत्तियाँ हरे रंग पीले रंग की हो जाती है। ऐसे पौधों की वृद्धि रूक जाती है एंव पौधे कमजोर व छोटे रह जाते हैं। धूप में ऐसे पौधे मुरझाये हुए रहते हैं। संक्रमित पौधों पर फल बहुत कम आते है । सूत्रकृमि के आक्रमण की मुख्य पहचान के लिए पौधा उखाड़ कर देखने पर मोटी मोटी गाँठे मिलती हैं। ये गाँठे मुख्य जड़ व पार्श्व जड़ो में गोलाकार बढ़ी हुई विभिन्न आकार की मिलती है। पादप – परजीवी सूत्रकृमि वे सूत्रकृमि होते हैं जो पौधों की कोशिकाओं से अपना पोषण मुख में उपस्थित शूलनायक संरचना द्वारा करते हैं। इस सूत्रकृमि का वितरण भारत के सभी राज्यों में है। इसका फसलों के उत्पादन पर बुरा असर पड़ता है। सूत्रकृमि की वृद्धि का कारण मिट्टी में असंतुलित जैविक समीकरण है।

इनमें नर और मादा अलग–अलग होते हैं। ये सूत्रकृमि हल्की बलुई मिट्टी में 15°–30°C पर अधिक पनपते है। इनके संक्रमण से जुड़ों में गाठें बनती है। जड़ों में दरार पड़ने से फफूँदी और अन्य जीवाणु के आक्रमण से जड़े सड़ जाती है। सूत्रकृमि अक्सर जड़ ऊतकों के कार्यो में बाधा पहुँचाते है। जड़े मिट्टी से उचित पोषण नहीं ले पाती है। शाखायें कम निकलती हैं तथा खेतों में पीले, छोटे और छितराये पौधों के पैबन्द से दिखाई देते है।

जीवन चक्र :– जड़गॉठ सूत्रकृमि की एक या अधिक प्रौढ़ मादा संक्रमित जड़ में मिलती है। ये गोल सफेद तथा नाशपाती के आकार की होती है। मादा चिपचिपाये पदार्थ की थैली में अण्डे देती है। यह अण्डो का गुच्छा जड़ गाठों से लगा रहता है। द्वितीय स्तर के शिशु अण्डो से निकलकर मिट्टी में गतिशील रहते है। ये द्वितीय स्तर के शिशु सतह पर प्रहार करके कोशिकाभित्ति को भेद देते है। शिशु अन्दर प्रवेश कर जाते हैं। इनके कोशिकाभित्ति के भेद और मुखस्त्राव के कारण कोशिकीय परिवर्तन होता है। जड़ फूल जाती है और इसमें अन्दर शिशुओं में भी बदलाव आता है। विकास की प्रकिया के बाद नर और मादा बन जाते है। प्रत्येक मादा 200–400 अण्डे देती है तथा इनका जीवन चक्र 30–40 दिन में पूरा हो जाता है। इस प्रकार एवं फसल में कई पीढियाँ बन जाती है। इनके अत्यधिक विकास से पौधों पर विनाशकारी प्रभाव पड़ता है।

समेकित प्रबंधन

- गर्मियों में 10–15 दिनों के अन्तराल पर 2–3 बार गहरी जुताई करने व खेत को धूप में सूखने देने से सूत्रकृमियों की संख्या में कमी आती है।
- उचित फसल चक्र अपनाये। धान, गेहूँ, जो, जई ज्वार तथा बाजरा आदि फसलें जड़ गांठ रोग के सूत्रकृमि की रोधी पायी गई है। अतः इन्हें फसल चक्र में सम्मिलित करने से अच्छा प्रबन्धन होता है।
- रोग प्रतिरोधी किस्में जैसे आई.एस–9273, आई.एस–9857, आई.एस–7194, ए.आई.एस–6653, सी. एस.–8899, पूसा सावनी, पूसा मखवली व ए.4 उगाई जा सकती है।
- रोग से प्रभावित पौधो एवं सभी खरपतवार परपोशियों को जड़ सहित उखाड़ कर नश्ट कर दें।
- फ्यूजेरियम म्लानि रोग से बचाव के लिए जिराम कवकनाशी 45°C गर्म पानी में 0.3 प्रतिशत का घोल बनाकर उससे बीजोपचार करें।
- पत्ती दाग रोगों के नियंत्रण के लिए कॉपर आक्सीक्लोराइड (0.3 प्रतिशत) या थिरम (0.3 प्रतिशत) या मैंनकोजेव (0.25 प्रतिशत) कवकनाशी का छिड़काव नियमित रूप से करें। सर्कोस्पोरा पत्ती दाग रोग होने पर बेकोर (0.05 प्रतिशत) दवा का छिड़काव काफी प्रभावशाली पाया गया है। इसका छिड़काव सात दिन के अन्तराल से करना चाहिए।
- पीत मोजेक रोग के नियंत्रण के लिए पौधे उगने के प्रथम सप्ताह से डिमेक्रोन व न्यूवान के मिश्रण का मि. ली. दवा एवं 3 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें। यह छिड़काव 15–20 दिन के अन्तराल से करते रहे। इस रोग के नियंत्रण में नीम उत्पाद भी प्रभावी पाये गये है। नीम गोल्ड (1 प्रतिशत) अथवा नीम इंसेक्टीसाइड सोप (4 प्रतिशत) का छिड़काव बुवाई के 5 दिन बाद करें।
- जड़गांठ रोग के पूर्ण रसायनिक नियंत्रण के लिए बुवाई के समय अथवा उससे सात दिन पहले फोरेट से 10 मि० ग्राम प्रति एकड़ की दर से भूमि उपचार करे।
- सूत्रकृमि को सहनशील स्तर पर बनाए रखने के लिए बहुत सी विधियाँ प्रयोग में लाई जाती है इस स्तर को पौधा सहन कर लेते है तथा बहुत नुकसान नही होता।

भविष्य के लिए सुझाव :

- जो मिट्टी सेन्डीलोम तथा आरगेनिक प्रदार्थो में धनी है अधिक उपज के लिए उचित पाई गई है।
- भिन्डी के लिए मिट्टी की पी.एच 6.5 होनी चाहिए।
- बोने से पहले पूरी रात के लिए बीजों को भिगो दे।
- बीज को 1 से 1.5 इंच तक गहरे बोने चाहिए।
- पौधे से पौधे की दूरी 12–15 इंच तथा लाइन से लाइन की दूरी 36–42 इंच होनी चाहिए।
- एक जगह पर 3–4 बीज बोने पर बाद में कमजोर पौधो को उखाड़ देना चाहिए।
- मिट्टी में आरगेनिक खाद तथा हरी खाद डालनी चाहिए। नाइट्रोजन ज्यादा प्रयोग से बीमारियों का नियंत्रण देता है।
- ज्यादा जल्दी तथा देन से बोने से खरपतवार अधिक होते है।
- बिना रसायन तथा जैव नियंत्रण पर अधिक खोज होनी चाहिए। जिससे कि स्वास्थ्य तथा वातावरण दूषित न हो।

बीट प्लास्टिक पॉल्यूशन विषय पर भाषण प्रतियोगिता का आयोजन

प्रयागराज। सोसाइटी ऑफ बायोलॉजिकल साइंस एंड रूरल डेवलपमेंट प्रयागराज, उत्तर प्रदेश में «बीट प्लास्टिक पॉल्यूशन» नामक विषय पर भाषण प्रतियोगिता का आयोजन ऑनलाइन संपन्न हुआ। इस कार्यक्रम में सभी का स्वागत एवं कार्यक्रम की जानकारी डॉक्टर हेमलता पंत, सचिव, एस.बी.एस. आर.डी. प्रयागराज ने दी। डॉ. पंत ने कहा कि इस वर्ष की थीम संयुक्त राष्ट्र संघ ने «बीट प्लास्टिक पॉल्यूशन» चुना है इस अभियान में प्लास्टिक प्रदूषण के समाधान पर ध्यान केंद्रित किया जाएगा। कार्यक्रम में कार्यकारी सचिव सौरभ जेम्स सिंह ने संस्था के बारे में जानकारी दी। इस प्रतियोगिता में वेदांत मिश्र, विपिन यादव, आर्या कृष्णन, अश्वनी नाथ तिवारी, अनूप सिंह, आयशा, कृति एवं विष्णु मिश्रा ने अपने विचार रखे। वक्ताओं ने इकोब्रिक पर चर्चा के साथ ही प्लास्टिक से सड़क निर्माण की बात की। ऑयस्टर मशरूम से कुछ ऐसे कैप्सूल का निर्माण हुआ है जो प्लास्टिक को पुनर्नवीन बना सकता है, यह शोध ऑस्ट्रेलिया में हो रहा है। इस पर भी ध्यान केंद्रित कराया। कपड़े के थैले का प्रयोग, महुआ के पत्तों से बने पत्तल व दोनों का प्रयोग, स्टील एवम् बांस की बनी पानी की बोतलों का प्रयोग करने में प्लास्टिक के प्रयोग को कम किया जा सकता है। इस कार्यक्रम में निर्णायक की भूमिका में डॉक्टर देवेंद्र स्वरूप, डॉक्टर पल्लवी पंत एवं डॉ पीयूष रमन पांडे रहे। कार्यक्रम का संचालन डॉ विनी जान एवं धन्यवाद ज्ञापन डॉ अमित मौर्या ने किया। कार्यक्रम में डॉ मनोज कुमार सिंह, डॉक्टर ज्योति वर्मा, निधि गुप्ता, कुमारी अनुराधा, साधना त्रिपाठी, डॉ मुकेश कुमार भास्कर, श्रद्धा शुक्ला, अतुल तिवारी सहित कई शामिल थे।

धान फसल में नाशीजीव प्रबंधन

अरूणेन्द्र पाण्डेय, डा. प्रदीप कुमार[1] एवं डा. अखिलेश कुमार[2],
[1]कीट शास्त्र विभाग, कृषि विज्ञान संस्थान, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झॉसी, (उत्तर प्रदेश)
[2]पौध संरक्षण वैज्ञानिक, कृषि विज्ञान केन्द्र, कृषि महाविद्यालय, रीवा, (मध्य प्रदेश)

हमारे देश की सबसे प्रमुख धान्य फसलो मे से एक धान की फसल है। धान की फसल में मुख्य नाशीजीवों में हिस्पा, पत्ता लपेटक, तना छेदक, चैफर बीटल, ब्लास्ट, जीवाणु झुलसा, तना सड़न, भूरा धब्बा, तुष धब्बा, आभासी कंगयारी तथा पर्णच्छद सड़न का प्रकोप लगभग प्रतिवर्ष देखा गया है। यह कीट व बीमारियां फसल को बहुत नुकसान पहुंचाते हैं, अतः इनका रोकथाम अनिवार्य है।

धान के मुख्य कीट :–

1. पत्ता लपेटक :

पहचान व जीवन चक्रः– यह कीट नारंगी भूरे रंग का होता है। इस पर बहुत सी छितरी लाईनें–चकन्तियां और पंखों के किनारों पर गहरी धारियां होती हैं। मादा लगभग 300 अण्डे देती है। अण्डे देने की अवधि 3–4 दिन होती है। अण्डों से निकली हुई सुण्डियों का रंग हरापन लिए हुए सफेद होता है। इसकी सुण्डियाँ पत्ती के मोड़ों के अन्दर बनी रहकर हरे हिस्से को खाती हैं, जिससे पत्तियां सफेद झिल्लीदार, मुड़ी हुई हालत में पहुंच जाती है और झुलसी हुई दिखाई देती हैं। सुंडी की अवधि 15–17 दिन रहती है। प्यूपा बनने की अवधि 6–7 दिन रहती है। वयस्क पतंगे 3–4 दिन जिन्दा रहते हैं और इनका पूरा जीवन चक्र 24–59 दिन में पूरा होता है।

नुकसान :– पत्ता लपेटक कीट का नुकसान जुलाई माह के द्वितीय/तृतीय पखवाड़े में शुरू होता है अधिकतर प्रकोप अगस्त/सितम्बर माह में पाया जाता है।

रोकथामः–

– कीट ग्रसित पत्तों को काटकर नष्ट कर दें।
– खरपतवारों को विशेषकर घासीय किस्म के खरपतवारों को निकाल दें।
– नर्सरी तथा मुख्य खेतों से फसल अवशेषों को हटा दें या नष्ट कर दें तथा मेड़ों को भी साफ रखें।
– पौधों की सही सघनता रखें ताकि पौधे स्वस्थ रहें।
– उर्वरक की मात्रा सही व उचित समय पर दें।
– अण्ड परजीवी ट्राईकोग्रामा क्लिोनिस को 50,000 अण्डे प्रति हैक्टेयर की दर से 2–3 बार खेत में छोड़ें।
– कारटाप हाइड्रोक्लोराइड 50 एस पी 500 ग्राम दवा प्रति हेक्टेयर 500 लीटर पानी मे घोल बनाकर छिड़काव करें।
– यदि आवश्यक हो तो फसल में बाईफेन्थ्रिन 10 प्रतिशत ई.सी. को 500 मि.ली./हे. 500 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें।

2. तना छेदकः

पहचान व जीवन चक्रः– मादा कीड़े के आगे के पंख पीलापन लिए हुए होते हैं। इस कीड़े के आगे के पंखों के बीच में एक गहरा निशान होता है, जबकि नर कीड़े के पंखों पर बहुत से छोटे भूरे रंग के निशान होते हैं। एक

मादा कीड़ा लगभग 100–200 अण्डे समूहों में देती है ये अण्डे 5–8 दिन में फूटते हैं। पूरी तरह से विकसित सुंडियाँ हल्के पीले रंग की होती हैं। इस कीट का जीवन चक्र 31–40 दिन में पूरा होता है।

नुकसानः– लार्वा तने को अन्दर से खाकर फसल को हानि पहुंचाते हैं। तना सूख जाता है तथा सफेद बालियां बनती हैं। सफेद बालियों में दानें नही बनते तथा यह बालियां खींचने पर आसानी से बाहर निकल आती हैं। इस कीट का आक्रमण जुलाई से अक्टुबर तक होता है।

रोकथाम :

– पौधशाला की समय–समय पर निगरानी करें तथा अण्ड समूहों को नष्ट कर दें।

– ग्रसित पौधों को सुंडी सहित नष्ट करें ।

– अण्ड परजीवी ट्राईकोग्राम जापोनिकम के 50,000 अण्डे प्रति हैक्टेयर की दर से 2–3 बार खेत में छोड़े।

– नीम आधारित दवाईयों का छिड़काव करें।

– यदि फसल में केवल तना छेदक लगा है तो क्लोरेटे्निलिप्रोल 18.5 प्रतिशत एस.सी. का प्रयोग करना चाहिए।

– यदि फसल में तना छेदक के साथ पत्ती लपेटक रोग भी लगा है तो फिप्रोनिल 5 प्रतिशत एस.सी. का 500 मि.ली. मा्त्रा प्रयोग कर सकते है।

– 5 प्रतिशत सूखी बालिया दिखायी देने पर कारटाप हाइड्ोक्लोराइड 4 प्रतिशत दानेदार दवा जो कि बाजार मे केल्डान 4 जी अथवा पडान 4 जी के नाम ये आता है की 400 ग्राम प्रति नाली की दर से प्रयोग करे।

3. हिस्पाः–

पहचान व जीवन चक्र :– वयस्क भृंग नीले काले रंग का होता है और इसके उपर छोटे–छोटे कांटे होते हैं। इसकी सुण्डियां हल्का पीलापन लिए हुए होती है। प्रत्येक मादा भृंग औसतन 55 अण्डे देती है जो 3–5 दिन में फूटते हैं। सुण्डियां औसतन 14 दिन अन्दर ही खाती पीती हैं जिससे पत्तों के ऊपर सफेद रंग के धब्बे नजर आने लगते हैं। इसके बाद वयस्क निकलते हैं और पत्तों को बाहर से कुरेद कर खाना शुरू कर देते हैं, इससे पत्तों पर लम्बी सफेद धारियां पड़ जाती हैं और अधिक प्रकोप होने पर पत्ते सूख जाते हैं।

नुकसान :– लार्वा व प्रौढ़ दोनों ही पौधों को ग्रस्त करती हैं। लार्वा पत्तों के अंदर जाकर सफेद धारियां बनाते हैं। ग्रस्त पत्ते सूखकर मर जाते हैं। इस कीट का प्रकोप जुलाई माह के द्वितीय पखवाड़े से शुरू होता है। सबसे अधिक प्रकोप अगस्त व सितम्बर माह में पाया जाता है।

रोकथामः–

– मेड़ों से घास व अन्य खरपतवार निकाल दें।

– फसल की समय–2 पर निगरानी करना, व्यस्क भृगों को इकट्ठा करके मार दें।

– धान रोपाई के 10 दिन बाद या बोआई के 40 दिन की फसल में कारटाप 4 जी (पादान 4 जी) 25 किलोग्राम 3–4 सेंटीमीटर खड़े पानी में प्रति हैक्टेयर प्रयोग करें। पानी को 2–3 दिन के लिए खड़ा रहने दें।

– कारटाप हाइड्ोक्लोराइड 4 प्रतिशत जी आर की 400 ग्राम मात्रा 150 लीटर पानी मे मिलाकर प्रति एकड मे छिड़काव करें।

4. चैफर बीटल : सिटट् के निकलते ही यह कीट दानों को खोलकर दूधिया भाग को खा जाता है। इस कीट के प्रकोप से सिट्टे में खुले हुए खाली दाने बनते हैं। यह कीट पहाड़ी इलाकों में धान का मुख्य कीट बन चुका है।

रोकथामः–

– फसल की समय–2 पर निगरानी करना, व्यस्क कीटो को इकट्ठा करके मार दें।

– नीम आधारित दवाईयों का छिड़काव करें।

– इस कीट का आक्रमण होते ही एमामेक्टीन बेंजोएट की 8 ग्राम मात्रा प्रति पम्प की दर से या 625 मि.ली. साइपरमैथरिन 10 ई. सी. को 500 लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टेयर छिड़काव करें।

5. केस वर्म : कीट का प्रकोप उन खेतों में अधिक होता है जिनमें पानी की निकासी उचित ढंग से न हो। इस कीट की सुण्डियां पत्तों के सारे भाग को खा जाती हैं और केवल शिराएं रह जाती हैं। ग्रसित फसल ऐसे प्रतीत होती है जैसे कि फसल को कैंची से काट दिया गया हो। सुण्डियां अपने आपको पत्तें के थोड़े भाग में लपेट लेती हैं जो आसानी से गिर जाती हैं और पानी की सतह पर तैरती हुए नजर आती हैं। सुण्डियां पुराने पत्तों को छोड़कर नए पत्तों पर आक्रमण करती हैं। इसका आक्रमण प्रायः सितम्बर माह में अधिक देखने को आता है।

रोकथाम :

– खेतों से पानी निकाल दें।

– 125 मि.ली. सपीनोसेड 45 ई.सी. को 500 लीटर पानी में घोलकर कीट के आक्रमण होते ही छिड़काव करें। यदि आवश्यकता हो तो 20 दिन बाद फिर छिड़काव करें।

6. टिड्डे : इसके शिशु व प्रौढ़ नर्म पत्तों, टहनियों व दुधिया दानों से रस चूसते हैं। इससे बीज में चूसने वाले स्थान पर भूरा / काला धब्बा पड़ जाता है तथा पैदावार में कमी आ जाती है।

रोकथाम :

– 40 मिली. नीम के तेल को 10 लीटर पानी मे घोलकर छिड़काव करने से टिड्डे फसलो को नही खाते है।

– मेढ़ों से खरपतवारों व घास को निकाल दें।

– बिजाई से पहले खेत में कीट व्याधिकारक मेटरीजीयम / ब्यूबेरिया को केचुंआ खाद या गोबर की खाद में मिलाकर डालें।

– अधिक प्रकोप होने पर बेडियोकार्ब 80 प्रतिशत डब्ल्यू पी की 125 ग्राम मा़त्रा प्रति हेक्टेयर या डेल्टामेथ्रिन 28 प्रतिशत 450 मि.ली. प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें।

धान के मुख्य रोग :–

1. ब्लास्ट रोग : नर्सरी व दौजियां निकलने की अवस्थाओं में पत्तों पर छोटे भूरे से लाल–भूरे, जलसिक्त, नाव के आकार के धब्बे बनते हैं जो मध्य में धूसर रंग के होते हैं। ऐसे धब्बे तनों, पर्णच्छद, बालियों और दानों पर भी आते हैं। इस बीमारी से पौधे छोटे, बालियों की संख्या व दानों का भार कम हो जाता है। बालियों की रोग ग्रस्त गरीबा सिकुड़ जाती है और कई बार रोयेंदार फफूंद वृद्धि भी दिखाई देती है। यदि पौधों में शुरू में बीमारी आ जायें तो वह मर जाते है।

रोकथाम :–

– रोग प्रतिरोधी किस्में जैसे– पूसा बासमती 1637, आई. आर. 64, पंकज, जमुना, सरजु 52, आकाशी और पंत धान 10 आदि लगाऐं। पूसा सुगंध–5 (पूसा–2511) ब्लास्ट के प्रति मध्यम प्रतिरोधी है।

– नाईट्रोजन खाद की आवश्यकता से अधिक मात्रा न दें।

– नर्सरी में बीमारी 2–5 प्रतिशत हो तो कॉपर आक्सीक्लोराईड का 12 ग्राम 4 लीटर पानी प्रति 100 वर्ग मीटर क्षेत्र छिड़काव करें और उसके बाद आवश्यकतानुसार दौजियां निकलने के समय 2.250 कि0ग्रा0 कॉपर

आक्सीक्लोराईड का 750 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

2. **जीवाणुज झुलसा** :– यह बीमारी प्रायः फसल में फूल आने के समय आती है। पत्तों के ऊपरी किनारों से लम्बी धारियां बनती हैं। यह धारियां पूरे पत्ते पर आ जाती हैं और सफेद मटमैले रंग में बदल जाती हैं।

रोकथाम :–

– नर्सरी में भारी बीजों का प्रयोग करें। बीजों को 5 प्रतिशत नमक घोल में डालें व हल्के बीजों को निकाल दें।

– रोग–प्रतिरोधी किस्में लगाएं।

– खेतों में पानी खड़ा न रखें।

– रोग के लक्षण प्रगट होने पर 100 ग्राम स्टे्प्टोसाइक्लिन और 500 ग्राम कापर आक्सीक्लोराइड का 500 लीटर जल मे घोल बनाकर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें।

3. **भूरा धब्बा रोग** :– पत्तो पर अण्डाकार भूरे धब्बे जो बीच में से धूसर या सफेद होते हैं, प्रकट होते हैं। अधिक बीमारी आने पर पत्ते मुरझा जाते हैं। बालियों पर काले या गहरे–भूरे रंग के धब्बे बनते हैं जो कभी–कभी पूरी बालियों पर आ जाते हैं। जिससे दानों पर भी बीमारी आ जाती है। ऐसे में बालियां टूट जाती है सिकुड़े हुए दाने बनते हैं।

रोकथाम :–

– बीज को थीरम / कैप्टान (2.5 ग्राम / कि0ग्रा0 बीज) से उपचार करें।

– खडी फसल़ में इंडोफिल एम–45 या इंडोफिल जैड–78 की 2.5 किलो ग्राम मात्रा को 1000 लीटर पानी में घोलक प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव 15 दिनो के अन्तर पर करें।

– रोग ग्रस्त क्षेत्रों में प्रतिरोधी किस्में लगाएं।

– जिन क्षेत्रों में यह रोग उग्र रूप में प्रकट होता है वहां पर टेबुकोनाजोल 50 प्रतिशत + ट्राइफलोक्सिस 25 प्रतिशत की 8 ग्राम मात्रा + 2 ग्राम स्ट्प्टोसाइक्लिन मात्रा प्रति पम्प की दर से छिड़काव करे।

4. **तुष धब्बा** :– यह बीमारी उस समय आती है जब बालियां अभी अंदर ही होती हैं। काले भूरे रंग के धब्बे जो गोल होते हैं, तुष पर प्रकट होते हैं। यदि बीमारी जल्दी आ जाये और अधिक हो तो सारे दाने काले हो जाते हैं। यदि बीमारी थोड़ी हो तो कोई नुकसान नहीं होता है परन्तु अधिक बीमारी आने पर दानों का भार कम हो जाता है।

रोकथाम :–

– रोग–ग्रस्त क्षेत्रों में रोग प्रतिरोधी किस्में लगाएं।

– नाइट्रोजन उर्वरक की अधिक मात्रा न दें।

– जिन क्षेत्रों में यह रोग उग्र रूप में प्रकट होता है वहां पर 12 प्रतिशत कार्बेन्डाजीन + 63 प्रतिशत मैन्कोजेब की 500 ग्राम मात्रा को 150 लीटर पानी मे घोलकर प्रति एकड की दर से छिड़काव करे।

5. **आभासी / मिथ्या कांगियारी**:– दाना हरा, मखमली फफूंद बीजाणू के गोले में बदल जाता है और यह उस समय प्रकट होता है जब बालियां पकने लगती हैं। यह फफूंद का गोला बाहर से हरा परन्तु अंदर से पीले से नारंगी होती है फसल में फूल आने की अवस्था में यदि वातावरण में अधिक नमी, अधिक बारिश व बादल रहे तो बीमारी का प्रकोप अधिक होता है।

रोकथाम :–

– रोग–ग्रस्त बालियों को इक्ट्ठा करके जला दें।

– खेतों से पानी निकाल दें।

– नाईट्रोजन उर्वरक की अधिक मात्रा न दें।

– बीमारी के लक्षण अधिक दिखायी देने पर ट्राइफलोक्सी स्टोरबिन 25 प्रतिशत और टेबुकोनाजोल 50 प्रतिशत को 0.4 ग्राम प्रति लीटर पानी मे मिलाकर 15 दिन के अन्तराल मे दो बार छिड़काव करने से प्रभावकारी असर दिखायी देता है।

– कॉपर आक्सीक्लोराइड (50 प्रतिशत) के 0.3 प्रतिशत (90 ग्राम 30 लीटर पानी/कनाल) घोल या प्रोपिकोनाजोल 25 ई.सी. की 500 मि.ली. मात्रा प्रति हेक्टेयर छिड़काव करें। पहला छिड़काव बालियां निकलने के समय तथा दूसरा छिड़काव पहले छिड़काव के 10 दिन पश्चात करें।

6. तना सड़न :– जब पौधे 2–3 महीने के होते हैं तो पानी की सतह से पौधों पर छोटे–छोटे काले, बेतरतीब धब्बे पर्णच्छद पर आते हैं। तना नर्म पड़कर सड़ने लगता है तथा गिर जाता है। अधिक बीमारी आने पर पौधा मर जाता है। रोग–ग्रस्त पौधे या तो दाने पैदा नहीं करते या पैदा हुए दाने सिकुड़े हुए होते हैं। यदि प्रभावित पौधे के तने को खोलकर देखें तो उसमें काले रंग के गोल–गोल बिन्दुओं की तरह स्कलेरोशिया मिलते हैं जो इस बीमारी के लक्षण हैं ।

रोकथामः–

– खेत में अधिक समय के लिए पानी खड़ा न रहने दें।

– फसल की कटाई के बाद पौधों के अवशेषों को इक्ट्ठा करके जला दें।

– रोग प्रतिरोधी किस्में– बासमती प्रजाति की बीजें।

– तना सडन से बचाव के लिए कॉपर आक्सीक्लोराइड 50 प्रतिशत डब्ल्यू पी की 40 ग्रम मा़त्रा प्रति पम्प की दर से छिड़काव करें।

पर्यावरण को बचाने हेतु संकल्प

प्रयागराज। सोसायटी ऑफ बायोलॉजिकल साइंसेज एंड रूरल डेवलपमेंट, प्रयागराज तथा भारतीय प्राणी विज्ञान सर्वेक्षण के संयुक्त तत्वाधान में मिशन लाइव कार्यक्रम के तहत पर्यावरण को बचाने के लिए अपने दैनिक जीवन में हर संभव बदलाव लाने का तथा अपने परिवार, मित्र और अन्य लोगों को पर्यावरण के अनुकूल आदतों और व्यवहार के महत्व के विषय में सतत रूप से प्रेरित करने का संकल्प लिया गया। इस कार्यक्रम में डॉ हेमलता पंत, डॉ अमित कुमार मौर्य, डॉ डाखम जेमस सिंह, कु. वैष्णवी, कुमारी खुशी, मो. सिद्दीकी आदि उपस्थित थे।

रेशम कीट पालन

वाणी श्रीवैश्य
जन्तु विज्ञान विभाग
सी.एम.पी. पी.जी. कॉलेज, प्रयागराज – 211 002, (उ0प्र0)

कच्चा रेशम बनाने के लिए रेशम कीटो का पालन रेशम उत्पादन या रेशम कीट पालन कहलाता है । यह एक कृषि आधारित उद्यम रेशम उत्पादन है । रेशम उत्पादन का आशय बड़ी मात्रा में रेशम प्राप्त करने के लिए रेशम उत्पाद जीवो का पालन करता होता है । रेशम उत्पादन में भारत विश्व में चीन के बाद दूसरे नम्बर पर आता है । पिछले कुछ दशको में भारत का रेशम उद्योग बढकर जापान और पुर्व सोवियत संघ के देशों से भी ज्यादा हो गया है, जो कभी प्रमुख रेशम उत्पादक देश हुआ करते थे । भारत रेशम का बडा उपभोक्ता देश होने के साथ–साथ पाँच किस्म कि रेशम मलबरी, टसर ओकटसर, एरि और मूगा सिल्क का उत्पादन करने वाला अकेला देश है । मूगा सिल्क के उत्पादन मे भारत का एकाधिकार है । रेशम के इन किस्मो का उत्पादन मध्य और पूर्वोत्तर भारत के जनजातीय लोग करते है । और यहाँ चीन से ज्यादा मलबरी, कच्चा सिल्क और रेशम वस्त्र बनता है । रेशम का मूल्य बहुत अधिक होता है पर इसके उत्पादन की मात्रा बहुत कम होती है ।

रेशम कैसा बनता है : रेशम एक फाइबर है जो दो अलग–अलग प्रोटीन सीरिन और फाइब्रोइन से बना होता है। लगभग 80% रेशम फाइब्रोइन से बना होता है , जो कोर पर केंद्रित होता है। यह कोर से रिसिन की एक परत से घिरा हुआ है (जो शेष 20 रेशम बनाता है।) फाइबर की सेरिसिन परत में वर्णक (जैसाजैंथोफिल) की उपस्थिति रेशम को रंग प्रदान करती है । प्रत्येक प्रकार के रेशम का एक विशिष्ट रंग होता है ।

रेशम के प्रकार रंग मलबरी रेशम पीला / हरा एरी रेशम सफेद / लाल टसर रेशम कॉपर ब्राउन मूगा रेशम गोल्डेन

रेशम की किस्में : व्यवसायिक महत्व की कुल 5 रेशम किस्मे होती है जो रेशम कीट की विभिन्न प्रजातियों से प्राप्त होती है तथा जो विभिन्न खाद पौधो पर पलत है किस्मे निम्न प्रकार की है।

- शहतूत
- ओकतसर एंव उष्ण कटिबंधीयतसर
- मूगा
- एरी

विश्व के वाणिज्यि के रुप में लाभ उठाए जाने से रिसिजीनस कीट एवं उनके खाद पौधे ।

सामान्य नाम वैज्ञानिक नाम मूल्य स्थान शहतूत रेशम कीट बोम्बिक्समोरी चीन उष्ण कटिबंधीयतसर । रेशम कीट एन्थीरिया माइलिहा (भारत) ओकतसर रेशम कीट–एन्थीरिया प्रॉयली (भारत) ओकतसर रेशम कीट –एन्थीरिया प्रिथी (भारत) ओकतसर रेशम कीट एन्थीरिया रामामाई (भारत), एरी रेशम कीट (फिलसमिया रिसिनी) भारत ।

रेशम उत्पादन में भारत : भौगोलिक रूप से एशिया दुनिया में रेशम का मुख्य उत्पादक है और मुख्य

उत्पादन का 95% रेशम का हिस्सा चीन और भारत में उत्पादित होता है । इसके बाद जापान, ब्राजील का स्थान आता है । भारत रेशम का दूसरा सबसे बडा उत्पादक है । और रेशम का सबसे बडा उपभोक्ता भी है। इसकी एक परम्परा और संस्कृति से बंधे रेशम के घरेलू बाजार हैं। भारत मे शहतूत रेशम का उत्पादन मुख्य रूप से कर्नाटक, आंध्रप्रदेश राज्यो में होता है । तमिलनाडु, जम्मू और कश्मीर और और पश्चिम बंगाल, जबकि गैर शहतूत रेशम झारखंड, छत्तीसगढ ,उडीसा पूर्वी राज्यों में उत्पादित होता है ।

रेशम में अपनाई जाने वाली प्रक्रिया : शहतूत रेशम उत्पादन के लिए रेशम उत्पादन प्रक्रिया तीन प्राथमिक चरणों का अनुसरण करती है ।

मोरी कल्चर : शहतूत के पत्तो की खेती ।

रेशम कीटपालन : रेशम कीट के विकास को बढावा देना ।

रेशम कीट की रीलिंग : रेशम कट कोकून से रेसम के तंतुका निष्कर्षण ।

अंत में रेशम के तंतु एक साथ बुने जाते हैं और एक धागा बनाते है । इन धागो को अक्सर एक साथ जोडकर सूत बनाया जाता है ।

विशिष्ट डिजाइन एव बुनाई के संदर्भ मे भारत के विख्यात रेशम केन्द्र

बनारस की जरी : वाराणसी अपनी सुवर रेशमी साडियो एवं जरी के लिये प्रसिद्ध है. इन साड़ियों में विशिष्ट बॉर्डर तथा अच्छी तरह सजा पल्लू होता है । इनमे सोने तथा चाँदी के धागो की सुनहरी बनावट होती है। शुद्ध रेशम मे सोने की कारीगरी को बफ्ता कहते है, जबकी रंग बिरंगे रेशम मे महीन जरी को आमरू ।

बाँधकर रगांई करने के कला : भारत मे अवरोध रगांई की तकनिक सदियों से चली आ रही है । इस तकनीक की मुख्य दो परम्पराएँ है । पटोला अथवा ईकत तकनीक में धागों को बाँधकर अवरोध रंगाई की जाती है । जबकी बंधेज अथवा बांधिनी में वस्त्रो की रंगाई की जाती है ।

उड़ीसा की ईकत : उड़ीसा में बाँधकर रंगाई करने एव बुनने की प्रक्रिया कोई कत के नाम सो जाना जाता है। जिसमें तीने एव बाने को बाँधकर अवरोध करते हुए रंगो को विकर्ण किया जाता है । ईकत की ईस बुनाई में शहतूत एवं तमर दोनो इस्तमाल में लाए जाते है ।

गुजरात का पटोला : पटोला अपनी सूक्ष्मता ,बारीकी एंव सौन्दर्य के लिए प्रसिध्द है । इसमे पाँच , छः पारंपरिक रगो जैसा लाल , जामुनी , नीला , हरा , काला या पीला को साथ अवरोध विधि से ताने एवं बाने को रंगा जाता है । तथा बेहतरीन रंग एव आकृतिक धरातल पर ज्यामिति शैली की पूर्णता के साथ ।पक्षीस , पुष्प, पशु, नर्तक नर्तकी की आदि का सौन्दर्य उभारा जाता है ।

रेशम उत्पादन के लाभ : रोजगार सृजन की पर्याप्त क्षमता

ग्रामीण अवस्था में सुधार

कम समय मे अधिक आय

महिलाओ के अनुकूल व्यवसाय

समाज के कमजोर वर्ग के लिये आदर्श कार्यक्रम

पर्यावरण अनुकूल कार्य क्रलाप

समानता संबंधी मुर्दो की पूर्ति

रेशम उत्पादन मे किन चुनौतिओं का सामना करना पड़ता है :

रेशम उत्पादन का अभ्यास करने के वाले रेशम किसानो को कोई चुनौती का सामना करना पड़ता है जो

संभावित रूप से उनकी फसल को नष्ट कर सकते है । रेशम कीट पेब्राइन और फ्लैचरी जैसी कई बीमारियों के प्रति संवेदनशील है । इसके अलावा कई कीट रेशम कीट लार्वा के स्वास्थ्य विकास के लिए खतरा है ।

- पेब्राइन रोग अंडो को संक्रमित कर सकता है, जिसके परिणाम स्वरूप लार्वा के अंडे सेने से पहले ही उनकी मृत्यु हो जाती है। इस रोग से प्रभावित कोई भी लार्वा काले धब्बे विकसित कर लेता है और सुस्त हो जाता है।
- लार्वा में वायरल संक्रमण के परिणाम स्वरूप उनके शरीर के सिकुड़न हो सकती है। वे एक अप्रिय गंध देना भी शुरू कर सकते हैं।
- अन्य वायरल संक्रमण जैसे सायटोप्लाजमिक पॉलिहाइड्रोसिस लार्वा को अपनी भूख होने का कारण भी बन सकते है।
- कवक के कारण होने वाला मस्कार्डिन संक्रमण, लार्वा को बेहद कमजोर बना सकता है और अंततः मर सकता है।
- रेशम कोकून में प्रवेश कर सकता है और प्यूपा खा सकता है। इन क्षतिग्रस्त को योसेरेशम कोरील नही किया जा सकता है।
- कुछ घुन एक विषैला पदार्थ उत्पन्न करते है जो रेशम के कीड़ों को मारता है।

आर्थिक महत्व : रेशम उत्पादन 506.20 मानव दिवस प्रतिवर्ष प्रति एकड़ के हिसाब से रोजगार प्रदान करता है। रेशम उत्पादनो गतिविधियो में महिलाओं की भागीदारी का अधिक है । रेशम उत्पादन गतिविधिओं में महिला जनशक्ति का योगदान 57.70 प्रतिशत था ।

इसके अलावा मजदूरों के लिए कृषि में पैदा होने वाली मौसमी बेरोजगारी का रेशम उत्पादन में प्रभावी ढंग से उपयोग किया जा सकता है । रेशम उत्पादन भी देश को मुल्यवान विदेशी मुद्रा अर्जित करने में मदद करता है । भारत रूपये कमाता है । रेशम के सामानों के निर्यात के माध्यम से सालाना 1,500 करोड़ रूपये ।

प्रमुख गतिविधियाँ के तसर भोज्य पौधो एवं रेशम कीट के उत्पादन में सुधार व वृद्धि हेतु मौलिक एवं व्यवहारिक अनुसंधान करना तथा उत्तम धागा तथा वस्त्रों के संसाधन प्रक्रिया में गुणवत्ता लाने तथा उत्पादन दर बढ़ाने हेतु कोसोत्तर पहलुओं पर कार्य करना।

उन्नत रेशम कीट पालन, कोसा परिक्षण एवं बीज उत्पादन हेतु नवीन तकनीको का विकास भौज्य पौधों एवं रेशम कीट के पीड कों तथा रोगो के नियंत्रण के लिए प्रौघोगिकियों का विकास।

प्रजनन स्टॉक का विकास, रख रखाव एवं आपूर्ति । विभिन्न प्रसार कार्यक्रम के आयोजन एवं वाणिज्यीकरण के माध्यम से विकसित प्रौघोगिकियों का प्रदर्शन एवं प्रसार ।

आम के पुराने एवं अनुत्पादक बागों की जीर्णोद्धार तकनीक

डा0 विनय कुमार, डा0 प्रदीप कुमार मिश्र[1] एवं डा0 मनोज सिंह[2]
विषय वस्तु विशेषज्ञ, के.वी.के. श्रावस्ती
[1]सह प्राध्यापक/विषय वस्तु विशेषज्ञ के.वी.के. मनकापुर, गोण्डा ||
[2]विषय वस्तु विशेषज्ञ के.वी.के. मनकापुर, गोण्डा ||

भारत में आम जनसामान्य द्वारा सर्वाधिक पसंद किया जाता है और अपनी विविध गुणवत्ता के कारण फलों का राजा कहलाता है। स्वाद एवं पौष्टिकता के साथ–साथ रोजगार व आमदनी के स्रोत की प्रबल क्षमता के कारण इसकी बागवानी देश में लोकप्रिय है। भारत में आम का क्षेत्रफल लगभग 12 लाख 28 हजार हेक्टेयर है और इस क्षेत्रफल से 109.9 लाख मैट्रिक टन आम उत्पादन किया जाता है। विश्व व्यापार संगठन के दौर में आम के निर्यात की स्थिति सुदृढ़ करने के लिए गुणवत्ता युक्त प्रति इकाई उत्पादन में वृद्धि लाना एक चुनौती है जब कि वर्तमान में आम की उत्पादकता वृक्षों की क्षमता के अनुरूप नहीं है। जिसके अनेक कारण है जैसे आम के बागों में वैज्ञानिक प्रबंधन न करना, व्याधि किस्मों का द्विवार्षिक फलन कीट एवं व्याधियों का सामाजिक एवं उचित नियंत्रण न करना, जानकारी के अभाव में अधिक उत्पादन देने वाली किस्मों के बाग न लगाना तथा पुराने घने व अनुत्पादक बागों की बहुलता आदि। देश में आम के 30 से 35 प्रतिषत पुराने एवं अनुत्पादक बागों का होना आमोत्पादन में अवरोध ही नहीं बल्कि एक गंभीर चिंता का विषय है।

अन्य फलों की तरह आम के पेड़ भी एक निश्चित आयु के बाद कम उपज देने लगते हैं और आर्थिक दृष्टि से अनुपयोगी हो जाते हैं। वृक्षों की इस स्थिति में प्राकृतिक होने के साथ कई अन्य कारण भी हो सकते हैं जो कि उसे इस अवस्था में शीघ्र पहुंचाने में सहायक होते हैं। देखा गया है कि लगभग 50 वर्ष बाद आम के वृक्षों का फैलाव काफी बढ़ जाता है और वृक्षों की शाखाएं बढ़ कर दूसरे पेड़ों को छूने लगती है। इस कारण बाग अत्यधिक घने हो जाते हैं और वृक्षों के पर्णीय भागों में समुचित मात्रा में धूप नहीं पहुंच पाती है। जिससे प्रकाश संश्लेषण की क्रिया क्षीण हो जाती है। कल्ले पतले और अस्वस्थ हो जाते हैं जो उस पर एवं फलन हेतु अनुपयोगी होते हैं। यही नहीं बल्कि बाग शीघ्र ही कीट एवं व्याधियों से ग्रसित हो जाते हैं जिनका सामयिक नियंत्रण कर पाना कठिन हो जाता है। इस प्रकार उत्पादन की दृष्टि से बाग अनुपयुक्त हो जाते हैं। ऐसे वृक्षों में वांछित कटाई छटाई (कृन्तन) करके बागों को पुनः उत्पादक बनाया जाता है। आवश्यक कटाई–छटाई करने से नए कल्लों का सृजन होता है तथा वृक्षों के ढ़ांचें में आवश्यक परिवर्तन लाया जा सकता है। इस क्रिया से सूर्य का प्रकाश वृक्ष के संपूर्ण पर्णीय क्षेत्र में समुचित रूप से उपलब्ध हो जाता है जो वृक्षों के पुष्प एवं फलन में सहायक होता है।

जीर्णोद्धार तकनीक

कृन्तन विधि : पुराने घने एवं आर्थिक दृष्टि से अनुपयोगी आम के वृक्षों की सभी अवांछित शाखाओं को पहले चिन्हित कर लेते हैं। चिन्हित शाखाओं का भूमि सतह से लगभग 4 मीटर की ऊंचाई पर दिसंबर में शक्तिचालित आरी से काटते हैं। इसके साथ ही साथ सूखी रोगग्रस्त एवं पेड़ के बीच घनी शाखाओं को

काटकर निकाल देते हैं। कृन्तन करते समय यह सावधानी अवश्य रखनी चाहिए कि शाखाएं अनावश्यक रूप से निचले भाग में कट न जाए। अतः पहले आरी से नीचे की तरफ लगभग 15 से 20 सेंटीमीटर कृन्तन कर तिरछी कर फिर टहनी को ऊपरी भाग से कटाई करते हैं।

कृन्तन के तुरंत बाद एक किलोग्राम फफूंदीनाशक दवा तूतिया (कॉपर आक्सीक्लोराइड) को 250 ग्राम अरंडी का तेल एवं उचित मात्रा में पानी मिलाकर तैयार किया गया लेप शाखाओं में कटे हुए भाग पर लगाते हैं ताकि सूक्ष्म जीवाणुओं तथा रोगों का संक्रमण न हो। जीर्णोद्धार के लिए कृन्तन क्रिया 2 चक्रों में की जा सकती है। प्रथम चक्र में बाग की आधी एकांतर पंक्तियों का कृन्तन करने से बागवानों पर आर्थिक प्रभाव कम पड़ता है। एकांतर पंक्तियों में कृन्तन के फलस्वरुप बाग में सूर्य का प्रकाश पर्याप्त रूप से उपलब्ध हो जाता है। जिससे शेष एकांतर पंक्तियों के वृक्षों में, जिनकी कटाई छटाई नहीं की गई है, समुचित प्रकाश मिलने से स्वस्थ कल्ले निकलते हैं ओर पहले की अपेक्षाकृत उत्पादन में 3–4 गुना तक वृद्धि की जाती है साथ ही साथ बागवान की उपज में वृद्धि, कटी लकड़ियों की बिक्री व बाग में अंतः फसलों से अर्जित आमदनी कटाई से हुई क्षति की पूर्ति की जाती है।

खाद, उर्वरक एवं जल प्रबंधन : कृन्तित वृक्षों में 2.5 किग्रा0 यूरिया, 3.0 किग्रा0 सिंगल सुपर फास्फेट एवं 1. 5 किग्रा0 म्यूरेट आफ पोटाश प्रति वृक्ष की दर से देते हैं। इन खादों में सिंगल सुपर फास्फेट एवं म्यूरेट आफ पोटाश की पूरी मात्रा और यूरिया की आधी मात्रा फरवरी माह में डालते है। शेष यूरिया की आधी मात्रा जून के अंत में डालते है। इसके अलावा 120 किग्रा0 गोबर की सड़ी खाद (प्रति वृक्ष) जुलाई के प्रथम सप्ताह में देते हैं। उर्वरक देने के बाद अनिवार्य रूप से अप्रैल से मई के बीच 15 दिन के अंतराल पर सिंचाई करते हैं साथ ही पेड़ों के नीचे थालों में निराई गुड़ाई करना आदि भी आवश्यक है। अप्रैल से जून माह तक नमी को संचित रखने के लिए पॉलीथीन या आम की पत्ती, सूखी घास अथवा पुआल थालों में बिछाना (मल्चिंग) चाहिए।

सृजित कल्लों का विरलीकरणः दिसंबर महीने में कृन्तन के लगभग तीन–चार माह के उपरांत (मार्च–अप्रैल) इन काटे गये शाखाओं पर बाहुल्यता से नये कल्ले निकलते हैं जिनका वांछित विरलीकरण आवश्यक है। अन्यथा जल व पोषक तत्वों के लिए परस्पर स्पर्धा के कारण स्वस्थ कल्लों का विकास नहीं हो पाता, साथ ही साथ पर्णीय क्षेत्र झाड़ी नुमा हो जाता है जो फलन के लिए अनुपयुक्त होते है। स्वस्थ कल्लों युक्त खुले पर्णीय क्षेत्र के विकास के लिए शाखाओं के बाहरी और 8–10 स्वस्थ कल्ले प्रति शाखा रखकर शेष अवांछित कल्लो को हटा दिया जाता है। जून एवं अगस्त में वांछित छंटाई के बाद कॉपर ऑक्सीक्लोराइड फफूंदीनाशक दवा (3 ग्राम प्रति लीटर पानी में) का छिड़काव करना आवश्यक है। इससे पत्तियों पर लगने वाले रोगों से बचाव होता है। अक्टूबर में 2 प्रतिशत यूरिया के घोल का पत्तों पर छिड़काव प्ररोहों की उचित वृद्धि हेतु लाभदायक होता है।

शिखारोपण : इस विधि में कृंतित शाखाओं पर बने नवसृजित कल्लों के ऊपर जुलाई–अगस्त में वांछित किस्म से वीनियर सॉफ्ट वुड ग्रांक्तिक की जा सकती है। ऐसा करना तभी उचित रहता है जब कृतित वृक्ष बीजू अथवा अवांछित किस्म का हो और उसे वांछित किस्म में परिवर्तित कर ना हो।

अन्तः फसलें : फसलों की कटाई–छंटाई उपरांत दोनों तरफ काफी खुली जगह हो जाती है जिससे अन्तः फसलें लेकर भूमि का उचित उपयोग किया जा सकता है, अतिरिक्त आमदनी अर्जित की जा सकती है जिसके लिए कोई विशेष लागत नहीं लगानी पड़ती है। इसमें जायद की फसलें खीरा, लौकी, तोरई, तरबूज, खरबूजा, लोबिया, हल्दी व सूरन और रबी के मौसम में आलू एवं सरसों लेना लाभदायक है।

कीट एवं व्याधियों का प्रबंधन: कृन्तित पेड़ों की सामयिक देखभाल करना अति आवश्यक है शाखाओं के कटे हुए भाग पर कॉपर ऑक्सिक्लोराइड का लेप उक्त विधि से तैयार करके कृन्तन के तुरंत बाद कर देना चाहिए। साथ ही बाग की सामयिक निराई–गुड़ाई करते है ंताकि पेड़ो ंको किसी भी प्रकार से व्याधि एवं कीट से क्षति न हो। इसके बावजूद भी यदि वृक्ष तना भेदक कीट से ग्रसित हो जाता है तो जहां से कीटने तने लकडी का बुरादा निकलता है उस सुराख में लोहे की पतली तिल्ली डाल कर कीड़ों को नष्ट कर देते है या सल्फास की टिक्की को छेद में रखकर एवं रुई से ढंक कर गीली मिट्टी से विधिवत बंद कर देते है। इस तरह से कीटो पर नियंत्रण किया जा सकता है। पत्ती खाने वाले कीटों के लिए कार्बारिल कीटनाशक दवा (3 ग्राम/लीटर) का 25 दिन के अंतराल पर दो छिड़काव करें। पर्ण धब्बों की रोकथाम के लिए कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (3 ग्राम/लीटर पानी में)का छिड़काव लाभदायक होता है।

पुष्पन एवं फलन : उपरोक्त विवरण के अनुसार कृंतित वृक्षों की विधिवत सघन एवं सामूहिक देखभाल करते है। फलस्वरुप इन कृन्तित शाखाओं पर आये कल्ले लगभग 2 वर्ष बाद पुष्पन एवं फलन में आने लगते हैं। प्रयोगों के आधार पर पाया गया है कि कृन्तित वृक्षों से गुणवत्ता युक्त आम की उपज में प्रति वर्ष बढ़ोतरी होती है और बागवानी को प्रति इकाई पहले की तुलना में अधिक लाभ प्राप्त होता है ये पौधे अगले 20–25 वर्षों के लिए पुनः फलन हेतु उपयुक्त हो जाते है।

मशरूम उत्पादन तकनीक पर सात दिवसीय प्रशिक्षण कार्यक्रम का शुभारंभ

प्रयागराज। सोसायटी आफ बायोलॉजिकल साइंसेज एंड रूरल डेवलपमेंट, प्रयागराज में आज सात दिवसीय मशरूम उत्पादन तकनीक नामक विषय पर प्रशिक्षण कार्यक्रम का शुभारंभ हुआ। इस कार्यक्रम के आयोजक सचिव डॉ दीपक वर्मा ने सभी अतिथियों एवं प्रतिभागियों का स्वागत किया।इस कार्यक्रम का मुख्य वक्ता डॉ हेमलता पंत, सचिव, एस बी एस आर डी, प्रयागराज ने संस्था के सभी गतिविधियों को बताते हुए मशरूम के परिचय नामक विषय पर बताया कि सभी मशरूम प्रोटीन तथा औषधीय गुणों से भरे हुए होते हैं। मशरूम प्रोटीन का बहुत अच्छा स्रोत है। मशरूम खाद्य और विषैले भी होते हैं।अतः जिन मशरूम को आप नहीं पहचान पाते हैं, उसे नहीं खाना चाहिए। मशरूम का उत्पादन बहुत सरल एवं कम लागत से होने वाला है।उन्होंने कहा कि मशरूम का उत्पादन कृषि अवशेषों पर किया जाता है। डॉक्टर पंत ने ओयेस्टर मशरूम उत्पादन की विस्तृत चर्चा की। इस कार्यक्रम में डॉ ज्योति वर्मा, डॉ अमित मौर्य ,डॉ विनी जान ,डॉ एन जेम्स , डॉ गौरव जैन सहित 80 प्रतिभागी उपस्थित थे। कार्यक्रम में धन्यवाद ज्ञापन पुष्पम शुक्ला ने किया।

आंवला फल का मूल्य संवर्धन

डॉ. मनोज कुमार सिंह
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, उद्यान विज्ञान विभाग
कुलभास्कर आश्रम पी. जी. कॉलेज प्रयागराज – 211 002 (उ0प्र0)

आंवला फल में विटामिन, टैनिन एवं पोषक तत्व प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं परंतु स्वाद में रुचिकर न होने के कारण इसकी ताजे फल के रूप में मांग कम है। इस फल का भंडारण भी करना लंबे समय तक संभव नहीं है । ऐसे में आंवला फल से प्रसंस्करण युक्त उत्पाद बनाकर बाजार में विपणन किया जा सकता है । त्रिफला उत्पाद हमारी प्राकृतिक चिकित्सा का अंग रहा है । त्रिफला में आंवला फल एक आवश्यक अवयव है । इसी प्रकार चवनप्राश बनाने में आंवले का प्रयोग अवश्य किया जाता है । प्रसंस्करण की सहायता से किसानों को आर्थिक लाभ अधिक होगा साथ ही पोषण सुरक्षा में भी सहायता मिलेगी ।

फल का पोषण मान

फल का पोषण मान (ताजे फल के सौ ग्राम गूदे में) नमी 82 ग्राम, प्रोटीन 0.5 ग्राम, रेशा 3.4 ग्राम, कैल्शियम 50 ग्राम, लोहा 1.2 मिलीग्राम, थायमीन 0.03 मिलीग्राम, नियासिन 0.2 मिलीग्राम, कोलीन 256 मिलीग्राम, कार्बोहाइड्रेट्स 13.7 ग्राम, वसा 0.1 ग्राम, खनिज तत्व 0.5 ग्राम, फास्फोरस 20 मिलीग्राम, कैरोटीन 9 मिलीग्राम, राइबोफ्लेविन 0.01 मिलीग्राम, विटामिन सी 600 मिलीग्राम, (स्रोतः गणाचारी एवं अन्य 2005) ।

प्रसंस्करण हेतु उपयुक्त प्रजातियांः

सिंह एवं अन्य (2004) तथा नाथ एवं शर्मा (1998) ने बनारसी, चकैया, फ्रांसिस, कृष्णा, कंचन, एन. ए. 6, एन.ए. 10 प्रजातियों को प्रसंस्करण हेतु उपयुक्त पाया ।

मूल्य वर्धित उत्पादः

आंवला से जैम, सॉस, चटनी, मुरब्बा, कैंडी, स्लाइस, टिकिया, सुपारी, स्क्वाश, लड्डू, बर्फी आदि तैयार किए जा सकते हैं ।

1. **आंवला जैम** पूर्ण परिपक्व फलों को चयनित करके फल का गूदा अलग किया जाता है फिर शर्करा, सुवा, रंग मिलाकर पकाया जाता है। जब कुल घुलनशील ठोस 68% या फल अंश 45% या तापमान 105 डिग्री सेल्सियस हो तब उतारकर बोतलों में भरकर विपणन किया जा सकता है ।
2. **आंवला सॉसः** इसे बनाने हेतु आंवला का गूदा लेकर मसालों एवं अन्य आवश्यक सामग्री के साथ पकाया जाता है । यह बहुत ही पौष्टिक एवं स्वास्थ्यवर्धक उत्पाद होता है ।
3. **आंवला चटनीः** यह तत्कालीन प्रयोग हेतु एवं स्थाई उत्पाद दोनों ही प्रकार से तैयार की जाती है । ताजे फलों की चटनी से पोषक तत्व सीधे प्राप्त हो जाते हैं ।
4. **आंवला मुरब्बाः** यह बहुत प्रचलित आंवला उत्पाद है । इस हेतु बड़े स्वस्थ फलों का चयन कर अच्छी तरह से गोदा जाता है । फिर चीनी में धीमी– धीमी आंच पर पकाया जाता है। फल मुलायम होकर चीनी सोख लेता है । साइट्रिक अम्ल एवं रंग– सुवास का भी प्रयोग किया जाता है ।
5. **आंवला कैंडीः** इसमें बड़े स्वस्थ फलों का चयन कर इनके गूदे को छोटे–छोटे टुकड़ों में काट लिया

जाता है । फिर इन टुकड़ों को चीनी के घोल में पकाया जाता है । अंत में वांछित खाद्य रंग मिला दिया जाता है । इसकी मांग मिठाई उद्योग में ज्यादा है ।

6. **आंवला रस** : आंवला का रस निकालकर निथारा जाता है फिर पाश्चुरीकरण करके पैक किया जाता है । यह पोषण मान में प्रचुर होता है । इसकी कड़वाहट आंवला रस में कम कर दी जाती है।

7. **आंवला पाउडर** : आंवला पाउडर का प्रयोग सीधे आंवला स्वाद लाने एवं औषधियों के निर्माण में किया जाता है ।

8. **आंवला टिकिया** : नमक एवं मसालों को मिलाकर आंवला की टिकिया तैयार की जाती है जो पाचक एवं स्वादिष्ट होती है ।

9. **आंवला अचार** आंवला के फलों से विभिन्न प्रकार के अचार जैसे तेल ,नमक, सिरका एवं सुखाकर तैयार किया जाता है ।

संदर्भः

1. गणाचारी ए. कंगावेल के. एवं ईश्वरन एस. (2005) । पोस्ट हार्वेस्ट पोटेंशियल ऑफ आंवला फ्रूट । फूड एंड पैक 5 (5) 34—35 ।
2. नाथ वी.एवं शर्मा आर.के. (1998) स स्क्रीनिंग ऑफ आंवला कल्टीवर फॉर प्रोसेसिंग स प्रोग्रेसिव हॉर्टिकल्चर 30 (1 एवं 2):76— 77 ।
3. सिंह वी.सिंह एच.के.एवं सिंह आई. एस. (2004) । इवेलुएशन आफ आंवला वैराइटीज फार फूड प्रोसेसिंगस हरियाणा जनरल आफ हॉर्टिकल्चर साइंसेज 33 (1 एवं 2) :18—20 ।

सोसायटी ऑफ बायोलॉजिकल साइंसेज एंड रूरल डेवलपमेंट, प्रयागराज में अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन का समापन संपन्न

भूमिहीन किसानों की खेती–श्वेत बटन मशरूम

[1]अमित कुमार मौर्य, [1]डॉ. विन्नी जॉन, [2]मुकेश कुमार, [3]मधुमिता पाण्डेय और [4]हेमलता पन्त
[1]सहायक प्राध्यापक, घनश्याम उर्वशी पी.जी. कालेज, फूलपुर, प्रयागराज, (उ० प्र०)
[2]एडवांस सेन्टर ऑफ़ मशरुम रिसर्च, डॉ0 राजेंद्र प्रसाद केंद्रीय कृषि विश्वविद्यालय, समस्तीपुर, बिहार–848125
[3]सहायक प्राध्यापक, नेताजी सुभाष विश्वविद्यालय जमशेदपुर, झारखण्ड
[4]सहायक प्राध्यापक, सी.एम.पी. पी.जी. कालेज, प्रयागराज–211 002 (उ० प्र०)

परिचय

कृषि व्यवसाय के तौर पर मशरूम की खेती आमदनी का एक प्रमुख एवं विश्वसनीय स्रोत रहा है। मशरूम उत्पादन में कृषि भूमि की आवश्यकता नहीं होती, इसलिए खुंब की खेती ग्रामीण किसानों, शहरी तथा नगरीय क्षेत्रों के उद्यमियों के लिए एक व्यावहारिक, व्यापारिक एवं आकर्षक व्यवसाय है। जलवायु तथा उपभोक्ता की मांग पर निर्भर करते हुए विश्व भर में खुंब की विभिन्न किस्मों की खेती की जाती है। बटन मशरूम, शिटाके मशरूम, दूधिया मशरूम, ढिंगरी मशरूम आदि प्रमुख खाने योग्य मशरूम हैं। भारत में बटन मशरूम की एगैरिकस बाइसपोरस प्रजाति की खेती व्यापारिक स्तर पर की जा रही है। उत्पादन की दृष्टि से इस मशरूम का विश्व में प्रथम स्थान है। देश के मैदानी एवं पहाड़ी भागों में श्वेत बटन मशरूम को शरद ऋतु में उगाया जाता है क्योंकि इस ऋतु में तापमान कम तथा हवा में नमी अधिक होती है।

मशरूम के औषधीय गुण

भारतवर्ष की अधिकांश आबादी शाकाहारी है एवं मशरूम का महत्व पोषण की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है। किसी भी खाद्य पदार्थ के पौष्टिक गुणों के मूल्यांकन हेतु पोषण विज्ञान में सर्वमान्य तरीका है कि उसमें कितने शुष्क तत्व, ऊर्जा, प्रोटीन, शर्करा, वसा रेशा, विटामिन्स तथा खनिज तत्व पाये मशरूम प्रोटीन का अच्छा स्रोत है। इसमें 20–35 प्रतिशत प्रोटीन की मात्रा विद्यमान रहती है। साथ–साथ लाइसीन एवं ट्रीप्टोफैन नामक एमिनो एसिड पाया जाता है। इसमें विटामिन सी, विटामिन बी, राइबोफ्लेविन, थाइमीन, लाइसीन, पोटैशियम, फास्फोरस, सोडियम तथा सूक्ष्म मात्रा में लोहा भी पाया जाता है जो मानसिक तनाव से ग्रसित मरीजों के लिए फायदेमन्द होता है। इसमें वसा, स्टार्च, कोलेस्ट्राल की मात्रा कम होती है।

श्वेत बटन मशरूम की खेती

इस मशरूम के उत्पादन के लिए कवक जाल फैलाव के दौरान 22–25 डिग्री सेल्सियस तथा फलन के समय 14–18 डिग्री सेल्सियस तापमान की आवश्यकता होती है तथा 80–85 प्रतिशत नमी की जरूरत पड़ती है। शरद ऋतु के आरम्भ व अंत में इस तापमान व नमी को आसानी से बनाए रखा जा सकता है, जो बिहार राज्य के लिए उपयुक्त है। श्वेत बटन मशरूम उगाने का तरीका बटन मशरूम को कृत्रिम ढंग से तैयार की गई खाद (कम्पोस्ट) पर उगाया जाता है। श्वेत बटन मशरूम उगाने के लिए खाद (कम्पोस्ट) की लम्बी विधि से कम्पोस्ट तैयार करने की विधि का विवरण दिया जा रहा है। लम्बी विधि से खाद (कम्पोस्ट) तैयार करना ।

खाद में प्रयुक्त सामग्री व उसकी मात्रा निम्नलिखित है –

1. गेहूँ का भूसा –300 किलोग्राम
2. कैल्शियम अमोनियम नाइट्रेट –9 किलोग्राम
3. यूरिया –4.9 किलोग्राम
4. म्यूरेट आफ पोटाश –3 किलोग्राम
5. सुपर फास्फेट –3 किलोग्राम
6. गेहूँ का चोकर –15 किलोग्राम
7. जिप्सम –20 किलोग्राम

विधि॰ दिये गये चरणों में कम्पोस्ट तैयार किया जाता है।

मिश्रण तैयार करना

भूसे तथा पुआल के मिश्रण को पक्के फर्श पर 2 दिन (48 घंटों) तक रूक–रूक कर पानी का छिड़काव करके गीला किया जाता है। भूसे को गीला करते समय पैरों से दबाना और अच्छा रहता है। साथ ही गीले भूसे की ढेरी बनाने के 12–16 घंटे पहले जिप्सम व मैलाथियान को छोड़कर अन्य सभी सामग्री जैसे उर्वरकों व चोकर का एक साथ मिलाकर गीला कर लेते हैं तथा ऊपर से गीली बोरी से ढक देते हैं।

मिश्रण तैयार करना

ढेर बनाना

ढेर बनाना

गीले किये गये मिश्रण (भूसे व उर्वरक आदि) को मिलाकर 5 फुट चौड़ा व 5 फुट ऊँचा ढेर बनाते हैं। ढेर की लम्बाई सामग्री की मात्रा पर निर्भर करती है लेकिन ऊँचाई व चौड़ाई ऊपर लिखे माप से अधिक व कम नहीं होनी चाहिए। यह ढेर पाँच दिन तक (ढेर बनाने के दिन के अतिरिक्त) ज्यों का त्यों लगा रहता है। बाहरी परतों में नमी कम होने पर आवश्यकतानुसार पानी का छिड़काव किया जा सकता है।

पलटाई क्रम

(क) पहली पलटाई (6 वां दिन)

छठवें दिन ढेर की पहली पलटाई की जाती है। पलटाई करते समय इस बात का विशेष ध्यान रखें कि ढेर के प्रत्येक हिस्से की उलट–पुलट अच्छी तरह हो जाय। ढेर बनाते समय यदि खाद में नमी कम हो तो आवश्यकतानुसार पानी का छिड़काव कर लेते हैं नये ढेर का आकार व माप पहले ढेर की भाँति ही होती है। आगे की पलटाईयाँ भी पहली पलटाई की भाँति की जाती है।

पहली पलटाई

(ख) दूसरी पलटाई (10 वाँ दिन)

(ग) तीसरी पलटाई (13 वाँ दिन) इस पलटाई के समय जिप्सम भी मिलाएँ।

(घ) चौथी पलटाई (16 वाँ दिन)

(ड) पाँचवीं पलटाई (19 वाँ दिन)

(च) छठवीं पलटाई (22 वाँ दिन) इस दिन पलटाई के समय मैलाथियान (0.1 प्रतिशत) का छिड़काव किया जाता है।

(छ) आठवीं (28 वाँ दिन)

अट्ठाइसवें दिन खाद (कम्पोस्ट) में नमी अमोनिया का परीक्षण किया जाता है। नमी का स्तर जानने के लिए

खाद को मुट्ठी में दबाते हैं। यदि दबाने पर हथेली व उंगलियां गीली हो जाये परन्तु खाद से पानी निचुड़कर न बहे, इस अवस्था में खाद में नमी का स्तर 19 उचित होता है क्योंकि ऐसी दशा में कम्पोस्ट में 68—70 प्रतिशत नमी मौजूद होती है। अमोनिया का परीक्षण करने के लिए खाद को सूंघा जाता है, सूंघने पर यदि अमोनिया की गंध (गौशाला पशु मूत्र जैसी गंध) आती है तो 3 दिन के अंतर से एक या दो पलटाई करनी चाहिए। जब अमोनिया की गंध बिल्कुल समाप्त हो जाये तब खाद को 25 डिग्री सेल्सियस तापमान तक ठंडा होने दें इसके पश्चात् बीजाई का कार्य करते हैं।

अमोनिया का परीक्षण

(ख) बीजाई (स्पानिंग) करना

उपरोक्त विधि से तैयार खाद में बीज मिलाया जाता है। बीज देखने में श्वेत व रेशमी कवक जालयुक्त हो तथा इनमें किसी भी प्रकार की आवांछित गंध न हो। बीजाई करने से पहले बीजाई स्थान व बीजाई मे प्रयुक्त किये जाने वाले बर्तनों को २ प्रतिशत फार्मिलिन घोल में धोएं व बीजाई का कार्य करने वाले व्यक्ति अपने हाथो को साबुन से धोएँ, ताकि खाद में किसी प्रकार के संक्रमण से बचा जा सके। इसके पश्चात् 10 प्रतिशत की दर से बीज मिलाएँ यानि कि 100 किलोग्राम तैयार कम्पोस्ट के लिए 10 किलोग्राम बीज पर्याप्त है।

मशरूम बीजाई (स्पानिंग)

(ग) बीजित थैलों की भराई व कमरों का रख—रखाव

किसी हवादार कमरे में लोहे या बॉस या अन्य प्रकार की मजबूत लकड़ी की सहायता से लगभग दो—दो फुट की दूरी पर कमरे की ऊँचाई की दिशा में (आलमारी के समान) एक के ऊपर एक मचान बना ले। बिजाई से 2 दिन पहले इस कमरे के फर्श को २ प्रतिशत फार्मिलिन घोल से धोयें तथा दीवारों व छत पर इस घोल का छिड़काव करें। इसके तुरंत बाद कमरे के दरवाजे तथा खिड़कियाँ इस तरह बंद करें कि अंदर की हवा बाहर न जा सके। बिजाई हेतु 3—4 इंच मोटी कम्पोस्ट भरें एवं उस पर समान रूप से बीज छिटक दें। बीज को 1—1.5 इंच मोटी कम्पोस्ट पर्त से ढक दें। ऊपरी स्तर समान रहना चाहिए एवं इस पर विसंक्रमित कागज बिछा दें। कमरे में 22—25 बिजली चलित उपकरणों जैसे कूलर, हीटर आदि का प्रयोग करके नियंत्रित किया जा सकता है। नमी कम होने पर कमरे की दीवारों पर पानी का छिड़काव करके व फर्श पर पानी भरकर नमी को बढ़ाया जा सकता है।

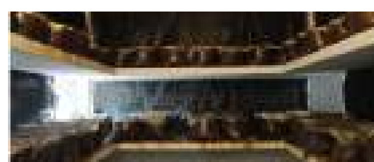
बीजित थैलों की भराई व कमरों का रख—रखाव करना

(घ) केसिंग मिश्रण तैयार करना व केसिंग पर चढ़ाना

बीजाई के लगभग 12—15 दिन बाद कवक जाल (बीज के तन्तु) खाद में फैल जाता है और खाद का रंग गहरे भूरे से बदलकर फफूंद जैसा सफेद हो जाता है। इस अवस्था में खाद को केसिंग मिश्रण की परत से ढकना पड़ता है तभी खुम्भ निकलना आरंभ होती है। केसिंग मिश्रण एक प्रकार की मिट्टी है। जैसे दो साल पुरानी गोबर की खाद व दोमट मिट्टी (बराबर हिस्सों में) को मिलाकर तैयार किया जाता है। लेकिन इस केसिंग मिश्रण को खाद पर चढ़ाने से पहले इसे रोगाणुओं व सूत्राकृमि आदि से मुक्त करना होता है। केसिंग मिश्रण को रोगाणु मुक्त करने के लिए 2 प्रतिशत फार्मिलिन के घोल से उपचारित करते हैं। फार्मिलिन नामक रसायन का 2 प्रतिशत घोल तैयार करने के लिए एक लीटर फार्मिलिन (40 प्रतिशत सक्रिय 20 तत्व) को 200 लीटर

पानी में घोला जाता हैं इस घोल से केसिंग मिश्रण को गीला किया जाता है। घोल की मात्रा केसिंग मिश्रण की मात्रा पर निर्भर करती है। तत्पश्चात् इस मिश्रण को पॉलीथीन से चारो तरफ से ढक देते हैं और इस पॉलीथीन उतारने के बाद केसिंग मिश्रण को साफ बेलचे से उलट–पुलट देते हैं केसिंग तैयार करने का कार्य केसिंग प्रक्रिया शुरू करने के लगभग 15 दिन पहले कागज हटा देते हैं एवं केसिंग मिश्रण की 3–4 से.मी. मोटी चौरस परत चढ़ा दी जाती है। इस दौरान भी कमरे में 22–25 डिग्री सेल्सियस तापमान तथा 80–85 प्रतिशत नमी बनाये रखें।

केसिंग पर चढ़ाना

(ड) केसिंग के उपरान्त रख–रखाव

केसिंग प्रक्रिया पूर्ण करने के पश्चात् अधिक देखभाल करनी पड़ती है प्रतिदिन थैलों में नमी का देखाभाल करना चाहिए तथा आवश्यकतानुसार पानी का छिड़काव करना चाहिए। केसिंग करने के लगभग एक सप्ताह बाद जब कवक जाल केसिंग परत में फैल जाये तब कमरे के तापमान को 22–25 डिग्री सेल्सियस से घटाकर 14–18 डिग्री सेल्सियस पर ले आना चाहिए तथा इस तापमान पर छोटी–छोटी मशरूम कलिकाएं बनना शुरू हो जाती है जो शीघ्र ही परिपक्व मशरूम में बदल जाती हैं इस चरण में नमी की अधिक आवश्यकता होती है अतः पहले से कुछ अधिक (80–90 प्रतिशत) नमी बनाए रखना चाहिए। सुबह व शाम थैलों पर पानी का छिड़काव करना चाहिए। तापमान व नमी के अतिरिक्त मशरूम उत्पादन के लिए हवा का आदान–प्रदान उत्तम होना चाहिए। इसके लिए आवश्यक है कि उत्पादन कक्ष में रोशनदान, खिड़की व दरवाजे द्वारा आसानी से हवा अंदर आ सके और अंदर की हवा बाहर जा सके। सुबह–शाम कुछ देर के लिए दरवाजे व खिड़कियाँ खोल देना चाहिए।

केसिंग के उपरान्त रख–रखाव

(च) मशरूम की तुड़ाई, भण्डारण व उपज

मशरूम कलिकाएँ बनने के लगभग 2–4 दिन बाद, यह मशरूम कलिकाएँ विकसित होकर बड़े–बड़े मशरूम में परिवर्तित हो जाती है जब यह मशरूम टोपी का आकार 3–4 से.मी. हो एवं टोपी बंद हो (छत्रक न बना हो) तब इन्हें परिपक्व समझना चाहिए और घुमा कर तोड़ लेना चाहिए। तुड़ाई के पश्चात् शीघ्र मशरूम को उपयोग में ले आना चाहिए क्योंकि यह जल्दी खराब होने वाली सब्जी है। सामान्य तापमान पर मशरूम को तोड़ने के बाद 12 घंटों तक सही अवस्था में रखा जा सकता है। 2–3 दिन तक फ्रिज में रख सकते हैं लम्बे समय तक भण्डारण करने के लिए मशरूम को 18 प्रतिशत नमक के घोल में रखा जा सकता है। इस प्रकार प्रतिदिन मशरूम की पैदावार मिलती रहती है तथा 8–10 सप्ताह में पूरा उत्पादन मिला जाता है। एक क्विंटल कम्पोस्ट से औसतन 25–30 किलोग्राम मशरूम की उपज प्राप्त होती है।

(छ) आमदनी

मौसमी श्वेत मशरूम उत्पादन में प्रति किलोग्राम मशरूम पैदा करने के लिये रूपये 25–30 प्रति किलो खर्च आता है तथा कम से कम रूपये 40–50 प्रति किलोग्राम बचत होता है। साथ ही साथ युवा बेरोजगार एवं ग्रामीण महिलाओं को रोजगार का अवसर भी प्रदान होता है।

तैयार मशरूम

मशरूम की तुड़ाई

धान का हल्दी (कंडुआ) रोग, लक्षण और इलाज

[1]डॉ. विन्नी जॉन, [1]डॉ. अमित कुमार मौर्य एवं [2]मुकेश कुमार
[1]सहायक प्राध्यापक, घनश्याम उर्वशी पी.जी. कालेज, प्रयागराज
कृषि, प्रोद्योगिकी एवं विज्ञान विश्वविद्यालय, प्रयागराज–211007
[2]एडवांस सेन्टर ऑफ़ मशरुम रिसर्च,
डॉ. राजेंद्र प्रसाद केंद्रीय कृषि विश्वविद्यालय, समस्तीपुर, बिहार – 848125

देश के किसानों की मुश्किलें कम होने का नाम नहीं ले रही हैं। प्रदेश के कई जिलों में बारिश न होने से धान की खेती करने वाले किसान परेशान हो रहे हैं। तो वहीं पर कई जगह किसान भाई अतिवृष्टि के कारण बाढ़ से प्रभावित हैं। इन सभी प्रकृतिक आपदाओं के साथ–साथ तमाम बीमारियाँ भी दस्तक देती रहती हैं। धान की फसल में रोगों का प्रकोप पैदावार को पूरी तरह से प्रभावित कर देता है। जिसमें धान का हल्दी रोग या कंडुवा रोग प्रमुख है, यह उत्तर प्रदेश के कई जिलों को बुरी तरह प्रभावित करता है जैसे–प्रतापगढ़, अयोध्या, गोंडा, बलरामपुर, बस्ती, प्रयागराज, मेरठ, अमरोहा, अमेठी, अम्बेडकर नगर इत्यादि। हल्दी या कंडुआबीज जनित रोग है जोकि एक प्रमुख का फफूँद होता है। यह अस्टी लेजनाइ डियाविरेन्स नामक फफूंद से उत्पन्न होता है।

इसका प्राथमिक संक्रमण बीज से होने के कारण धान की नर्सरी से पूर्व बीज शोधन करना अति आवश्यक है। बीज शोधन के लिए लगभग 4 ग्राम स्ट्रेप्टोसाइक्लीन को लगभग 40–50 लीटर पानी में घोलकर इसमें धान के बीजों को 16–18 घंटे के लिए भिगोकर रख दें। फिर बीजों को छानकर छाया में सुखा लें। इसके बाद बीजों में लगभग 60 ग्राम कार्बेंडाजिम पाउडर मिलाकर भिगोई हुई जूट की बोरियों से लगभग 16–19 घंटे के लिए ढककर रख दें। जब बीज में सफेद अंकुरण दिखाई देने लगे, तब धान की नर्सरी तैयार करें। किसान भाई एक बात का विशेष ध्यान दें कि यह प्रक्रिया शाम के समय ही करें।

लक्षण

इसका दूसरा संक्रमन हवा के द्वारा होता है, शुरूआत में इसके प्रकोप से धान की बालियों में दाने के स्थान पर छोटी–छोटी, हल्की पीली, नारंगी अथवा हल्दी जैसी गांठे बनती हैं जो बाद में काले रंग में तब्दील हो जाती हैं। इसी को हमारे किसान भाई हल्दी रोग या कंडवा रोग कहते हैं, इस कंडवा रोग को फाल्स स्मट रोग भी कहा जाता हैं। बाद में इन काली गांठों में से पाउडर बनता है। ये पाउडर वायु के माध्यम से शीघ्रातिशीघ्र खेत में फैल जाता है और पूरे खेत को सवंमित कर देता है। इस रोग से धान की 60–90: प्रतिशत तक फसल प्रभावित हो सकती है। जब तापमान अधिक हो और हवा में आर्द्रता ज्यादा हो, तो यह रोग बहुत तेजी से फैलने लगता है। इतना ही नहीं धान की खेती में यूरिया का अधिक उपयोग करने से भी यह बीमारी बढ़ सकता है।

बचाव के प्रभावी उपाय

धान की फसल में लगा हल्दी रोग

किसान भाई अगर चाहें तो कंडवा रोग से प्रभावित धान की बालियों को सावधानी पूर्वक हाथ से निकालकर नष्ट भी कर सकते हैं। किसान भाई इस रोग के प्रभावी रोकथाम के लिए प्रोपिकोनाजोल 25 ई०सी० 200 मिलीट रमात्रा 150–200 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें। साथ ही साथ खड़ी फसल में उर्वरकों का उपयोग बंद कर देना चाहिए। ट्राई सईक्लाजोल का 75 प्रतिशत दवा की 130 ग्राम मात्रा प्रति एकड़ 200 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें अथवा हेक्साको नाजोल 5 प्रतिशत दवा का 400 मिलीलीटर प्रति एकड़ की दर से 200 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें। अगर इन दवाओं के उपलब्ध नही होने पर टेबु कोना जो लका छिड़काव कर सकते हैं।

बाजरा एक सुपर फूड हैः डॉ. बनर्जी

अमृतनामा संवाददाता

प्रयागराज। सोसाइटी ऑफ बायोलॉजिकल साइंसेज एंड रूरल डेवलपमेंट, प्रयागराज उत्तर प्रदेश के तत्वावधान में अक्षय खेती एवं टिकाऊ पर्यावरण नामक विषय पर दो दिवसीय अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी का शुभारंभ हुआ। इस कार्यक्रम में सभी अतिथियों का स्वागत डॉक्टर एस. सी. पाठक, पूर्व महाप्रबंधक, नाबार्ड मुंबई ने किया। अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी की पूरी जानकारी डॉ ज्योति वर्मा तथा संस्था की गतिविधियों की जानकारी डॉक्टर हेमलता पंत ने दी। इस कार्यक्रम की- नोट स्पीकर डॉक्टर धृति बनर्जी निदेशक प्राणी सर्वेक्षण संस्थान कोलकाता थी। डॉ बनर्जी ने बताया संयुक्त राष्ट्र सभा में 2023 को अंतरराष्ट्रीय बाजरा वर्ष के रूप में घोषित किया है। भारत बाजरे का एक प्रमुख उत्पादक है, जो एशिया के उत्पादन का 80प्रतिशत और वैश्विक उत्पादन का 20 प्रतिशत है। बाजरा भारत के कुल खाद्यान्न उत्पादन सामग्री का 20प्रतिशत हिस्सा था जो अब घटकर मात्र 6 प्रतिशत रह गया है। बाजरा सुपर फूड है, बाजरा खराब गुणवत्ता वाली मिट्टी में उग सकता है और खाद्य सुरक्षा के लिए एक अच्छी योजना भी बना सकता है। इस कार्यक्रम की अध्यक्षता प्रोफेसर कृष्णा मिश्रा एमेरिटस प्रोफेसर आई आई आई टी झलवा ने की। प्रोफेसर मिश्रा ने आनुवंशिक संशोधित फसलों की महत्ता व उनकी कृषि में उपयोगिता की चर्चा की। कार्यक्रम में प्रथम व्याख्यान डॉ राम नगीना सिंह , वैज्ञानिक , साउथ डकोटा स्कूल ऑफ साइंस एंड टेक्नोलॉजी, रैपिड सिटी साउथ डकोटा ने कार्बन जीरो एग्रीकल्चर पर दिया। इस कार्यक्रम में डॉ पावन सिसोदिया, डॉक्टर अमिता पांडे, डॉक्टर अर्चना पांडे, डॉक्टर परम प्रकाश सिंह, डॉक्टर आदेश वर्मा, डॉक्टर मनोज कुमार सिंह, डॉक्टर संदीप कुशवाहा, डॉक्टर पल्लवी राय, डॉक्टर अमित मौर्या, डॉ विनी जॉन, डॉ अर्चना राय ने अध्यक्ष उपाध्यक्ष एवं रिपोर्टर की भूमिका निभाई।

कार्यक्रम में शिवांशु राठौर, तान्या पांडे, शिशिर श्रीवास्तव, ज्योति यादव, कुलेश कुमार, सुचिता पांडे, पूर्णिमा देवी ,सूर्या एस. कृष्णन, प्रियंका ओझा ने अपने शोध पत्र प्रस्तुत किए।

गेंदा की रैटूनिंग – कृषक आय बढ़ाने का सशक्त उपागम

डॉ. मनोज कुमार सिंह
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, उद्यान विज्ञान विभाग
कुलभास्कर आश्रम पी जी कॉलेज प्रयागराज – 211 002 (उ0प्र0)

परिचय :

गेंदा कम्पोजिटी कुल का पौधा है तथा इसका वंश टैगेट्स है । अनुवांशिक विविधता के अनुसार इसकी 3 स्पीशीज मुख्य हैं, जिनको अफ्रीकन गेंदा, फ्रेंच गेंदा तथा मिनिएचर गेंदा की श्रेणी में रखा जाता है। हमारे यहां तीनों प्रकार की स्पीशीज व्यवसायिक स्तर पर उत्पादित की जाती हैं । (तिवारी एवं अन्य साथी, 2015) ।

प्रूनिंग :

गेंदा कटाई छटाई या प्रूनिंग के प्रति बहुत ही सहनशील है । इसमें चोटी की प्रभाविकता एपिकल डोमिनेंस पाई जाती है । जिसको प्रूनिंग की सहायता से आसानी से समाप्त किया जा सकता है । दूसरा प्रमुख लक्षण यह है कि यह दिवस उदासीन (डे न्यूट्रल) होता है,जिसे वर्षभर बोया एवं उगाया जा सकता है। (यादव एवं अन्य साथी, 2000) ।

पुष्प उत्पादन तकनीक:

गेंदा की खेती हेतु सबसे पहले दोमट, भुरभुरी एवं जीवांश युक्त, अच्छे जल निकास वाली मृदा का चयन कर लिया जाता है । फिर उत्तम प्रजाति का डेढ़ किलो बीज प्रति हेक्टेयर की दर से लेकर बीज शोधन कर लिया जाता है । फिर 1 मीटर चौड़ी तथा 3 मीटर लंबी क्यारियां बनाकर 1 सेंटीमीटर गहराई में बीज को बोया जाता है । फिर क्यारी को पॉलिथीन से ढक दिया जाता है । बीज जमाव प्रारंभ होने पर पॉलिथीन को हटाकर सिंचाई कर दी जाती है । फिर घोल के रूप में यूरिया दी जाती है । समय–समय पर खरपतवार निकाले जाते हैं । कमजोर पौध होने पर और भी पोषक तत्व दिए जाते हैं । औसतन 1 माह पुरानी पौधों को खेत में रोपित किया जाता है । रोपड़ के पश्चात निराई– गुड़ाई, सिंचाई ,खरपतवार नियंत्रण, रोग एवं कीट नियंत्रण, तथा पुष्पों की तुड़ाई की जाती है । दो–तीन तोड़ाई के बाद खेत को जोत करके नई फसल ली जाती है ।

रैटूनिंग तकनीक से गेंदा उत्पादन:

इस विधि में नर्सरी से पौध निकालते समय दो तीन सेंटीमीटर ऊपर से काट देना चाहिए । इससे खेत में रोपड़ सफलता अधिक रहती है, तथा पौधे शीघ्र ही स्थायित्व पा जाते हैं । निराई –गुड़ाई, सिंचाई, खाद – उर्वरक , रोग– कीट नियंत्रण, पोषक तत्व प्रबंधन एवं हारमोंस का छिड़काव संस्तुति के अनुसार किया जाता है । क्योंकिपौध की कटाई छटाई (प्रूनिंग) रोपण के समय ही कर दी गई थी, बाद में यह क्रिया करने की आवश्यकता नहीं होती है । केवल पुष्पों की समय से , आवश्यकतानुसार तोड़ाई की जाती है । यदि बीज उत्पादन नहीं चाहते हैं तो अंतिम तोड़ाई के समय नीचे से 5 सेंटीमीटर छोड़ते हुए तना को काट देना

चाहिए, इसके 2 सप्ताह बाद जड़ों की खुलाई करनी चाहिए, यानी जड़ों के पास से मिट्टी को हटा देना चाहिए तथा गोबर की खाद 1 किलो ,हड्डी का चूरा 250 ग्राम, नीम की खली 250 ग्राम, डीएपी 50 ग्राम, सूक्ष्म पोषक तत्व का मिश्रण 50 ग्राम। सभी का मिश्रण बनाकर थाले में भरना चाहिए तथा तुरंत हल्की सिंचाई करनी चाहिए (कुमार एवं अन्य साथी 2009)। एक सप्ताह बाद तना से नए किल्ले निकलना प्रारंभ होंगे । इन किल्लों को प्रति पौधा चारों दिशाओं में 5 से 6 छोड़कर हटा देना चाहिए । किलो को देर से हटाने पर पौधे के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है, एवं उत्पादन प्रभावित होता है । पहली तुड़ाई करते समय फूल को 5 से 6 सेंटीमीटर शाखा सहित काटना चाहिए, इससे बगल की शाखा फूटेगी और नए पुष्प आएंगे । यदि शाखाओं की संख्या अधिक है तो पुष्प छोटे होने की संभावना अधिक होगी ।ऐसे में पूरी शाखा को ही काट कर हटा देना चाहिए । दूसरी तुड़ाई के बाद पौधों पर पुनः मिट्टी चढ़ाना चाहिए तथा सिंचाई करनी चाहिए । इस प्रकार पेड़ी से उत्पादन मुख्य फसल की तुलना में ज्यादा प्राप्त होगा (गोविंदा स्वामी एवं मिन्ना 2012) । यदि सूत्रकृमि (निमेटोड) का प्रकोप ज्यादा ना हो तो तीसरे साल भी उपरोक्त प्रक्रिया को अपनाकर पुष्प उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है । तीन साल के पश्चात उत्पादन घटने लगता है, ऐसी अवस्था में नई पौध रोपण की संस्तुति की जाती है ।

संदर्भ :

1. गोविंदा स्वामी एकगोरामूर्थी , मिर्न्ना जे.सू (2012) । इंपैक्ट आफ फ्लोरीकल्चर डेवलपमेंट एनहांसेस लाइवलीहुड ऑफ इंडियाज वूमेन । जनरल ऑफ एग्रीकल्चर एंड रूरल डेवलपमेंट इन द ट्रॉपिक एंड सबट्रॉपिक । 113 (1): 69– 76
2. कुमार धीरज सिंह बीपी एवं सिंह विवेकानंद, (2009) । इफेक्ट ऑफ इंटीग्रेटेड न्यूट्रिएंट मैनेजमेंट ऑन ग्रोथ फ्लावरिंग बिहेवियर एंड ईल्ड ऑफ मेरीगोल्ड । जनरल हॉर्टिकल्चरल साइंस । 4(2) : 134–137
3. रेखा तिवारी , डी.एस. तोमर, ए.के. दीक्षित एवं ए.के.सक्सेना (2015) । कल्टीवेशन आफ पूसा नारंगी वैरायटी आफ मेरीगोल्ड फार क्रॉप डायवर्सिफिकेशन एंड एंपावरिंग फार्म वूमेन इन मालवा प्लेट्यू ऑफ मध्य प्रदेश । जनरल कृषि विज्ञान । 3 (स्पेशल इश्यू) 14–18
4. यादव पी.के. , सिंह एस., धिड़वाल ए. ए. एवं यादव एम.के.(2000) । इफेक्ट आफ नाइट्रोजन एफ. वाय.एम. एप्लीकेशन आन फ्लोरल करैक्टर एंड ईल्ड ऑफ अफ्रीकन मेरीगोल्ड । जनरल हॉर्टिकल्चर साइंस । 29:69–71

वर्मीकम्पोस्ट : परिचय एवं उपयोगिता

डॉ0 हेमलता पन्त, डॉ0 ज्योति वर्मा, निधि गुप्ता[1] एवं अनुराधा यादव[2]
असिस्टेंट प्रोफेसर, जन्तु विज्ञान विभाग, सी.एम.पी. पी.जी. कालेज, प्रयागराज – 211 002 (उ0प्र0)
[1]कनिष्ठ शोध सहायक, (सी.एस.टी.यू.पी. प्रोजेक्ट), प्रयागराज, (उ0प्र0)
[2]शोध छात्रा, जन्तु विज्ञान विभाग, सी.एम.पी. पी.जी. कालेज, प्रयागराज – 211 002 (उ0प्र0)

वर्मी कम्पोस्ट अथवा केंचुआ खाद :

वर्मीकम्पोस्टिंग यह विधि है जिसमें कूड़ा कचरा तथा गोबर को केंचुओं तथा सूक्ष्म जीवों की सहायता से उपजाऊ खाद अथवा ''वर्मीकास्ट'' में बदला जाता है। यहीं वर्मीकम्पोस्ट अथवा केंचुआ खाद कहलाती है।

वर्मीकम्पोस्ट के गुण–

साधारणतयः पौधे पोषक तत्वों के जटिल या मूल रूप को ग्रहण करने में सक्षम नहीं होते। अतः केंचुआ पोषक तत्वों के जटिल रूप को विघटित करके, इन्हें पौधों की जड़ों तक पहुंचाते है ताकि पौधे इन्हें आसानी से ग्रहण कर सकें।

1. रासायनिक खादों की तुलना में, केंचुओं खाद में सर्वोत्तम मात्रा में तत्व (K, P, Mg, Ca तथा N) पाएं जाते है, जो कि पौधों की वृद्धि के लिए अति आवश्यक होते है।
2. केंचुआ खाद के उपयोग से ही मृदा में पानी को इकट्ठा करने की क्षमता बढ़ती है।
3. केंचुए की जैविका क्रिया से बनी खाद भूमि कटाव रोकने के लिए भी अनुकूल होती है।
4. केचुओं की मदद से बहुत कम समय में बहुत अधिक मात्रा में केचुआं खाद तैयार की जा सकती है।
5. एक अनुमान के अनुसार प्रतिदिन एक किलोग्राम केचुएं अपने भार के बराबर खाद तैयार करने में सक्षम होते है।

वर्मीकम्पोस्ट के भौतिक गुण–

1. वर्मीकम्पोस्ट में विद्युत आवेशित कण होते है जो पौधों को मृदा से पोषक तत्व लेने में मदद करते है।
2. खाद में नमी होने की वजह से इनमें सूक्ष्म जीवाणुओं की गतिविधियों से पौधों को आवश्यक पोषक तत्व प्राप्त होने की गति बढ़ जाती है।

वर्मीकम्पोस्ट के रासायनिक गुण–

- वर्मीकम्पोस्ट का pH 7.5 के लगभग पाया जाता है। इसमें C : N का अनुपात 12–15:1 होता है। वर्मीकम्पोस्ट में नाइट्रोजन, फास्फोरस तथा पोटैशियम क्रमशः 1.75-2.5%, 1.5-2.25% तथा 1.25-2.0% पाए जाते हैं।
- वर्मीकम्पोस्ट में कैल्सियम, मैग्नीशियम, सल्फर, आयरन, जिंक, मैंगनीज तथा कॉपर सूक्ष्म मात्रा में उपस्थित होते है।
- वर्मीकम्पोस्ट की रासायनिक जाँच से प्राप्त परिणामों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि तकरीबन सभी प्रकार की फसलों के लिए आवश्यक सभी रसायन इस खाद में मौजूद है। रसायनों को पोषक तत्व भी कहा जाता है। हमारे देश में करीब 50 प्रतिशत से अधिक जमीनें नाइट्रोजन की कमी वाली है।

वर्मीकम्पोस्ट के जैविक गुण–

1. बैक्टीरिया एक्टिनोमाइसीटिज, एजीटोबैक्टर, राइजोबियम, फास्फेट सॉल्युविलाइजर एवं नाइट्रोबेक्टर की संख्या 10^{10} से अधिक होती है।
2. ऑक्सिन एवं साइटोकाइनिन पादप हार्मोन पर्याप्त मात्रा में पाए जाते है।
3. वर्मीकम्पोस्ट में म्यूकस के आवरण वाले बारीक कणों के कारण रेतीली मिट्टी के बिखरे हुए कणों को जोड़ने की क्षमता पाई जाती है। चिकनी मिट्टी के कणों के बीच जगह बनाने की क्षमता के कारण वर्मीकम्पोस्ट जैविक गतिविधियों को बढ़ावा देती है।
4. वर्मीकम्पोस्ट के कण मृदा के कणों के साथ मिलकर मिट्टी की जल क्षमता को बढ़ा देते हैं। इस कारण जमीन में नमी रहने में जैविक गतिविधियों सही ढंग से चलती है।
5. मिट्टी के बढ़ें हुए जल संरक्षण क्षमता के कारण मिट्टी में पहले से मौजूद कार्बनिक तत्वों को लगातार नमी मिलती रहती है। और उनका अपघटन प्रारम्भ हो जाता है।
6. जमीन में मौजूद जीवाणुओं को लगातार खुराक मिलती रहती है। इस प्रकार वर्मीकम्पोस्ट में उपलब्ध सूक्ष्म जीवाणु मिट्टी में उपस्थित आर्गेनिक मैटर (कार्बनिक पदार्थ) को खाकर लगातार वृद्धि कर सकते है।
7. नाइट्रोजन का प्रमुख स्रोत जैव पदार्थ होते है, जो कि जीवाणुओं के द्वारा नाइट्रोजन को घुलनशील अवस्था में ले जाते है। अधिक तापमान होने पर जीवाणु नष्ट हो जाते हैं, और नाइट्रोजन भी कम हो जाती है।

केंचुआ खाद बनाने की विधि–

केंचुआ खाद बनाने की समस्त प्रक्रिया दो चरणों में सम्पन्न होती है।

1. केंचुआ खाद के बनाई क्यारियों की देखभाल या रखरखाव करना।
2. केंचुआ खाद को बटोरना या इक्ट्ठा।

क्यारियों की तैयारी–

क्योरियों को बनाने के लिए, बेकार पड़े पत्थरों, ईंटों या बांस के डण्डों का इस्तेमाल किया जा सकता है। थोड़ी मात्रा में केंचुआ खाद बनाने के प्लास्टिक के आयताकार डिब्बों (करेटों) का भी इस्तेमाल किया जा सकता है।

1.5 से 2 फुट ऊँची, 2–3 फुट चौड़ी तथा सुविधा अनुसार लम्बी क्यारियों को केंचुआ खाद बनाने के लिए बहुत अच्छा माना जाता है।

क्यारियों की भराई–

पत्थरों, ईटों या लकड़ियों की बनी हुई, आयताकार क्यारी को सबसे पहले 2–4 ईंच मोटी कार्बनिक पदार्थों या घास फूस की तह से भरा जाता है।

- इसी घास फूस की तह के ऊपर 1–2 ईंच मोटी सड़े–गले गोबर की तह डाली जाती है।
- क्यारी की ऊँचाई को ध्यान में रखते हुए (1–2 फुट ऊँची) पुनः घास–फूस व गोबर की तह क्रमबार एक दूसरे के ऊपर डाली जाती है।
- इसके बाद केंचुए का कल्चर (1000 केंचुए प्रति वर्ग मीटर) या केंचुए गोबर की तह में छोड़े जाते हैं। देखते ही देखते यह केंचुए गोबर के अंदर घुस जाते है।

- 2 फुट ऊँची क्यारी बनने के बाद इसे जूट की बोरियों या पेड़—पौधों की हरी पत्तियों से ढ़क दिया जाता है। क्यारियों में 40—50% नमी बनाए रखने के लिए, इनमें समय—समय पर पानी का छिड़काव करना बहुत जरुरी होता है।
- गर्मियों में लगभग 2 महीनों (50—60 दिनों) में केंचुओं खाद बनाकर तैयार हो जाती है। सर्दियों में इसे बनने में 80—90 दिन (2—3 महीने) लग जाते है।

उपयोग—

रासायनिक खादों के हानिकारक परिणामों को देखते हुए कृषि वैज्ञानिक आज फिर कृषि के लिए जैविक खादों की सिफारिश कर रहे है। जैविक खादों के द्वारा की जाने वाली खेती का मुख्य सिद्धान्त यह है कि इसके द्वारा पैदा होने वाली फसलें व खाद्य पदार्थ अधिक मात्रा व अच्छे गुणों वाले होते है। इसके साथ—साथ इसका पर्यावरण के साथ अच्छा संतुलन बना रहता है। वर्मीकम्पोस्ट का लगातार उपयोग करके रासायनिक खादों एवं कीटनाशकों के उपयोग को समाप्त किया जा सकता है। केंचुआ खाद का प्रयोग अनाज व दलहनों के लिए 7—8 टन प्रति हैक्टेयर, फलदार पौधों में 8—10 किलोग्राम, सब्जियों में 600—100 ग्राम प्रति वर्ग मीटर तथा गमलों में 100 ग्राम प्रति गमले की दर से या अपने तजुर्बे के अनुसार किया जा सकता है।

वर्मीकम्पोस्ट के उपयोग से पौधे मजबूत, स्वस्थ तथा बीमारियों के प्रति अधिक सहनशील होते है। वर्मीकल्चर को जानवरों के लिए सस्ती प्रोटीन के रूप में प्रयोग किया जा सकता है।

सात दिवसीय मशरूम प्रशिक्षण का समापन कार्यक्रम का आयोजन

प्रयागराज। सोसाइटी ऑफ बायोलॉजिकल साइंसेज एंड रूलर डेवलपमेंट प्रयागराज में सात दिवसीय मशरूम प्रशिक्षण का समापन सफलतापूर्वक संपन्न हो गया। इस प्रशिक्षण के तीसरे दिन डॉ अमित कुमार मौर्या, असिस्टेंट प्रोफेसर, घनश्याम उर्वशी पी जी कॉलेज फूलपुर, प्रयागराज ने बटन, दूधिया तथा धान के पुआल मशरूम के उत्पादन की संपूर्ण जानकारी के साथ इसमें लगने वाले रोग व्याधि की चर्चा भी की। प्रशिक्षण के चौथे दिन डॉ डाखम जेम्स सिंह, सुआट्स, प्रयागराज ने मशरूम के स्पेंट या सब्सट्रैक्ट का उपयोग कार्बनिक खाद एवं पशु आहार में कैसे प्रयोग करें, इसपर चर्चा की। प्रशिक्षण के पांचवे दिन डॉ विनी जान, सुआट्स ने औषधीय मशरूम की चर्चा करते हुए बताया कि मशरूम मधुमेह, हृदय संबंधी रोग और मोटापे को कम करते हैं। मशरूम कैंसर जैसी लाइलाज बीमारी को भी कम करते हैं। प्रशिक्षण के छठवें दिन मुकेश यादव, राजेंद्र कृषि पूसा विश्वविद्यालय, बिहार ने गैनो डर्मा तथा शिताके मशरूम उत्पादन की पूरी जानकारी उपलब्ध कराई। प्रशिक्षण के सातवें दिन ओयस्टर मशरूम के उत्पादन का प्रदर्शन कार्यक्रम किया गया तथा इस प्रशिक्षण की परीक्षा कराई गई। इस कार्यक्रम में कुल 121 प्रतिभागियों ने प्रतिभाग किया। कार्यक्रम में सभी का स्वागत डॉ हेमलता पंत , सचिव, एस बी एस आर डी, प्रयागराज ने तथा धन्यवाद ज्ञापन डॉ दीपक वर्मा, आयोजक सचिव, मशरूम प्रशिक्षण कार्यक्रम ने दिया।

सूरन जिमीकंद की खेती ने खोले सफलता के द्वार

डा0 प्रदीप कुमार मिश्र[1], डा0 विनय कुमार[2] एवं डा0 मनोज सिंह[3]

[1]सह प्राध्यापक/विषय वस्तु विशेषज्ञ, के.वी.के., मनकापुर, गोण्डा

[2]विषय वस्तु विशेषज्ञ, के.वी.के., श्रावस्ती

[3]विषय वस्तु विशेषज्ञ, के.वी.के., मनकापुर, गोण्डा

जिमीकंद सूरन अपने औषधीय गुणों के कारण विशेष रूप से जाना जाता है। अंग्रेजी में इसे ऐलीफेंट फुट याम के नाम से भी जाना जाता है। पूर्वी उत्तर प्रदेश में इसकी खेती छोटे स्तरों पर घरों के आसपास पेड़ों की छाया में वर्षा के ऊपर निर्भर थी। समय के साथ मांग बढ़ने पर इसकी खेती ने व्यावसायिक रूप ले लिया है। सूरन में चरपराहट का गुण में उपस्थित कैल्शियम ऑक्सलेट नामक एल्कलाइन के कारण होता है जिमीकंद का उपयोग प्रमुख रूप से सब्जी व अचार के रूप में किया जाता है। औषधीय गुणों के कारण बहुत सी आयुर्वेदिक दवाओं में इसका प्रयोग किया जाता है। यह रक्त विकार, कब्ज, जोड़ों के दर्द, गठिया व बवासीर के उपचार के लिए विशेष रूप से उपयोगी है व पेट के लिए रामबाण है। जिमीकंद की खेती प्रमुख रूप से उत्तर प्रदेश के पूर्वी जनपदों में एवं बिहार, गुजरात, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश एवं केरल में भी की जाती है। बगीचों में नारियल की खेती के साथ भी सूरन की खेती फायदेमंद पाई गई है। नकदी फसल होने के कारण सूरन की खेती बड़े पैमाने पर की जाने लगी है।

भूमि

जिमीकंद की खेती प्रायः सभी सामान्य उपजाऊ भूमि में की जा सकती है परंतु कंदों की अच्छी बढ़वार एवं उपज के लिए अच्छे जल निकास वाली जीवांश पदार्थ युक्त बलुई दोमट भूमि सर्वोत्तम होती है। उसर भूमि जिसका पीएच मान 8 से अधिक हो तथा जल भराव होता हो, इसकी खेती के लिए उपयुक्त नहीं है।

भूमि की तैयारी

सूरन कंद वाली फसल है अतः खेत का अच्छी तरह तैयार होना आवश्यक है। प्रथम जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करके तथा 2–3 जुताई कल्टीवेटर से पाटा लगाकर खेत को अच्छी तरह समतल कर लें। दीमक व अन्य भूमिगत कीटों से बचाव के लिए अंतिम जुताई के समय 20 किग्रा0 प्रति हेक्टेयर मिथाइल पैराथियान मिट्टी में मिला देना चाहिए।

खाद एवं उर्वरक

खेत की तैयारी के समय 250 से 300 कुंटल सडी गोबर की खाद या कंपोस्ट की खाद खेत में अच्छी तरह मिला देना चाहिए। अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए जैविक खाद के अतिरिक्त 150 किग्रा0 नत्रजन, 60 किग्रा0 फास्फोरस तथा 100 किग्रा0 पोटाष प्रति हेक्टेयर की आवश्यकता होती है। फास्फोरस व पोटाष की सम्पूर्ण मात्रा तथा नत्रजन की आधी मात्रा अंतिम जुताई के समय खेत में डालकर मिला देना चाहिए। षेश नत्रजन की आधी मात्रा यूरिया के रूप में बुवाई के 65 से 70 दिन बाद खडी फसल में छिडकाव करते हैं।

बीज एवं बुवाई

कन्दों की बुवाई का समय मार्च से मई तक अच्छा माना जाता है। अच्छी पैदावार के लिए आवष्यक है कि कन्दों का अंकुरण वर्षा से पहले हो जाना चाहिए। नरेन्द्र देव कृषि विष्वविद्यालय द्वारा विकसित जिमिकंद–5.9 उन्नतषील प्रजातियां हैं। गजेन्द्रा भी जिमीकंद की उन्नतषील प्रजाति है। इसमें कैल्षियम ऑजीलेट की

मात्रा कम होने के कारण गले में चरपराहट नहीं होती है यह प्रजाति किसानों द्वारा अधिक पसंद की जा रही है। एक हेक्टेयर क्षेत्रफल की बुवाई के लिए लगभग 75 से 100 क्विंटल कन्द की आवश्यकता होती है।

कंदों की तैयारी एवं रोपाई

जिमीकंद की बुवाई के लिए कंदों का आकार 500 से 750 ग्राम होना चाहिए। यदि कन्द बड़े आकार के हो तो उसे काटकर बुवाई के लिए प्रयोग करें। कंदों को काटते समय ध्यान रखें मूल कलिका (बड़) का भाग या केंद्रीय अंकुर का एक अंष प्रत्येक टुकड़े में अवश्य हो अन्यथा बिना कलिका वाले कंद का जमाव नहीं होगा। कटे हुए टुकड़ों को दो प्रतिषत कॉपर सल्फेट (तूतिया) 0.2 प्रतिषत बावस्टीन के घोल में 10–15 मिनट में भिगोकर छाया में सुखाकर बुवाई करें। गड्ढे में रोपाई करने के लिए 90x90 सेंटीमीटर की दूरी पर 50x50x30 सेमी आकार के गड्ढे खोदते हैं। प्रतिगड्ढा एक टोकरी साड़ी गोबर की खाद, 10 ग्राम यूरिया, 40 ग्राम सिंगल सुपर फास्फेट, 16 ग्राम म्यूरेट आफ पोटाश व 5 ग्राम ब्लीचिंग पाउडर, गड्ढे की मिट्टी में मिलाते हैं। गड्ढों में कंध की रोपाई इस तरह करते हैं कि रोपाई के समय कलिका का भाग ऊपर की ओर रहे। रोपाई के बाद खेत को सूखा पुआल, घास–फूस या पत्ते से ढक देते हैं। इससे खेत में खरपतवार का जमाव नहीं होता है तथा नमी भी संरक्षित रहती है।

सिंचाई व निराई गुड़ाई

यदि बुवाई के समय नमी की कमी हो तो बुवाई के तुरंत बाद सिंचाई कर देनी चाहिए। उसके उपरांत खेत में आवश्यक नमी बनाए रखने के लिए गर्मी में 7–10 दिन के अंतराल पर तथा सर्दियों में 15–20 दिन के अंतराल पर सिंचाई करते रहना चाहिए। ध्यान रखें भूमि में जल भराव नहीं होना चाहिए। खेत में निराई गुड़ाई करके खरपतवार निकालते रहें। बुवाई के 65 से 70 दिन बाद प्रति हेक्टेयर 60 किग्रा0 नत्रजन के रूप में खड़ी फसल में छिड़काव कर गुड़ाई कर के हल्की मिट्टी चढ़ा दें।

सारणी 1: बहराइच में कृशकों के प्रक्षेत्र पर जिमीकंद पर किये गये प्रदषनों का आय–व्यय ब्यौरा प्रदर्षित तकनीकी प्रदर्षन सं0 क्षेत्रफल (हे.) औसत उत्पादन

प्रदर्शित तकनीकी	प्रदर्शन सं0	क्षेत्रफल (हे.)	औसत उत्पादन (कु./हे)	लागत (रू./हे.)	सकल आय (रू./हे.)	शुद्ध लाभ (रू./हे.)	लगत लाभः अनुपात	कंद का औसत वजन (कि. ग्रा.)	तना सडन रोग (प्रतिशत)
कृषक पद्धति (स्थानीय प्रजाति)	10	0.2	493.8	165500	641940	47440	2.86	4.13	10.14
संस्तुत तकनीकी (गजेन्द्र प्रजाति)	10	0.2	740.00	75000	935000	76000	4.34	5.85	2.23

फसल सुरक्षा

सूरन की फसल में कीटों से कोई हानि नहीं होती है। इसमें मूल स्तंभ, संधि विगलन (काबर रॉट) नामक बीमारी का प्रकोप होता है। जिसमें तने सिकुड़ कर पीले हो जाते हैं। इसकी रोकथाम के लिए जल निकास की अच्छी व्यवस्था होनी चाहिए। भूमि रीडोमिल एम. जेड–72 घुलनषील चूर्ण 2.5 ग्रा0 प्रति ली0 के घोल में शोधित करना चाहिए। फसल पर झुलसा रोग का प्रकोप होता है। इस रोग की रोकथाम के लिए रोपण

से पूर्व कंदों को फफूंदनाशक दवा से उपचारित करके बोना चाहिए। रोग लगने पर प्रभावित पौधों को उखाड़ कर जला देना चाहिए। फसल पर एग्रीमाइसीन का 10 पी.पी.एम. की दर से 15 दिनों के अंतराल पर दो से तीन छिड़काव करें।

खुदाई

अक्टूबर के बाद धीरे–धीरे पत्तियां पीली पड़ने लगती है जब पत्तियां सूख कर गिरने लगे तो कंद खुदाई योग्य हो जाते हैं। खुदाई फावड़े द्वारा सावधानी पूर्वक करें जिससे कंद कटने न पाएं। खुदाई के बाद कदों को छाया में रखें।

वर्गीकरण और भंडारण

खुदाई के बाद कंद से लगी मिट्टी को साफ करके छोटे कंदों को जिनका वजन 500 ग्राम के बराबर हो छांट कर अलग कर लें। ये बुवाई के लिए उपयुक्त होते हैं। जिमीकंद का भंडारण सूखे एवं छायादार स्थान पर करें। इस प्रकार इसका भंडारण एक वर्ष तक आसानी से किया जा सकता है।

उपज

जिमीकंद की उन्नतषील प्रजातियां के उगाने पर लगभग 600 से 800 कु0/हे0 उपज प्राप्त हो जाती है तथा 1 हे0 क्षेत्रफल से लगभग 4.5 से 7.5 लाख रुपए की आय होती है। कृषि विज्ञान केंद्र बहराइच द्वारा कृशकों के प्रक्षेत्र पर कराये गये प्रदर्षनों से प्राप्त जिमीकंद उत्पादन के आंकड़ों का विवरण सारणी 1 में प्रदर्शित किया गया है।

सूरन की फसल में कीटों से कोई हानि नहीं होती है। इसमें मूल स्तंभ, संधि विगलन (काबर रॉट) नामक बीमारी का प्रकोप होता है। जिसमें तने सिकुड़ कर पीले हो जाते हैं। इसकी रोकथाम के लिए जल निकास की अच्छी व्यवस्था होनी चाहिए। भूमि रीडोमिल एम. जेड–72 घुलनषील चूर्ण 2.5 ग्रा0 प्रति ली0 के घोल में शोधित करना चाहिए। फसल पर झुलसा रोग का प्रकोप होता है। इस रोग की रोकथाम के लिए रोपण से पूर्व कंदों को फफूंदनाशक दवा से उपचारित करके बोना चाहिए। रोग लगने पर प्रभावित पौधों को उखाड़ कर जला देना चाहिए। फसल पर एग्रीमाइसीन का 10 पी.पी.एम. की दर से 15 दिनों के अंतराल पर दो से तीन छिड़काव करें।

खुदाई

अक्टूबर के बाद धीरे–धीरे पत्तियां पीली पड़ने लगती है जब पत्तियां सूख कर गिरने लगे तो कंद खुदाई योग्य हो जाते हैं। खुदाई फावड़े द्वारा सावधानी पूर्वक करें जिससे कंद कटने न पाएं। खुदाई के बाद कदों को छाया में रखें।

वर्गीकरण और भंडारण

खुदाई के बाद कंद से लगी मिट्टी को साफ करके छोटे कंदों को जिनका वजन 500 ग्राम के बराबर हो छांट कर अलग कर लें। ये बुवाई के लिए उपयुक्त होते हैं। जिमीकंद का भंडारण सूखे एवं छायादार स्थान पर करें। इस प्रकार इसका भंडारण एक वर्ष तक आसानी से किया जा सकता है।

उपज

जिमीकंद की उन्नतषील प्रजातियां के उगाने पर लगभग 600 से 800 कु0/हे0 उपज प्राप्त हो जाती है तथा 1 हे0 क्षेत्रफल से लगभग 4.5 से 7.5 लाख रुपए की आय होती है। कृषि विज्ञान केंद्र बहराइच द्वारा कृशकों के प्रक्षेत्र पर कराये गये प्रदर्शनों से प्राप्त जिमीकंद उत्पादन के आंकड़ों का विवरण सारणी 1 में प्रदर्शित किया गया है।

उत्तर प्रदेश में रेशम की खेती : सम्भावनाएं एवं आवश्यकता

डॉ. हेमलता पन्त
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, जन्तु विज्ञान विभाग
सी.एम.पी. पी.जी. कॉलेज प्रयागराज – 211 002 (उ0प्र0)

राज्य सरकार की प्रदेश को रेशम उत्पादन में देश का सबसे बड़ा और अग्रणी केन्द्र बनाने की योजना है। इसके तहत मुजफ्फरनगर,सहारनपुर एवं बिजनौर की 5000 एकड़ भूमि को रेशम बेल्ट केरूप में विकसित किया जाएगा। साथ ही राज्य सरकार ने रेशम की 7,000 टन माँग को देखते हुए अगले पाँच वर्ष के लिए 10,000 टनके उत्पादन का लक्ष्य निर्धारित किया है। शायद सरकार ने जब स्वरोजगार भत्ता देने के विकल्पों का मन्थन किया होगा तो उसे सर्वप्रथम रेशम की खेती नजर आयी होगी। ऐसी परिस्थिति में जब कृषि घाटे का सौदा है किसान खेती करना चाहते ही नही और जो इस घाटे के व्यवसाय में लगे हैं उनके पास दूसरा चारा नहीं है,यह एक सर्वेक्षण से स्पष्ट भी हो गया है।

संभावनाएं :–

निःसन्देह हमारे प्रदेश में रेशम उत्पादन की अपार सम्भावनाएं हैं। ग्रामीण उत्थान के लिए यह एक सफल उपक्रम हो सकता है। भारत ही एक ऐसा देश है जहां पांचो प्रकारके रेशम उत्पादित होते हैं– मलबरी, इरी, मूंगा, मौसमी तसर,पहाड़ी तसर। भारत रेशम का सबसे बड़ा उपभोक्ता है जबकि उत्पादन में विश्व में दूसरे स्थान पर है। भारत में कुल रेशम उत्पादन लगभग 1500 टन होता है। जिसमें 90 प्रतिशत हिस्सा शहतूत रेशम का है। यह हर्ष की बात है कि शहतूत की बहुत सी प्रजातियां उत्तर प्रदेश में सफलता से उगाई जा सकती हैं और रेशमकीट का पालन किया जा सकता है। रेशम उत्पादन एक कुटीर उद्योग है जिसमें श्रम की खपत (कुशल व अकुशल) बहुत अधिक है। महिलाओं, बच्चों व अशक्तबुजुर्गों को भी इसमें काम मिल जाता है और इससे छिपी बेरोजगारी कम हो जाती है। हमारे देश में रेशम उत्पादन का व्यवसाय दक्षिणभारत में काफी फल फूल रहा है। भारत का लगभग 80 प्रतिशत रेशम उत्पादन दक्षिण भारत में ही होता है। आज रेशम के सकर काड़, शहतूत की प्रजातियां, पत्ती उत्पादन की तकनीकें, रेशम निकालना,आदि तकनीकें विकसित अवस्था में हैं। हमें केवल दृष्टिकोण में बदलाव लाकर इस उपक्रम को अपनाना है। इसका बाजार उपभोक्तावादी युग होने के कारण दिन रात बढ़ेगा। हमारे ही देश में 25000 टन रेशम की मांग की जगह केवल 1500 टन उत्पादित किया जा पा रहा है। हम आयात पर निर्भर हैं।

शहतूत का पौधा बंजर, ऊसर तथा कम उपजाऊ जमीन में भी सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। हमारे प्रदेश में सबसे अधिक इस प्रकार की भूमि है जिसका स्थाई रूप से सुधार कियाजा सकता है। शहतूत के बाग में अन्तः सस्यन की अपार संभावनाएं हैं। जिसमें दालों, सब्जियों, औषधीय पौधों आदि को उगाकर लाभ कमाया जा सकता है। खेत पर एवं खेत के बाहर (प्रसंस्करण) रोजगार की संभावनाएं रेशम की खेती में निश्चित तौर पर है।

शहतूत एक परिचय :

शहतूत मुख्यतः शीतोष्ण प्रदेश का पौधा है। इसका कुल मोरेसी है। फल के रंग के अनुसार यह तीन

प्रकार का होता है—रूब्रा (लाल), नाइग्रा (काला) , तथा अल्बा (सफेद)। इसका वृक्ष 6—18 मीटर ऊंचाई का होता है। उत्तर प्रदेश में सफेद शहतूत खूब होता है जो कि पर्णपाती स्वभाव का है। इसकी छाल से कागज बनता है। पत्तियां चारे एवं रेशम उत्पादन के लिए तथा लकड़ी फर्नीचर व नाव आदि के लिए प्रयोग में लाई जाती है। इसका फल अति स्वादिष्ट व पाचक होता है। इसके लिए पर्याप्त धूप व दोमट भूमि अच्छी रहती है। यह सूखा, पाला आदि के प्रति सहनशील है। यह कलम विधि से आसानी से प्रवर्धित किया जा सकता है। इसका रोपण जुलाई में 6—8 मीटर की दूरी पर किया जाता है। यह पौधा कटाई — छटाई के प्रति सहनशील है और गहरी कटाई करने पर ओजपूर्ण नई शाखायें तनें से निकलती हैं, जिनमें पत्ती पर्याप्तमात्रा में होती हैं। यही विशेषता रेशम पालन में मदद करती है,क्योंकि इस पौधे की पत्ती ही रेशम कीट के भोजन के काम आती है।

प्रासंगिकता:—

जनसंख्या दबाव के कारण कृषि योग्य भूमि दिनों दिन कम होती जा रही है. ऐसे में समेकित प्रबंधन द्वारा बेकार पड़ी भूमि प्रयोग में लाई जा सकती है। हमें बहुउद्देश्यीय उपक्रमों का चयन करना होगा जिससे भूमि उपयोग के साथ—साथ रोजगार मिल व शहर पलायन रुक सके। निश्चित सतत आय एवं रोजगार उपलब्ध कराकर ऐसा किया जा सकता है। इसके लिए शहतूत पर रेशम कीट पालन के साथ—साथ अन्तः संस्यन की सलाह दी जा सकती है। कृषि वैज्ञानिकों को इसके लिए सस्य क्रियाओं के चुनाव, संसाधन प्रबन्धन, एकीकृत पोषण प्रबन्धन, रोग व कीटप्रबन्धन आदि में सहायता करनी होगी। क्षेत्र विशेष तथा समुदाय विशेष के लिए रणनीति बनानी होगी जिसमें कृषक भागीदारी अति आवश्यक है नहीं तो तकनीकी अंगीकरण में उनको असहजता होगी और योजना फलीभूत नही होगी। अन्ततः सरकार को प्रदेश में और जिलों को भी चिन्हित करना चाहिए जहाँ इसकी खेती व्यवसायिक स्तर पर की जा सकती हो। प्रशिक्षण के माध्यम से किसानों के दृष्टिकोण में बदलाव पर जोर देना चाहिए और उनमें यह विश्वास जगाना चाहिए कि यह तकनीक उनकी और उनके लिए है। सहकारिता का भारत में लोप होता जा रहा है। संस्थाएं तो जीवित हैं परन्तु विचारधारा नहीं। छोटे व सीमान्त कृषकों में ग्राम पंचायत स्तर पर सहकारी संगठन बनाने की महत्ता को समझाया जाना चाहिए। जिससे वे अपनी छोटी—छोटी जमीन पर इसका रोपड़ करके उत्पाद एक साथ बेंचकर उचित कीमत प्राप्त कर सकें। अथवा अपनी बेकार जमीन काछोटा टुकड़ा भी अन्य कृषकों के साथ मिलाकर व्यवसाय को लाभकारी बना सकें।

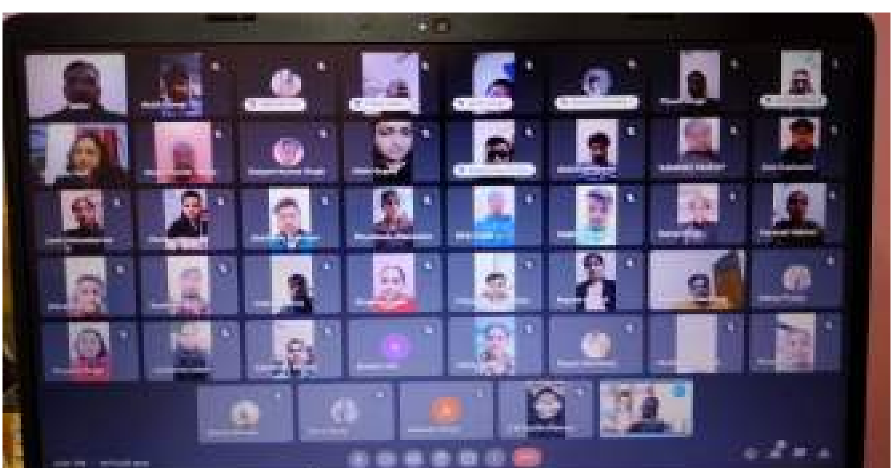

किसान उत्पादक संगठन – दोगुनी आय का नया रास्ता

डॉ. सूर्य नारायण[1], डॉ. मनोज कुमार[2] सिंह एवं डॉ. हेमलता पन्त[3]
[1]प्रोफेसर, उद्यान विज्ञान विभाग, कुलभास्कर आश्रम पी.जी. कॉलेज प्रयागराज – 211002
[2]असिस्टेन्ट प्रोफेसर, उद्यान विज्ञान विभाग, कुलभास्कर आश्रम पी.जी. कॉलेज प्रयागराज,
[3]असिस्टेन्ट प्रोफेसर, जन्तु विज्ञान विभाग, सी.एम.पी. पी.जी. कॉलेज प्रयागराज

उत्पाद को विशेष रूप से छोटे एवं सीमांत किसानों का उत्पादक संगठनों में सामूहिकरण सबसे कारगर तरीकों में से एक है । यह कृषि से जुड़ी अनेक चुनौतियों का सामना करने तथा निवेश प्रौद्योगिकी एवं आदान तथा बाजार तक पहुंच में सुधार के लिए एक अत्यंत प्रभावी तरीका बनकर उभरा है । कृषि एवं सहकारिता विभाग कृषि मंत्रालय भारत सरकार ने कंपनी अधिनियम 1956 के विशेष प्रावधानों के अंतर्गत पंजीकृत किसान उत्पादक संगठनों की सबसे उपयुक्त संस्थानिक स्वरूप के रूप में चिन्हित किया है । किसानों को संगठित करके उनकी उत्पादन एवं विपणन क्षमता विकसित की जाएगी ।

लक्ष्य :

1. एक समृद्ध एवं संपोषणीय कृषि क्षेत्र का निर्माण करने के लिए सदस्यों के स्वामित्व वाले उत्पादक संगठनों को बढ़ावा और समर्थन देना ।
2. किसानों को कुशल, लागत प्रभावी और टिकाऊ संसाधनों के उपयोग के द्वारा उत्पादकता बढ़ाना ।
3. अपने उत्पादन के लिए अधिक प्रतिफल पाने में सक्षम बनाना ।

मिशन :

1. लोकतांत्रिक एवं स्वशासी कृषक उत्पादक संगठनों को बढ़ावा देना ।
2. संसाधन संस्थानों के माध्यम से कृषक उत्पादक संगठनों के संवर्धन के लिए सहायता प्रदान करना ।
3. कृषक उत्पादक संगठनों को तकनीकी ज्ञान, वित्तीय सहायता, वित्तीय संसाधन एवं आधारभूत सुविधाएं प्रदान करना ।

कृषक उत्पादक संगठनों की सहायता के लिए केंद्र सरकार की संस्थाएं :

1. कृषि एवं सहकारिता विभाग, कृषि मंत्रालय,भारत सरकार प्रधान संस्था है ।
2. लघु कृषक कृषि व्यवसाय परिसंघ जो कृषि एवं सहकारिता विभाग के अंतर्गत एक संस्था है । तकनीकी सहायता,प्रशिक्षण संबंधी आवश्यकताओं , अनुसंधान एवं ज्ञान प्रबंधन के लिए और निवेश प्रौद्योगिकी एवं बाजारों से संबंध स्थापित करने के लिए ।
3. राष्ट्रीय सहकारिता विभाग विकास निगम सहायता करेगा ।
4. नेफेड सहायता करेगा ।
5. भारतीय खाद्य निगम सहायता करेगा ।

राज्य सरकार की संस्थाओं की भूमिका :

1. कृषक उत्पादक संगठनों को पंजीकृत सहकारी समितियों तथा स्वयं सहायता समूह संगठनों के समकक्ष घोषित करना ।

2. कृषि निवेश हेतु लाइसेंस प्रदान करना ।
3. उत्पादन एवं विपणन के लिए अनुदान देना ।
4. संविदा कृषि की व्यवस्थाओं में सहायता प्रदान करना ।
5. कृषक उत्पाद संगठनों को खरीद एवं वसूली एजेंट के रूप में नियुक्त करना ।
6. वित्तीय संस्थाओं से कृषक उत्पादक संगठनों को जोड़ना ।
7. कृषक उत्पादक संगठनों की सहायता के लिए नीतियां लागू करना ।

उत्तर प्रदेश के संदर्भ में कृषक उत्पादक संगठन :

1. सभी ग्राम पंचायतों में कृषक उत्पादक संगठन खोलने का लक्ष्य ।
2. प्रथम चरण में प्रदेश के सभी 823 विकास विकास खंडों में कृषक उत्पादक संगठन खोले जाएंगे
3. दूसरे चरण में 8000 से अधिक न्याय पंचायतों में कृषक उत्पादक संगठन खोले जाएंगे ।
4. तीसरे चरण में सभी 60,000 से अधिक ग्राम पंचायतों में कृषक उत्पादक संगठन खोले जाएंगे ।
5. जैविक खेती को बढ़ावा कृषक उत्पादक संगठनों के माध्यम से दिया जाएगा ।
6. बैंकों से कृषक उत्पादक संगठनों को ऋण दिलाया जाएगा ।
7. ऋण रूपए 500000 होगा जिस पर 4 प्रतिशत सरकार अनुदान देगी ।
8. कृषक उत्पादक संगठन का कंपनी अधिनियम 1956 या उत्तर प्रदेश राज्य सहकारी समिति अधिनियम 1965 के अंतर्गत पंजीकरण अनिवार्य होगा ।
9. कृषक उत्पादक संगठनों में सदस्यों की न्यूनतम संख्या 150 होगी सभी सदस्यों का अंशदान कुल रूपए 100000 कम से कम होना चाहिए ।
10. जिला स्तर पर जिला अधिकारी की अध्यक्षता में गठित निगरानी समिति से लेना होगा अनुमोदन ।

सारांशः

कृषक उत्पादक संगठन लाभ के अनुसार क्या उत्पादन करना ,कितना उत्पादन करना, तथा कब उत्पादन करना है का निर्धारण स्वयं कर सकेंगे ।

संगठन में उत्पादन की मात्रा विपणन योग्य होगी । थोड़ा– थोड़ा उत्पादन समूह में ज्यादा होगा जिससे विपणन में सुविधा होगी । सरकार कृषक उत्पादक संगठनों को तकनीकी एवं वित्तीय सहायता करेगी इससे किसान का जीवन स्तर ऊंचा उठ सकेगा ।

मशरूम प्रशिक्षण कार्यक्रम

एस.बी.एस.आर.डी., प्रयागराज

परंपरागत खेती में वर्मी कम्पोस्ट का महत्व

मधुमिता पाण्डेय[1], विनय कुमार मौर्या2 एवं अरविन्द मौर्या[2]

[1]सहायक प्राध्यापक, नेताजी सुभाष विश्वविद्यालय जमशेदपुर, झारखण्ड

[2]जी. सिंह. डिग्री कालेज, संहसो, प्रयागराज, (उ0प्र0)

आधुनिक कृषि में बढ़ते हुए रसायनों के प्रयोग से मृदा एवं पर्यावरण की अवस्था दिन–प्रतिदिन बिगडती जा रही है, इसको कम करने हेतु वर्मी कम्पोस्ट का उपयोग महत्त्वपूर्ण हो गया है। इस लिए मृदा में केंचुए की खाद की मात्रा को बढ़ाया जाना अति आवश्यक हो गया है। केंचुए का महत्व कृषि जगत में अतुलनीय होने के साथ साथ केंचुए को किसान का सबसे बड़ा मित्र कहा जाता है केंचुए को प्राकृतिक हलवाहा एवं धरती की आंत जैसे नामों से जाना जाता है इसका प्रमुख कारण इसका महत्व है जोकि कृषि में अपना योगदान अनवरत देता रहता है। परिवेश के तापमान में अच्छी गुणवत्ता वाली खाद का उत्पादन पूरा किया जा सकता है कम समय में वर्मी कम्पोस्ट बनाने की प्रक्रिया जिसमें उचित का उपयोग शामिल है केंचुओं की प्रजातियां। केंचुओं की देशी सेल्युलस गतिविधि और केंचुए की आंत में सूक्ष्मजीव अंतर्ग्रहण के तेजी से अपघटन को बढ़ावा देते हैं कार्बनिक पदार्थ। एंजाइमी गतिविधि और पीसने का संयुक्त प्रभाव केंचुओं द्वारा सूक्ष्मता के लिए कार्बनिक पदार्थ वर्मी कम्पोस्टिंग का उत्पादन करते हैं और यह केंचुआ के बिना खाद के गड्ढों में नहीं देखा जाता है।

केंचुओं का उपयोग कर फसल अवशेष/कृषि अपशिष्टों को खाद बनाने की प्रक्रिया धीरे–धीरे निर्मित कृषि अपशिष्ट और गाय के गोबर को फैलाना शामिल है उथली परतें। गर्मी से बचने के लिए गड्ढों को उथला रखा जाता है जिससे कि जान जा सकती है केंचुए। सामग्री को अपेक्षाकृत तेजी से बदलने के लिए केंचुओं को सक्षम करने के लिए लगभग 30०ब का तापमान रखा गया है। इसके द्वारा उत्पन्न अंतिम उत्पाद प्रक्रिया को वर्मीकम्पोस्ट कहा जाता है जो अनिवार्य रूप से किसके द्वारा बनाई गई जातियों से मिलकर बनता है कच्चे कार्बनिक पदार्थों को खाने वाले केंचुए। कृषि उत्पादन में बढोत्तरी, उत्पादन लागत कम करने, मृदा को स्वस्थ्य बनाये रखने एवं पर्यावरण तथा स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से जैविक खाद के रूप में केचुआ खाद का प्रयोग काफी महत्वपूर्ण है, कृषि क्षेत्र को ध्यान में रखते हुए आस–पास में उपलब्ध पौधों के अवशिष्ट, पशुओं के गोबर और वनों के अवशेष से जैविक खेती की जा सकती है किसान जैविक खेती द्वारा उपज में बढोत्तरी करके कम क्षेत्र में अपनी आय बढ़ा सकते हैं

वर्मी कम्पोस्ट से लाभ–

1. इस खाद से पौधों के लिए सभी पोषक तत्व (नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटास, मैगनिशियम, मैगनीज, कापर, लोहा आदि) पर्याप्त मात्रा में प्राप्त हो जाता है।
2. इसके प्रयोग से रोग एवं कीट का प्रकोप कम हो जाता है।
3. इसमें विभिन्न प्रकार के विटामीन एवं हार्मोन होने के कारण यह पौधों के लिए विशेष लाभदायक है।
4. केचूए की खाद को अपनाकर मृदा एवं पर्यावरण को काफी हद तक सुधारा जा सकता है।
5. पौधों की नर्सरी, किचन गार्डेन, गमले की खेती आदि में बहुत उपयोगी है।
6. यह पौधों के विकास, वृद्धि, गुणवत्ता एवं स्वजीवन को बढ़ाता है।

वर्मी कम्पोस्ट बनाने के लिए स्थान का चुनाव

वर्मी कम्पोस्ट बनाने के लिए कच्ची या पक्की किसी भी प्रकार की जमीन प्लास्टिक के बर्तन, लकड़ी के डिब्बे या ऊँचे स्थान आदि का उपयोग कर आसानी से खाद तैयार की जा सकती हैं परन्तु अच्छी कम्पोस्ट/खाद प्राप्त करने के लिए हमेशा छायादार एवं शुष्क जमीन का चुनाव करना चाहिए क्योंकि केंचुए को ज्यादा प्रकाश पसंद नहीं है, एवं साथ ही साथ चुनाव किया गया स्थान एवं सामाग्री चीटियों एवं दीमक से सुरक्षित होना चाहिए ।

केंचुए की खाद बनाने का प्रारूप

स्थान विशेष की जलवायु को देखते हुए व्यावसायिक स्तर पर खाद बनाने के लिए बिभिन्न प्रकार के ढाचे का इस्तेमाल किया जा सकता है । स्थानिक रूप से उपलब्ध सामाग्री से अलग–अलग ढाचें तैयार कर खाद का उत्पादन किया जा सकता है।

1. सीमेंट ईट या होलोब्लाक टैंक
2. फार्म या खेत पर संरक्षित गढ्ढे बनाकर
3. प्लास्टिक बर्तन में

वर्मी कम्पोस्ट बनाने हेतु सामग्री–वर्मी कम्पोस्ट बनाने के लिए निम्नलिखित सामग्री की आवश्यकता पड़ती है

1. जैविक पदार्थ (घरेलू जैविक/खेत का कूड़ा–कचड़ा) ।
2. खाद बंनाने के लिए उचित प्रकार का ढांचा ।
3. खाद बनाने का उपयुक्त तरीका ।
4. केचुआ (1000–1100) प्रति वर्ग मीटर पिट के लिए ।

केंचुए का प्रयोग– वैज्ञानिक आधार से 1000 किलोग्राम जैविक पदार्थ से वर्मी कम्पोस्ट बनाने के लिए 2–3 किलोग्राम केंचुए चाहिए । लाल केचुआ जैसे यूसेनिया फोईटीडा एवं यूद्रीलस यूजिनियाँ प्रजाति के केंचुए से खाद शीघ्र बनती है ।

वर्मी कम्पोस्ट बनाने की विधि :–

उपर्युक्त बताये गये ढाचे से खाद बनाने के लिए निम्नलिखित क्रम में खाद बनाना चाहिए ।

- घरेलु एवं खेत के कूड़ा कचरा तथा जिन्दाबली को इक्कठा करे ।
- उसके बाद सभी को छोटे–छोटे टुकडो में काट दे ताकि सड़ाव तेज हो सके ।
- कटे हुए सामाग्री को धुप में 10 दिन तक रखे ।
- गोबर एवं पानी के मिश्रण (5 किग्रा गोबर+15 लीटर पानी) को ढेर पर छिड़कते रहे ।
- जैविक कचड़े एवं गोबर को 60:40के अनुपात में मिलाये ।
- 1000 किग्रा कचड़े में 2–3 किलोग्राम केचुआ डाले ।
- केचुओं को चिटीयो से बचाने के लिए टैंक के ऊपर जल बनाये ।
- पानी का छिडकाव प्रतिदिन करे ताकि 70–80 प्रतिशत नमी बनी रहे ।
- टैंक के ऊपर हमेशा छाया रखे ताकि धूप और बारिश से बचाव हो सके ।
- 90 प्रतिशत सड़ाव होने पर पानी का छिडकाव बंद कर दे ।
- जब टैंक के उपरी सतह पर काले दानेदार खाद दिखाई पड़े तो समझ ले खाद तैयार है । इसके लिए 50'65 दिन का समय लगता है ।
- टैंक में से खाद निकाल ले एवं छायेदार स्थान पर रखे

• निचली परत से केंचुए के कोकून को छान कर (जालीदार छलनी से) अलग कर ले एवं प्राप्त कोकून को दूसरे तैयार गढ्ढे में डाल दे ।

वर्मी कम्पोस्ट बनाते समय सावधानियां :–

1. हमेशा कटा एवं सुखा जैविक पदार्थ का इस्तेमाल करे ।
2. तापमान हमेशा 20–30डिग्री के बीच होना चाहिए ।
3. टैंक को चीटियों एवं कीड़े मकोडों से बचाना चाहिए ।
4. चीटियों से वचाव के लिए टैंक में चारो तरफ हल्दी एवं लाल मिर्ची को मिलाकर छिडकाव करे ।
5. केंचुए को पकड़ते समय सावधानी रखे ताकि केंचुए घायल न होने पाये ।
6. खाद से केचुआ अलग करने के बाद उसमे ५ किलोग्राम ट्राईकोडरामा या स्यूडोमोनास मिला दें ।

अच्छी खाद तैयार करने के उपाय :–

1. घरेलू जानवर द्वारा प्राप्त गोबर एवं खरेलु कचरा के मिश्रण को अच्छी तरह मिलकर इस्तेमाल करे ।
2. 15 दिनों में गोबर का घोल डालने से केंचुए का क्रिया कलाप बढ़ जाता है । जिससे विकास तेज होने के साथ खाद शीघ्र तैयार होती है ।
3. ट्राईकोडरामा एवं स्यूडोमोनास मिलाने से खाद की गुड़वत्ता बढ़ जाती है क्योकि यह रोगाणु को कम करता है ।

फार्म स्तर पर वर्मी खाद का उत्पादन

अच्छी योजना के अनुसार एवं खाद की आवश्यकता और पर्याप्त संसाधन जैसे गोबर, जैविक कूड़े आदि को ध्यान में रखकर फार्म स्तर में वर्मी खाद का उत्पादन करना चाहिए । जिसमे निम्न बातों का ध्यान में रखना चाहिए ।

• कूड़े कचरे की पर्याप्त मात्रा
• हर साल खाद की मांग
• फार्म पर पशुधन की प्राप्यता

नारी शक्ति सम्मान समारोह-2023 संपन्न

वॉइस ऑफ इलाहाबाद

प्रयागराज। सोसाइटी ऑफ बायोलॉजिकल साइंसेज एंड रूरल डेवलपमेंट, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश में अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस के उपलक्ष्य में राष्ट्रीय संगोष्ठी डिजिटल ऑल: लैंगिक समानता के लिए नवाचार और प्रौद्योगिकी नामक विषय पर संपन्न हुई। इस संगोष्ठी में सभी अतिथियों का स्वागत डॉक्टर ज्योति वर्मा ने किया।

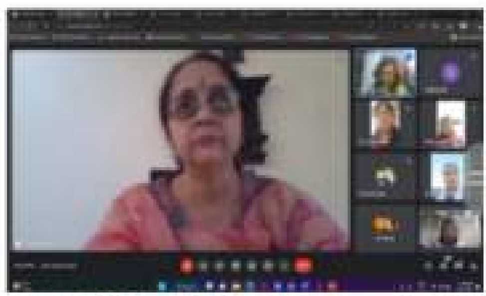

डॉक्टर हेमलता पंत, सचिव, एस बी एस आर डी प्रयागराज ने संस्था और कार्यक्रम की पूरी जानकारी दी। आज की मुख्य वक्ता डॉ रुचि बडोला, वैज्ञानिक जी वाइल्डलाइफ इंस्टीट्यूट ऑफ इंडिया, देहरादून ने अपने व्याख्यान में बताया कि महिलाएं भारत की जनसंख्या का लगभग आधा हिस्सा हैं लेकिन उन्हें अपेक्षाकृत देश की आर्थिक संपदा का कम लाभ मिला है वर्तमान समय में समाज के प्रत्येक क्षेत्र में महिलाएं पुरुषों के कंधे से कंधा मिलाकर चल रही हैं विज्ञान प्रौद्योगिकी से लेकर अंतरिक्ष वाणिज्य व राजनीति हर क्षेत्र में महिलाओं ने नई ऊंचाइयों को छुआ है हमारी भारतीय महिलाएं प्राचीन काल में भी बहुत आगे थी वह वैज्ञानिक सोच रखती थी लीलावती जी का उदाहरण हम सबके सामने है इसी प्रकार अमृता देवी, गौरा देवी जी जिस प्रकार वृक्षों को बचाने में अपना योगदान दिया वह अतुलनीय है नर्मदा बचाओ आंदोलन में मेधा पाटेकर जी का योगदान क्या हम भूल सकते हैं वंदना शिवाजी का पर्यावरण विज्ञान में कार्य क्या किसी पुरुष से कम है इस कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए प्रोफेसर कृष्णा मिश्रा जी ने बताया कि इस वर्ष की थीम समाज के सभी वर्गों की महिलाओं के विकास हेतु तकनीकी में प्रयोग को बढ़ावा देती है विश्व के विभिन्न भागों में तकनीक से वंचित महिलाओं को तकनीक व नवाचार के माध्यम से समाज के मुख्यधारा में शामिल करना ही इस वर्ष का मुख्य उद्देश्य है इस कार्यक्रम में संचालन कुमारी शालेहा ने तथा धन्यवाद ज्ञापन डॉ अर्चना आद सिंह ने दिया।

इस कार्यक्रम में डॉ रुचि बडोला, डॉक्टर प्रीती खरे डॉक्टर, दीपा श्रीवास्तव, डॉ आरती गुप्ता, डॉ विनीता जायसवाल, डॉ तृप्ति श्रीवास्तव, डॉक्टर प्रिया सोनी, डॉक्टर अलका कटियार, डॉक्टर आभा उपाध्याय, डॉ सौम्या, डॉक्टर सरिता देवी, डॉक्टर सरिता त्रिपाठी, डॉ अर्चना यादव, डॉ अनीता सिंह, डॉक्टर निधि शुक्ला, डॉक्टर प्रिया श्रीवास्तव, डॉ शिखा खरे, डॉ अनीता सिंह, डॉक्टर विनी जान, डॉक्टर चंद्रप्रभा सिंह, भावना, प्रीति, प्रियांशु चौबे, वैशाली चतुर्वेदी, दीपिका पाठक, शालिनी कौशिक, कुमारी और कुमारी प्रिया एवम् कुमारी अंकिता भास्कर को उत्कृष्ट कार्यों हेतु नारी शक्ति सम्मान से सम्मानित किया गया।

औषधीय फसल अश्वगंधा का कृषि व्यवसायीकरण

डा0 सियाराम[1], डॉ0 आर0के0 आनन्द[2], डा0 एस.के. वर्मा[3] डा0 जय प्रकाश[4] एवं प्रमोद कुमार[5]
[1]विषय वस्तु विशेषज्ञ (शस्य विज्ञान), [3]वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष, [4]विषय वस्तु विशेषज्ञ (कृषि प्रसार)
[5]विषय वस्तु विशेषज्ञ (मत्स्य विज्ञान) कृषि विज्ञान केन्द्र, पचपेड़वा, बलरामपुर, [2]वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष, कृषि विज्ञान केन्द्र, अमेठी, (उ0प्र0)

परिचय एवं महत्वः

अश्वगंधा का वैज्ञानिक नाम विदानिया सोमनिफेरा है। यह एक महत्वपूर्ण औषधि के साथ– साथ एक नकदी फसल भी है। अश्वगंधा का पौधा बहुवर्षीय, झाड़ीनुमा, बहुशाखायुक्त 40–100 सेमी. तक लम्बा होता है। इसके पत्ते बैगन के पत्तों के समान अण्डाकार रेसायुक्त होते हैं। यह फसल हल्की वर्षा पर आधारित होने के कारण इसका महत्व और बढ़ जाता है। इसकी जड़ों का महत्व उसमें पाये जाने वाले पादप रसायन के कारण होता है। जड़ों में 0.13 से 0.31 प्रतिशत तक एल्कोलाइड का 35 से 40 प्रतिशत तक होता है। इसमें सबसे महत्वपूर्ण विदानिन एल्केलाइड है जो कुल एल्केलाइड का 35 से 40 प्रतिशत तक होता है। इसके अतिरिक्त जड़ों में सोमनेफेरिन, सोमिन, विदानिन सहित लगभग 13 एल्केलाइड्स पाये जाते हैं। इनकी जड़ों मे स्टार्च, शर्करा व प्रोटीन पाई जाती है साथ ही हेन्टि्एकोन्टेन, एल्केलाइड्स, विदनियोल अम्ल व कुछ मुक्त अमीनो अम्ल भी पाये जाते हैं। पत्तियों में लगभग 12 प्रकार के विदानोलाइड्स पाये जाते हैं जिनमें विदाफेरिन–ए सबसे महत्वपूर्ण है। इसमें एन्टीबायोटिक व एन्टीट्यूमर गुण रहते है। इसके पौधे, सूखी जड़ें आयुर्वेदिक व यूनानी औषधियों के बनाने के काम आती है। अश्वगंधा की जड़ों से विविध आयुर्वेदिक योग एवं दवाइयां निर्मित की जाती है उनमें से अश्वगंधारिष्ट एक है। इसकी 8–10 ताजी पत्तियों को प्रातः खाली पेट चबाने से मोटापा कम करने में सहायता मिलती है।

अश्वगंधा की खेती भारत के पश्चिमोत्तर भाग राजस्थान, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, पंजाब, गुजरात, उत्तर प्रदेश एवं हिमालय प्रदेश आदि में बहुतायत से की जा रही है। मध्य प्रदेश तथा राजस्थान के कुछ भागों में वृहद स्तर पर इस फसल की खेती की जाती है। इन्हीं क्षेत्रों से सम्पूर्ण देश में इसकी व्यवसायिक आपूर्ति होती है। इसकी खेती को उत्तर प्रदेश में सफलतापूर्वक किया जा सकता है, जिसकी अपार सम्भावनायें हैं। राज्य सरकार के कृषि विभाग एवं उद्यान विभाग को इसके औषधीय गुणों तथा कम लागत में अधिक लाभ देने की महत्ता को देखते हुए क्षेत्रफल बढ़ाने हेतु किसानों को विशेष सुविधा के साथ–साथ इसके उत्पाद की विपणन व्यवस्था पर भी विशेष ध्यान आकर्षित करना होगा।

औषधीय उपयोग

1. पौधों की जड़ें बलकारक, पौष्टिक एवं शुक्राणु वर्धक होती है।
2. जड़ों का आधा चम्मच पाउडर दिन में दो बार लेने से खांसी ठीक हो जाती है साथ ही अस्थमा में भी लाभदायक है।

   पौधे की 5 ग्राम सूखी जड़ों का दूध में बना काढ़ा दिन में दो बार सुबह एवं शाम लेने पर स्त्रियों की बीमारियों जैसे– श्वेत प्रदर, अधिक रक्त स्राव एवं गर्भपात में काफी लाभ पहुंचता है।

3. सूखी जड़ों का पाउडर गर्म पानी अथवा दूध के साथ लेने पर तंत्रिका तंत्र सम्बन्धित कमजोरी में उपयोगी सिद्ध होता है।
4. गठिया, जोड़ों के दर्द में 5 ग्राम पाउडर सुबह शाम गर्म पानी के साथ एक माह तक लेने से काफी राहत मिलती है।
5. अल्सर, सूजन, मोच एवं घाव में ताजी जड़ों अथवा पत्तियों को पीसकर लेप लगाने तथा एक ग्राम सूखा पाउडर पानी अथवा दूध के साथ सेवन करना लाभप्रद होता है।
6. नपुंसकता में पौधे की जड़ों का एक चम्मच पाउडर दूध, शहद अथवा घी के साथ दिन में दो बार तीन माह तक सेवन करने से काफी लाभ होता है।
7. पौधे की जड़ें जलोदर, पेट व फेफड़ों की जलन में भी बहुत उपयोगी होती है।
8. विभिन्न त्वचा सम्बन्धी रोगों में भी पौधों की जड़ें बहुत लाभदायक होती है।

भूमि एवं जलवायु

अश्वगंधा की अधिक पैदावार लेने के लिए अच्छे जल निकास वाली बलुई, बलुई दोमट, लाल मिट्टी जिसका पी.एच. मान 7.0 से 8.0 हो, सर्वोत्तम होती है। यह एक पछेती खरीफ फसल है, जिसे 650 से 750 मिमी. वर्षा वाले क्षेत्रों में उत्पादित किया जा सकता है। इसकी अच्छी फसल के लिए बुवाई के समय शुष्क मौसम तथा मिट्टी मे प्रचुर मात्रा में नमी होनी चाहिए। रबी पूर्व या शरद ऋतु में वर्षा होने पर इसकी जड़ों में वृद्धि तथा पैदावार में गुणात्मक सुधार आ जाता है। शुष्क कृषि हेतु अश्वगंधा सर्वोपयुक्त औशधीय फसल है।

उन्नत किस्में एवं उपलब्धता

अश्वगंधा की कुछ उन्नत किस्में विकसित की जा चुकी हैं। इनमें से डबलू एस 20, डबलू एस 134 प्रमुख हैं जो लगभग सभी प्रकार की वातावरणीय परिस्थितियों में सफलतापूर्वक उगाई जा सकती है। इन प्रजातियों की उपलब्धता केन्द्रीय औशधीय एवं सगन्ध पौध संस्थान, लखनऊ तथा प्रदेश के कृषि विश्वविद्यालयों से प्राप्त किया जा सकता है।

बुआई का समय व बीज की मात्रा

बुआई करने से पहले खेत को अच्छी तरह से 2 बार कल्टीवेटर द्वारा गहरी जुताई कर पाटा लगा दें। जुताई, जब वर्षा तीन चौथाई हो जाय तथा जमीन पानी सोख कर तृप्त हो जाय, सितम्बर के अन्तिम सप्ताह मे करनी चाहिए। इसकी बुआई के लिए 6–8 किग्रां. बीज की प्रति हेक्टेयर की दर से आवश्यकता होती है। यदि खेत की मिट्टी सूखी हो तो बुवाई से पूर्व पलेवा लगा कर नमी युक्त बनाना चाहिए। खेत में मिट्टी उचित नमी के साथ–साथ भुर–भुर बनी हो तो बीज के अंकुरण के लिए अच्छा रहता है।

बीजोपचार

बीज को बोने से पूर्व बाबिस्टीन, थीरम या डाइथेन एम–45 से क्रमशः 2 ग्राम व 3 ग्राम प्रति किग्रा. बीज की दर से उपचारित कर लेना चाहिए, जिससे बीज से फैलने वाले फफूंदी जनित रोगों की रोकथाम हो जाती है।

बुआई की विधियां

इस फसल की बुआई मुख्यतया दो प्रकार से की जाती है।

1. **कतार विधि** – इस विधि से बुवाई करने के लिए कूड़ों में तैयार किये गये खेत में 30–30 सेमी. की दूरी पर कतारों में 2 से 3 सेमी. गहराई पर बीजों की बुवाई कर देते है। बुवाई के तुरन्त बाद पाटा चला देते हैं

ताकि कूड़ों में नमी बनी रहे और बीजों का उचित जमाव हो।

2. **छिड़काव विधि** – इस विधि द्वारा बुवाई करना सर्वोत्तम रहता है। भली–भांति तैयार किए गए खेत में कल्टीवेटर द्वारा हल्की जुताई के उपरान्त बीज में आधा रेत मिला कर बीज को खेत में छिटक कर बिखेर दें। इसके बाद हल्का पाटा चला देना चाहिए। बीजों का अंकुरण 8–10 दिन में हो जाता है। इस विधि से बुवाई करने पर एक वर्ग मीटर में 70 से 80 पौध ही रखें। इस प्रकार एक हेक्टेयर में 7 से 8 लाख पौधों की संख्या रखनी चाहिए।

खाद एवं उर्वरक

औषधीय पौध जिनकी जड़ों का व्यावसायिक प्रयोग किया जाता है, में अकार्बनिक उर्वरकों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। परीक्षणों द्वारा सिद्ध हो चुका है। कि नत्रजन व फास्फोरस के प्रयोग से फसलों की जड़ों के उत्पादन में कोई खास वृद्धि नहीं होती है। अतः किसी रासायनिक उर्वरक के प्रयोग की सिफारिश नहीं की जाती है, परन्तु खेत की तैयारी करते समय सड़ी गोबर की खाद या जैविक खादों की प्रयोग 5 टन प्रति हेक्टेयर की दर से अवश्य करें।

सिंचाई

अश्वगंधा वर्षा ऋतु की फसल होने के कारण इसमें सिंचाई की आवश्यकता नहीं के बराबर होती है। नमी की बहुत कमी की दशा में भरा न रहे क्योंकि इससे फसल की जड़ों की गुणवत्ता भी प्रभावित होती है।

इसकी खेती सिंचित व असिंचित दोनों दशाओं में की जाती है। परन्तु सिंचित अवस्था में खेती करन पर एक सिंचाई बुवाई के 45 से 50 दिन बाद ही करनी चाहिए। असिंचित अवस्था में जड़ों की बढ़वार अधिक होती है क्योंकि जड़ें पानी की तलाश में सीधी बढ़ती है और शाखा रहित है।

निराई–गुड़ाई

बुआई से 40 से 50 दिन बाद एक बार निराई–गुड़ाई अवश्य कर दें। इसी समय कतार से कतार की दूरी 30 सेमी. तथा पौध की दूरी 5 सेमी. कर देना चाहिए।

फसल की खुदाई

ज्ब पौधों की नीचे की पत्तियां पीली पड़ने लगे तथा बेरी नारंगी रंग में परिवर्तित होने लगे तब यह माना जाता है कि फसल खुदाई योग्य हो गयी है। खेत में कुछ सीानों से पौधों को उखाड़ कर उनकी जड़ों को तोड़कर देखें यदि जड़ मूली की भांति टूट जाय तथा जड़ों में रेशे न हों तब समझें कि फसल खुदाई हेतु तैयार है। जड़ें रेशेदार हो जाने पर जड़ की गुणवत्ता में कमी आ जाती है। इस अवस्था के आने में साढ़े चार से साढ़े पांच माह का समय लगता है। पौधों को जड़ सहित उखाड़ लिया जाता है, यदि जड़ें गहरी हों तो जुताई करके निकाल लें। बाद में पौधों को एकत्र कर जड़ों को काट कर पौधों से अलग कर छोटे–छोटे टुकड़ों में करके सुखा लें।

जड़ों का श्रेणीकरण

जड़ों से बारीक जड़ों रेशों को मुक्त कर मोटाई एवं लम्बाई के आधार पर श्रेणीकरण करते हैं:

1. ग्रेड एः इसमें जड़ों की लम्बाई 5–7 सेमी. तथा व्यास 1 से 1.5 सेमी. जो कि तने के ठीक नीचे की होती है। जड़ अन्दर से ठोस व सफेद होती है।

.... **शेष भाग पेज नं0 68 पर**

ट्राइकोग्रामा का उत्पादन सब्जियों की फसलों में प्रत्यारोपण एवं उपयोगिता

डॉ0 धर्मेन्द्र सिंह एवं डॉ0 अतुल कुमार कुशवाहा
असिस्टेन्ट प्रोफेसर जन्तु विज्ञान एवं असिस्टेन्ट प्रोफेसर रसायन विज्ञान,
गोस्वामी तुलसीदास राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कर्वी, चित्रकूट, (उ0प्र0)

मुख्य रूप से बेधक कीटों की नई प्रजातियां सब्जी की फसलों को विभिन्न अवस्थाओं में पूरे वर्ष हानि पहुंचाती रहती हैं। सब्जी की फसल को हानि पहुंचाने वाले बेधक अपना जीवन चक्र पौधों में व्यतीत करते हैं जिसके कारण रसायनिक उपचारों से इन्हें पूर्णतया नियन्त्रित करना संभव नहीं है। फसलों को हानि पहुंचाने वाले बेधकों को नियन्त्रित करने हेतु ट्राइकोग्रामा परजीवी की दो प्रजातियों का प्रयोग देश के विभिन्न भागों में किया जा रहा है।

1. ट्राइकोग्रामा काइलोनिस
2. ट्राइकोग्रामा जापोनिकम

ये दोनों प्रजातियां बेधकों की अण्ड अवस्था को नष्ट कर देती हैं जिससे बेधक की सम्बन्धित पीढ़ी नष्ट हो जाती है तथा परजीवी की पीढ़ियां अनुकूल वातावरण में बढ़ने लगती हैं।

परीक्षणों के आधार पर यह निष्कर्ष प्राप्त हुआ है कि ट्राइकोग्रामा परजीवी के 50,000 वयस्क/हे0/15 दिन के अन्तराल का प्रयोग करने पर बेधक कीटों के 10—15 प्रतिशत अण्ड समूह नष्ट हो जाते हैं जिससे आपतन में कमी हो जाती है। उक्त अण्ड परजीवियों को समय—समय पर फसलों में अवमुक्त करके बेधकों को अण्ड अवस्था में ही नियन्त्रित कर फसल सुरक्षा करना लाभप्रद सिद्ध हुआ है तथा उपज में भी वृद्धि पायी गयी है।

ट्राइकोग्रामा का उत्पादन

ट्राइकोग्रामा का पोषक कीट आसानी से पाला जाने वाला कारसेरा सिफैलोनिका है। इसका प्रयोगशाला में पालन—पोषण आसानी से किया जा सकता है जिसके लिए बहुत अधिक स्थान की आवश्यकता नहीं पड़ती है। मक्का, ज्वार तथा चावल की भूसी की सहायता से इसका सफलता पूर्वक कम खर्च में उत्पादन किया जा सकता है। लकड़ी के 31 x 25 x 10 सेमी0 आकार के जालीदार केजों में 03 किग्रा0 मक्का की दलिया में 01 मिली0 कारसेरा सिफैलोनिका के अण्डे/केजों की दर से मिला देते हैं। तीन—चार दिन में अण्डों से सूड़ियां निकल कर मक्का/बाजरा के दलिया को खाना प्रारम्भ कर देती हैं। 27—32 दिन के बाद सूंड़ियां प्यूपा में परिवर्तित होने लगती हैं। प्यूपा अवस्था 10—13 दिन की होती है तत्पश्चात् प्यूपा से प्रौढ़ निकलना प्रारम्भ हो जाते हैं। प्रौढ़ को एकत्र कर उन्हें अण्डा देने वाले केज में डाल देते हैं उसके पश्चात् कारसेरा के जो अण्डे प्राप्त होते हैं उनको छलनी से साफ कर लेते हैं जिससे अण्डों के साथ प्रौढ़ों के पंख, पैर, त्वचा आदि साफ हो जाये। इन एकत्रित अण्डों को ढालू कार्ड पर डालते हैं जिससे शुद्ध अण्डे एक तरफ प्राप्त हो जाते हैं।

निष्कीटन

इस प्रकार एकत्रित अण्डों को एक पेट्रीडिश में फैला देते हैं तथा अण्डों को अल्ट्रावयलेट कक्ष में अल्ट्रावायलेट ट्यूब जला कर 45 मिनट के लिए रख देते हैं जिससे अण्डों के अन्दर का भ्रूण नष्ट हो जाता है तथा इन अण्डों से कारसेरा की सूंडी नहीं निकलती है। इस प्रकार निष्कीटन करने के पश्चात् इन अण्डों से परजीवी के अण्डों का कार्ड बनाते हैं। इसके लिए पोस्टकार्ड की तरह के मोटे कागज अथवा आर्ट पेपर से कार्ड तैयार करते हैं जिस पर पहले एक तरफ अकेसिया गोंद का एक पतला लेप कर देते हैं तथा गोंद लगी

कार्डों पर उपचारित कारसेरा के अण्डे बिखेर देते हैं। इस प्रकार एक कार्ड जिस पर लगभग 20,000 अण्डे स्थिर हो जाते हैं जो परजीवीकरण के काम आते हैं।

परजीवीकरण

ऐसे कार्ड जिन पर अण्डे चिपका दिये हों को कांच के ऐसे बेलनाकार ट्यूब में रखते हैं जिसमें वे आसानी से रखे जा सकें। इस बेलनाकार ट्यूब में ट्राइकोग्रामा से कार्ड को परजीवीकृत करने के लिए 6:1 के अुपात में रखते हैं। इस प्रकार परजीवीकरण हेतु इन कार्डों को 5 दिन के लिए छोड़ दिया जाता है तथा ट्यूब को काले कपड़े का ढक्कन बना कर बंद कर देते हैं। 48 घण्टों के पश्चात् लगभग 98 प्रतिशत परीजीवीकरण हो जाता है।

भण्डारण

परजीवीकृत कार्डों को कमरे के तापमान 27 से0ग्रे0 पर रखने से अण्डे तीन–चार दिन में काले पड़ जाते हैं जिससे परजीवीकृत अण्ड़ों को आसानी से पहचाना जा सकता है। पांचवे दिन अण्डे काले पड़ने के पश्चात् इन कार्डों (ट्राइकोकार्ड) का भण्डारण फ्रिज में आसानी से तीन माह तक किया जा सकता है। ध्यान इस बात का रखना आवश्यक है कि किसी भी स्थिति में फ्रिज बंद नहीं होना चाहिए जिससे उसका तापमान नियत बना रहे।

प्रत्यारोपण

सब्जियों की फसलों में ट्राइकोग्रामा के प्रत्यारोपण के लिए फ्रिज में रखे हुए कार्ड को 24 घण्टे पहले निकाल कर कमरे के तापक्रम पर रख देते हैं। उसके पश्चात् सुविधा हेतु कार्ड के छोटे–छोटे टुकड़ों को जिन फसलों में प्रत्यारोपित करना हो उनके पौधों की पत्तियों में प्रत्यारोपित कर दिया जाता है। फसल में विभिन्न नाशिकीटों के नियन्त्रण के लिए 50,000 ट्राइकोग्रामा के अण्डे/प्रौढ़/15 दिन के अन्तर पर/प्रति हेक्टेअर की दर से सायंकाल के समय प्रत्यारोपित किया जाता है। मुख्य रूप से इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि जब ट्राइकोकार्ड लगाना हो तो उसके 15 दिन पूर्व एवं पश्चात् किसी भी रासायनिक कीटनाशक का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए।

ट्राइकोकार्ड की उपयोगिता

ट्राइकोग्रामा परजीवी सब्जियों की फसलों में विभिन्न बेधकों के विरूद्ध बहुत उपयोगी साबित हुआ है। इसका प्रयोग पूरे भारतवर्ष में, प्रचुर प्रक्षेत्रों में किया जा रहा है, क्योंकि ट्राइकोकार्ड के प्रयोग से वातावरया में इन कीटों की संख्या अपने आप बढ़ने लगती है। यह परजीवी सब्जियों की फसलों में लगने वाले विभिन्न बेधकों के अण्डों को नष्ट कर देते हैं और उसमें अपना अण्डा दे देते हैं। परिणामस्वरूप बेधकों का अण्ड अवस्था में ही सफाया हो जाता है और ट्राइकोग्रामा कीटों की संख्या निरन्तर बढ़ती जाती है जिससे बेधकों का आपतन न्यून से अति न्यून हो जाता है। इसके अतिरिक्त अन्य फायदे इस प्रकार हैं जैसे–

1. ट्राइकोग्रामा (ट्राइकोकार्ड) के प्रयोग से वातावरण में किसी प्रकार का प्रदूषण नहीं होता है जबकि कीटनाशकों के प्रयोग से वातावरण दूशित हो जाता है।
2. ट्राइकोकार्ड कीटनाशकों की अपेक्षा सस्ता है तथा इसका प्रत्यारोपण आसान है।
3. ट्राइकोकार्ड का प्रयोग कई अन्य फसलों में बेधकों के विरूद्ध कर सकते हैं जैसे धान तना बेधक, कपास की सूंड़ी, अरहर की सूंडी विभिन्न सब्जियों, नीबू तथा सेब की सूंड़ी इत्यादि ।
4. फसलें वर्ष पर्यन्त खेत में ही रहने एवं खड़ी फसल के बेधकों के बिरूद्ध कीटनाशकों का प्रयोग कठिन होता है।
5. बार–बार कीटनाशकों का प्रयोग करने से नाशिकीटों में प्रतिरोधी क्षमता उत्पन्न हो जाती है।

पशुओं को प्रमुख संक्रामक रोगों से बचाव हेतु समय से टीकाकरण आवश्यक

डॉ0 विद्या सागर[1], डॉ0 प्रदीप कुमार[2], डा0 रेखा[3], डा0 राम जीत[4] एवं डॉ0 रामगोपाल[5]

सह प्राध्यापक / वि.व.वि.(पशु विज्ञान)[1], सहा. प्राध्यापक / वि.व.वि.(फसल सुरक्षा)[2], कृषि प्रसार[3]

वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष कृषि विज्ञान केन्द्र, पांती, अम्बेडकर नगर, पो0 मंशापुर–224168, (उ0प्र0),

(आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय कुमारगंज, अयोध्या, उ0 प्र0)[4]

वि0व0वि0 (एग्रोनामी), कृषि विज्ञान केन्द्र, अम्बेडकर नगर (उ0प्र0)[5]

किसी भी पशु से भरपूर उत्पादन प्राप्त करने के लिए उसका स्वस्थ होना अति आवश्यक है। संक्रामक रोगों के फैलने से पशु या तो मर जाता है, या अस्वस्थ हो जाता है, परन्तु इससे पशु पालक एवं देश की अर्थव्यवस्था के साथ–साथ जनस्वास्थ्य पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है। वैज्ञानिक पशु प्रजनन एवं नस्ल सुधार, समुचित भरण–पोषण तथा उत्तम पशु प्रबंध के अतिरिक्त पशुओं में होने वाली संक्रामक बीमारियों का नियंत्रण जितना प्रभावी ढंग से किया जाएगा, उतनी ही पशु उत्पादकता बढ़ेगी।

अतः ऐसे रोगों का उचित समय पर उपचार एवं बचाव होना अति आवश्यक है। यदि रोग फैलने के ढंग और कारणों पर विचार किया जाए तो यह स्पष्ट हो जाता है कि रोग से बचाव उपचार से उत्तम होता है। पशु पालकों के लिए पशुओं के मुख्य रोगों को विवरण तथा उससे बचाव संबंधी जानकारी निम्न है।

1. **गलघोटू रोगः**– यह रोग पास्टुरेला बोवीसेप्टिका या बुवैलीसेप्टिका जीवाणु से फैलता है। यह रोग पशु द्वारा खाये गये दूषित चारे एवं कभी–कभी खून चूसनें वाली मक्खियों से भी फैलता है। यह रोग प्रायः वर्षा ऋतु या उसके उपरान्त होता है। इस रोग में तेज बुखार 105 से 107^{0}फा. तक बढ़ता है, पशु सुस्त रहता है पशु के गले के नीचे झालर, कंठ तथा निचले जबड़े के बीच कष्टदायक कड़ी गर्म सूजन हो जाती है जो दबाने से नहीं दबती है। पशु के सांस लेने के समय घुर्र–घुर्र की आवाज होती है। इस रोग से बचाव हेतु वर्षा से पहले अप्रैल–जून माह में रोग का टीका लगवाना आवश्यक होता हैं।

2. **लगड़िया (लगड़ी बुखार):**– यह रोग निचले नम स्थानों एवं चारागाह में चरने वाले पशुओं को अधिक होता है। यह रोग क्लास्ट्रीडियम शोवियाई नामक जीवाणु के द्वारा फैलता है। रोगग्रस्त चरागाहों से ये जीवाणु चोट लगे घाव के रास्ते तथा दूषित चारे के खाने से शरीर के रक्त में प्रवेश कर जाते हैं। इस रोग में पशु को तेज बुखार एवं एक या दो पैरो में लगड़ापन तथा पैरो के ऊपरी भाग की मांस पेशियों में सूजन आ जाती है। सूजन को दबाने पर चरचराहट की आवाज आती है तथा हवा भरी हुई प्रतीत होती है। रोग हो जानें पर पशु को बचा पाना बहुत ही मुश्किल होता हैं। इस रोग का टीका भी बचाव हेतु, वर्षा ऋतु से पूर्व लगवाया जाना चाहिए।

3. **जहरी बुखार (एन्थ्रेक्स):**– इसे जहरी बुखार की बीमारी के नाम से भी पुकारते हैं। गाय, भैंस, बकरी आदि पशु इस रोग से ज्यादा प्रभावित होते हैं, परन्तु कभी–कभी भैंस, घोड़े, सुअर तथा कुत्ते आदि भी प्रभावित हो जाते हैं। यह रोग बैसिलस एन्थ्रैसिस नामक जीवाणु द्वारा फैलता है। इस जीवाणु से दूषित भोजन, पानी आदि से यह बीमारी फैलती हैं। श्वांस प्रणाली एवं घाव आदि से यह रोग फैलता हैं। इस रोग में बुखार 105–107^{0}फा. तक हो जाता है। पशु का शरीर उत्तेजित एवं कम्पन होती है तथा बाद में सुस्त पड़ जाता है एवं दूध देने वाले पशुओं का दूध कम हो जाता है। बाद में खूनी दस्त एवं मुंह तथा नाक से रक्त युक्त स्राव आने लगता है तथा आम तौर पर पशु की 24 से 48 घन्टों में मृत्यु हो जाती है। मृत पशु को मुंह, नाक एवं मलद्वार आदि से काले रंग का न जमने वाला खून बहता है। इस रोग की

रोकथाम के लिए प्लीहा ज्वर स्पोर वैक्सीन का प्रयोग किया जाता है। यह टीका जनवरी से मार्च के बीच किसी समय लगाया जाता है।

4. **खुरपका—मुँहपका रोगः**— यह विषाणु द्वारा उत्पन्न होने वाला संक्रामक रोग है। यह रोग किसी भी समय हो सकता है तथा फिल्टरेवल विषाणु द्वारा उत्पन्न होता है। वर्षा ऋतु या उसके बाद इसका प्रकोप सबसे अधिक होता है। यह रोग स्पर्श मात्र या दूषित वायु के सेवन से ही फैल जाता है। इस रोग मे पशु को जाड़ा देकर बुखार आता है तथा तापक्रम 104—108°फा. या इससे भी अधिक हो जाता है इस रोग मे मुँह जीभ एवं खुर के बीच, थन पर छाले पड़ जाते है, जिनके फूटने पर घाव बन जाते है जिससे पशु चारा नहीं खा पाता है। मुँह से लार गिरती है, पशु लड़खड़ा कर चलता है। इस रोग से पशु की मृत्यु बहुत कम होती है लेकिन उसका स्वास्थ्य एवं उत्पादन बहुत प्रभावित होता है। इस रोग का टीका बचाव हेतु वर्ष में एक बार अवश्य लगवाना चाहिए।

5. **फेफड़ा कृमि (लिवर फ्लूक्स)**:— इस रोग में पशुओं के फेफड़ो में कृमि होते है, जिससे पशु को लगातार खॉसी आती है। इस रोग से बचाव हेतु रोग का टीका वर्ष में एक बार अवश्य लगवायें।

6. **संक्रामक गर्भपातः**— यह बीमारी ब्रुसेला एबारटस नामक जीवाणु द्वारा गाय, भैंस, भेड़, बकरी तथा सुअर में होती है। जीवाणु से दूषित पदार्थों के खाने पीने, आँख की श्लेष्मा द्वारा तथा जीवाणु से दूषित साड़ों के वीर्य द्वारा यह रोग फैलता है। इस रोग से प्रभावित पशु के गर्भ का अन्तिम तिमाही में गर्भपात हो जाता है, झेरी (प्लेसेन्टा) में पीली धारियाँ तथा झेरी का कई दिनों तक न गिरना, इस रोग के प्रमुख लक्षण हैं। इस रोग से बचाव के लिए रोग के टीके का प्रयोग प्रायः छः माह से मादा जानवरों में ही किया जाता है।

7. **थिलेरियोसिस रोगः**— यह एग प्रोजोटोवा रोग है जो कि संकर जाति के पशुओं में या विदेशी नश्ल के पशुओं में ज्यादे होता है। यह रोग किलनियों द्वारा फैलता है। रोगी पशु को लगातार बुखार, शरीर की ऊपर गिल्टियों में सूजन, नथूनों और आंखों से पानी निकलता है। इस रोग से बचाव हेतु रोग का टीका वर्ष में एक बार लगवाना चाहिए।

सारिणी—1 पशुओं को प्रमुख संक्रामक रोगों से बचाव हेतु समय एवं टीकाकरण

क्र.	बीमारी	टीके का नाम	टीका लगाने का समय	पुनः टीकाकरण का समय
1.	खुरपका, मुंहपका	पॉलीवेन्ट टिशुकल्चर वैक्सीन बच्चों मे 20मि0 लि0, बड़े पशुओं में 40 मि0 लि0।	6 माह की उम्र पर और फिर वर्धक टीका 4 माह पश्चात्।	प्रति वर्ष एक बार लगवाना पड़ेगा।
2.	संक्रमक गर्भपात (ब्रूसलोसिस)	कॉटन स्ट्रेन 19.5 मि0ली0 गर्दन पर त्वचा से	6 माह की उम्र पर	3 से 4 ब्यांत (मात्र प्रभावित पशु झुंड में ही प्रयोग करें)
3.	लंगड़ी बुखार (ब्लैक क्वार्टर)	फारमाल फिल्ड वैक्सीन 5 मि0ली0 गर्दन पर त्वचा में।	प्रत्येक वर्ष वर्षा ऋतु शुरू होने से पहले (मई— जून)	प्रति वर्ष एक बार लगवाना पड़ेगा।
4.	गल घोटू (एम0एच0)	आयल एड्यजूवेन्ट 2 से 3 मिली0 मांसपेशी में गर्दन पर	6 माह की उम्र पर	प्रति वर्ष एक बार लगवाना पड़ेगा।
5.	जहरी बुखार (एन्थ्रैक्स)	स्पोर वैक्सीन 1 मि0ली0 गर्दन पर त्वचा के नीचे।	6 माह की उम्र पर	प्रति वर्ष एक बार लगवाना पड़ेगा।
6.	लिवर फ्लूक्स	लिवर फ्लूकस वैक्सीन मुख द्वार के द्वारा	चार माह की उम्र पर बछड़े वछियों को	रोग से प्रभावित क्षेत्रों में प्रति वर्ष लगवायें।
7.	थिलेरियासिस	थिलेरियासिस वैक्सीन की 6 मिली0 मात्रा त्वचा के नीचे	अप्रैल—मई माह में चार माह की उम्र पर	रोग से प्रभावित क्षेत्रों में प्रति वर्ष लगवायें।

8. परजीवी रोगः— गर्म व आदि वातावरण में परजीवियों का प्रकोप अधिक होता है। इनके प्रकोप से गाय भैसो की दुग्ध उत्पादन एवं प्रजनन क्षमता बुरी तरह प्रभावित होती है। किलनी, जूँ एवं खाज, मक्खी के प्रकोप से अनेक रोग जैसे थिलेरियासिस, किलनी ज्वर, सर्रा रोग व अन्य विषाणु जनित संक्रामक रोग पशुओं में फैलते हैं।

सर्रा रोगः यह बहुत ही घातक रोग है। यह रोग मक्खियों के काटनें से फैलता है क्योंकि मक्खियों में इस रोग के ट्रिपैनोंसामा रक्त परजीवी प्रोटोजाआ पायें जाते है। इस रोग के सक्रमण के कारण पशु खाना छोड़ देते है, तेज बुखार आता है और लार गिरती है।पशु इधर —उधर बेचैनी से घूमता है या गालाई में चक्कर लगाता है।पशु बार—बार कांपते हुए गिरता है एवं उठता है। आखें लाल हो जाती है, आखों से पानी निकलता है। तुरन्त इलाज न होनें पर पशु मर जाता है।

बचाव व उपचार : पशु का अवाश साफ—सुथरा रखना चाहिये, तथा विभिन्न प्रकार के मक्खियों से बचाव हेतु पशुशाला को साफ सुधरा रखनें के साथ हवा एवं प्रकाश की व्यवस्था होनी चाहिये तथा मक्खिओं से बचाव हेतु पशुशाला में एवं दीवारों पर कीटनाशक का 2 प्रतिशत के घोल का समय—समय पर छिड़काव करना चाहिये।

उपचार : उर्पउक्त लक्षणों के दिखनें पर तुरन्त पशु चिकित्सक से सर्म्पक कर इलाज करवाना चाहिये।

इन पर परजीवियों से बचाव हेतु कीटनाशक पाउडर का घोल (1 मिग्रा. मात्रा 1 ली0 पानी में) लगाकर तीस मिनट तक बांध दिया जाय तथा बाद में स्वच्छ पानी से नहला दिया जाये। जूँ एवं खाज की रोक थाम के लिये पशु के शरीर पर नीम का तेल की मालिश भी कर सकते है। इसके अतिरिक्त ब्यूट्राक्स या एस्केवियाल का 2 प्रतिशत का घोल लगाकर आधे घंटे के बाद पशु को नहला देना चाहिए। मक्खी मच्छर आदि की रोक थाम के लिए पशु को सींग पूछ, पुट्ठों एवं खुरों पर 10 ग्राम हींग, 60 ग्रा0 तारपीन का तेल तथा 250 ग्राम सरसों के तेल में घोल बनाकर लगा दिया जाय।

अन्तः परजीवी जनित रोगः— अन्तः परजीवी जनित रोगों जैसे यकृत कृमि गोल कृमि एवं फीता कृमि रोग की रोकथाम के लिये पशुओं को बरसाती गड्डो, पोखरो तथा गन्दे नदी, नालों का पानी न पिलाया जाये तथा आन्तरिक परजीवियों की रोकथाम के लिये नियमानुसार लक्षणों के अनुसार पशु चिकित्सक की सलाह से छः माह के अन्तराल पर कृमि नाशक दवा अवश्य देना चाहिए तथा पशुओं को बरसाती गड्ढ़ों, पोखरों या गन्दे नालों का पानी पीने से बचाना चाहिए। आइवर मैक्टीन एवं ड्यरों मैक्टीन दवा 2 मिली0 प्रति 100 किग्रा भार की दर से पशु को 6 माह के अन्तराल पर इन्जेक्सन द्वारा त्वचा के नीचे पशु चिकित्सक की सलाह से मांस में लगवानें से ये औषधियां वाह्य परजीवी एवं अन्तः परजीवी दोनों से पशु का बचाव करती है।

पशु पालक उचित नस्ल का चुनाव कर उचित प्रजनन, पोषण एवं प्रबन्धन समुचित भरण—पोषण तथा उत्तम पशु प्रबंध के अतिरिक्त पशु रोगों के उक्त लक्षणों को ध्यान में रखकर पशुओं में होने वाली संक्रामक बीमारियों का नियंत्रण प्रभावी ढंग से अपनाकर अपने पशुओं से अधिक लाभकारी उत्पादन प्राप्त कर सकतें हैं।

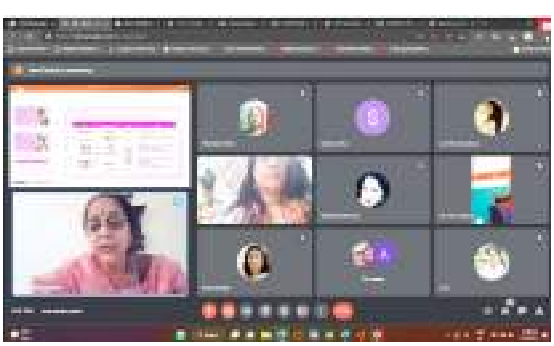
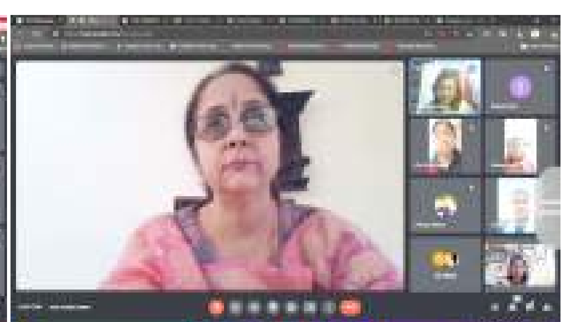

ग्रामीण महिलाओं द्वारा प्याज संरक्षण के उपाय

रेनू आर्या एवं डॉ.हर्षिता*
कृषि विज्ञान केन्द्र, नानपारा, बहराइच, (उ0प्र0)

प्याज हमारे खाने में एक अलग ही स्वाद तथा खुशबू जोड़ देता है महिला अपने किचेन में प्याज के बिना खाना बनाने का सोचते ही नहीं होंगी गुलाबी, सफेद प्याज देखने में जितना मनभावन होता है उतना ही खाने में लजीज भी, हर शाही खाने में इसे उपयोग किया जाता है यह खाने में रंगत, स्वाद, अवं पौष्टिकता को बढाता है। प्याज एक वनस्पति है जिसका कन्द सब्जी के रूप में प्रयोग किया जाता है। देश में महाराष्ट्र में प्याज की खेती सबसे ज्यादा होती है। यहाँ साल मे दो बार प्याज की फसल उगाई जाती है पहली नवम्बर में और दूसरी मई के महीने में। प्याज का भारत से कई देशों में निर्यात होता है, जैसे कि नेपाल, पाकिस्तान, श्रीलंका, बांग्लादेश, इत्यादि। प्याज की फसल कर्नाटक, गुजरात, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल मध्य प्रदेश में अलग–अलग समय पर तैयार होती है। भारत में इसे कुल 287 हजार हेक्टर क्षेत्रफल में उगाये जाने पर 2450 हजार टन उत्पादन प्राप्त होता है। महाराष्ट्र, उड़ीसा, कर्नाटक, उत्तर प्रदेश, तमिलनाडु तथा गुजरात आदि प्रदेशों में अधिकता से उगाया जाता है। यह शल्ककंदीय सब्जी है, जिसके कन्द सब्जी के रूप में उपयोग किए जाते हैं। इसका कन्द तीखा होता है। यह तीखापन एक वाष्पशील तेल एलाइल प्रोपाइल डाय सल्फाइड कारण होता है। प्याज का उपयोग सब्जी, मसाले, सलाद तथा अचार तैयार करने के लिए किया जाता है।

प्याज के गुण तथा पोषक तत्व :

प्याज में कई प्रकार के पोषक तत्व होते हैं। इसका स्वाद तीखा होता है। यह भूख बढ़ाने वाला तथा रक्त वर्धक होता है। इसमें कैलोरी कम होती है लेकिन यह विटामिन , खनिज और एंटीऑक्सीडेंट से भरपूर होता है।

एक कप कटे प्याज हुए में लगभग 64 कैलोरी, 15 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट, जीरो प्रतिशत फैट, जीरो प्रतिशत कोलस्ट्रोल, 3 ग्राम फाइबर, 7 ग्राम शर्करा, 2 ग्राम प्रोटीन, प्रतिदिन की जरुरत का विटामिन बी, विटामिन बी 6 और मैगनीज पाया जाता है। इसमें थोड़ी मात्रा में कैल्शियम, आयरन, फोलेट, मैग्नीशियम, फास्फोरस तथा पोटेशियम भी होता हैं।

प्याज भंडारण गोदाम की आवश्यकताएँ:

प्याज के प्रभावी लम्बे भंडारण के लिए आवश्यक मापदंड़ो पर ध्यान देना आवश्यक है जैसेः प्याज का आकार, किस्म का चयन, खेती प्रथाओं, फसल के समय, क्षेत्र का उपचार, ऊपरी भाग की छटाई करना, सुखाना, ग्रेडिंग, पेकिंग, भंडारण की स्थिति 65 प्रतिशत से 70 प्रतिशत के बीच में अनुकूलतम भंडारण सीमा के साथ 25 से 30 डिग्री सेल्सियस के बीच तापमान की सीमा)

बेहतर भंडारण गोदामों की मुख्य विशेषताएँ:

1. गोदामों का निर्माण ऊँचे स्तर पर करना ताकि नमी और सीलन को रोका जाए जो की मिट्टी के साथ प्याज के सीधे संपर्क में आने के कारण होता हैं।

2. मंगलौर टाइल के प्रकार की छत या अन्य उपयुक्त सामग्री का उपयोग कर अंदर के उच्च तापमान को ऊपर उठाने से रोका जा सके ।
3. बेहतर हवा परिसंचरण और गोदाम के अंदर नम सूक्ष्म जलवायु को रोकने के लिए केंद्र ऊँचाई और तीव्र ढलान में वृद्धि करना ।
4. स्वतंत्र और तेज हवा के संचरण के लिए नीचे और किनारों में वेंटिलेशन उपलब्ध करना ताकि प्याज की परतों के बीच उष्मता और आर्द्रता से बचा जा सके ।
5. रंग और गुणवत्ता में गिरावट, सूरज की गर्मी से झुलसन से बचने के लिए प्याज पर गिरने वाली सीधी धूप या बारिश के पानी से बचना ।
6. दबाव चोट से बचने के लिए ऊँचाई में लगे ढेर का उचित रख–रखाव करना।
7. समय–समय पर गोदाम और परिसर की कीटाणुशोधन हेतु जाँच करना ।
8. गोदामों के निर्माण की लागत में किफायत के लिए स्थानीय स्तर पर उपलब्ध सामग्री का उपयोग करना ।

प्याज के फायदे व घरेलु नुस्खेः

प्याज में मौजूद रेशे पेट के लिए बेहद फायदेमंद हैं। प्याज खाने से कब्ज दूर हो जाती है। यदि आपको कब्ज की शिकायत हे तो कच्चा प्याज रोज खाना शुरू करें।

हरा प्याज कोलेस्ट्रॉल के स्तर को कम बनाए रखता है। इसमें एंटीबैक्टीरियल गुण होते हैं। एंटी बैक्टीरियल गुणों के कारण ही इसे खाने से पाचन में सुधार होता है।

प्याज में मौजूद फायटोकेमीकल तथा विटामिन सी शरीर की प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाते हैं।

हरे प्याज विटामिन ए से भरपूर होते हैं, जो कि आंखों की परेशानियों को दूर करने तथा शरीर में विटामिन ए की कमी से होने वाली बीमारियों से बचाता है।

यदि आप चमकदार त्वचा चाहते हैं तो प्याज का सेवन शुरू कर दें। प्याज में भरपूर मात्रा में एंटीऑक्सीडेंट्स, विटामिन ए, विटामिन सी, विटामिन ई होते हैं जो कि त्वचा के लिए लाभदायक होते हैं।

प्याज का रस बालों की जड़ में लगाने से बालों का टूटना एवं झड़ना कम होता है। हफ्ते में कम से कम दो बार प्याज के रस का प्रयोग बालों में करना चाहिए यह बालों को स्वस्थ और मजबूत बनाता है।

आपको जानकर हैरानी होगी कि प्याज का रस आपको मधुमक्खी के डंक से बचाता है। यदि आपको कभी अचानक मधुमक्खी काट ले तो घबराइए नहीं, प्याज के रस को तुरंत उस जगह पर लगाएं। आपको राहत मिलेगी।

गर्मी के मौसम में गर्म हवा के कारण (लू लगने से) बीमार पड़ जाते हैं। इस समय प्याज का रस अमृत के समान है। यदि आप कहीं धूप में जा रहे हैं तो अपने साथ एक प्याज अवश्य रखिए, यह आपको लू से बचाएगा।

प्याज का अचार बनाने की विधिः

आवश्यक सामग्री :

प्याज – 01 किलो (छोटे आकार के)

राई दाना – 1/2 कप

सरसों का तेल – 01 कप
अमचूर पाउडर – 04 छोटे चम्मच
लाल मिर्च पाउडर – 03 छोटे चम्मच
हल्दी पाउडर – 02 छोटे चम्मच
काला नमक – 01 छोटा चम्मच
नींबू – 03 नग
नमक – स्वादानुसार।

प्याज का अचार बनाने की विधि :

प्याज का अचार बनाने के लिए सबसे पहले प्याज को छील लें और चार टुकड़ो में काट लें। चाहें तो सभी टुकड़ों को अलग कर लें या फिर नीचे से टुकड़ों को आपस में जुड़े रहने दें। साथ ही राई दाना को पीस लें और एक बर्तन में नींबू का रस निचोड़ लें।

अब नींबू के रस में नमक मिलाकर उसमें कटी हुई प्याज डालें और प्याज को अच्छी तरह से उलट–पुलट लें। इसके बाद प्याज को 5–6 घंटों के लिए ढ़क कर रख दें।

अब कांच का एक सूखा हुआ जार लें और उसे सूखे कपड़े से साफ कर लें। इसके बाद जार में नींबू के रस में भीगे हुए प्याज, सरसों का पाउडर, लाल मिर्च पाउडर, हल्दी पाउडर, अमचूर पाउडर और काला नमक डालें व अच्छी तरह से मिला लें।

अब जार में सरसों का तेल, नमक डाल दें और अच्छी तरह से मिक्स कर लें।

इसके बाद जार का ढ़क्कन बंद कर दें और उसे 14–15 दिनों तक धूप में रखें।

प्याज का पाउडर बनाने की विधि:

सबसे पहले, प्याज का छिलका निकालिए और पतले टुकड़े
करें।

एक बड़ी प्लेट पर कटा हुआ प्याज फैलाएं। आप वैकल्पिक
रूप से बेकिंग ट्रे या कपड़े का उपयोग कर सकते हैं।

जब तक यह कुरकुरा न हो जाए, तब तक सूर्य की धूप में सुखायें।

यदि आप ठंडी प्रदेश में रहते हो तो, आप वैकल्पिक रूप से 60–70 डिग्री सेल्सियस पर ओवन में रख सकते हैं।

एक ब्लेंडर में सूखे प्याज को स्थानांतरित करें, और बारीक पाउडर में ब्लेंड करें।

सफेद मूसली– एक महत्वपूर्ण औषधीय पौधा

अनुभा श्रीवास्तव
भा. वा. अ. शि. प.– पारिस्थितिक.
पुनर्स्थापन केन्द्र, प्रयागराज, (उ0प्र0)

1. परिचय : (Introduction)

प्राचीन काल से ही भारत में जड़ी–बूटियों का अपार भण्डार रहा है। वनों में पाये जाने वाले यह औषधीय पौधे विभिन्न रोगों के निदान के साथ–साथ अर्थव्यवस्था को मजबूत करने में विशेष भूमिका निभाते हैं। समय के साथ–साथ वन क्षेत्र के अतिरिक्त दोहन से औषधीय पौधों के भण्डारण में कमी आती जा रही है। आवश्यकता है कि औषधीय पौधों की महत्वपूर्ण सम्पदा को नष्ट होने से बचाने के साथ–साथ व्यापक स्तर पर इनकी व्यवसायिक कृषि पर ध्यान दिया जाये। विगत वर्षों में औषधीय पौधों की खेती के कई नवीन पहलू उभर का सामने आये हैं। कई महत्वपूर्ण पौधों की बढ़ती मांग तथा वन क्षेत्र में इनकी अनुपलब्धता देखते हुए व्यावसायिक खेती ही एकमात्र विकल्प है। आज भारतीय किसान परम्परागत कृषि के साथ–साथ वानिकी को नये आयामों के साथ अपना रहा है। इन महत्वपूर्ण पौधों की श्रृँखला में सफेद मूसली भी एक ऐसा ही पौधा है जो औषधीय गुणों हेतु एक विशेष स्थान रखता है इसे 'दूसरा शिलाजीत' की संज्ञा दी गयी है। आयुर्वेद में टॉनिक के रुप में शक्तिवर्द्धक, लगभग सभी औषधियों में इसका प्रयोग होता है। हमारे देश के लगभग सभी क्षेत्रों के किसान वृहद रुप में इसकी खेती को अपना कर स्वयं के आर्थिक स्तर में सुधार के साथ–साथ देश की अर्थव्यवस्था को एक नया आयाम प्रदान कर सकते हैं। भूमि तथा जल स्रोतों के अधिकतम उपयोग हेतु औद्योगिक रुप से महत्वपूर्ण औषधीय पौधों की वैज्ञानिक ढंग से अपनायी गयी खेती कृषि वानिकी के विकास में सहायक सिद्ध होगी।

सफेद मूसली

हमारे देश में लगभग 4,500 प्रजातियां औषधीय पौधों की श्रेणी में है। प्राचीन भारतीय चिकित्सा पद्धति में जड़ी–बूटियों से निर्मित औषधियों का उल्लेख मिलता है। यह जड़ी–बूटियाँ विभिन्न रोगों के निदान में अति उपयोगी है। आज सम्पूर्ण विश्व में औषधीय पौधों से निर्मित औषधियों का प्रचलन बढ़ रहा है। वनों के अधिकाधिक दोहन के परिणामस्वरुप महत्वपूर्ण औषधीय वनस्पतियां विलुप्तता के कगार पर पहुँच रहीं हैं। औषधीय महत्व की प्रजातियों की सफल खेती से ही इनकी आपूर्ति सम्भव है, जिससे किसानों को अतिरिक्त आय का साधन भी उपलब्ध हो सकेगा। औषधीय प्रजातियों की श्रृँखला में सफेद मूसली एक बहुपयोगी पौधा है। सफेद मूसली एक औषधीय पौधा है, जिसका वानस्पतिक नाम क्लोरोफाइटम बोरीविलीऐनम

(*Chlorophytum borivillianum*) है। यह लीलिएसी कुल का सदस्य है। मानव जाति हेतु यह प्रकृति प्रदत्त उपहार है। चिकित्सा जगह में विभिन्न पद्धतियों में उपयोगी इस जड़ी–बूटी की विश्व में वार्षिक उपलब्धता लगभग 5,000 टन है, जबकि इसकी मांग लगभग 35,000 टन प्रति वर्ष है। इण्डियन मेटीरिया मेडिका में यह पौधा क्लोरोफाइटम अरुंडीनेशियम के नाम से जाना जाता है। सफेद मूसली एक कंदयुक्त पौधा होता है जिसकी अधिकतम ऊँचाई डेढ़ फीट तक हाती है तथा इसकी कंदिल जड़ें (जिन्हें कन्द या फिंगर्स कहा जा सकता है) जमीन में अधिकतम 10 इंच तक नीचे जाती हैं। सफेद मूसली की व्यवसायिक खेती के प्रसार हेतु कृषि–तकनीक की जानकारियाँ आवश्यक है। बाजार में सफेद मूसली के कंदों की बढ़ती हुई मांग किसानों को इसकी खेती हेतु प्रेरित कर रही है। सफेद मूसली कम समय में ही उगाया जाने वाला पौधा है जिसके कंद महत्वपूर्ण औषधीय गुण होने के कारण आयुर्वेदिक दवाईयों में प्रयोग होते हैं। लघु तथा सीमान्त किसानों हेतु सफेद मूसली की खेती आय का एक अतिरिक्त साधन होगा। सफेद मूसली तथा अन्य औषधीय पौधों की मांग तथा व्यापार से यह स्पष्ट है कि इन पौधों की व्यवसायिक खेती किसान हेतु विशेष महत्व की है। आज आवश्यकता इस बात की है कि सफेद मूसली जैसी बहुमूल्य वनौषधि की खेती करके इसका संरक्षण किया जाये। भारतीय किसान औषधीय महत्व के पौधे की कृषि–तकनीक की समुचित जानकारी न होने से इन पौधों की खेती में कठिनाई का सामना कर रहे हैं। कुछ निजी संस्थायें उच्च मूल्य वाले पैकेज उपलब्ध करा रहे हैं, जिनका उपयोग आर्थिक कारणों से किसान नही कर पा रहे हैं। उचित रोपण सामग्री का स्रोत, मुख्य उपयोगी उत्पाद के रख–रखाव की जानकारी तथा विपणन मार्गदर्शन किसान को सफेद मूसली तथा अन्य महत्वपूर्ण पौधों की खेती हेतु प्रेरित करता है।

1.1 **प्राप्ति स्थान** : (Habitat)

विश्व में यह पौधा अफ्रीका तथा भारत में प्राकृतिक रुप में पाया जाता है। भारत में यह जड़ी बिहार, झारखण्ड, मणिपुर, उड़ीसा, आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु, महाराष्ट्र, केरल, राजस्थान आदि राज्यों के शुष्क तथा उष्ण मिश्रित वनों में 1200 मीटर की ऊँचाई वाले क्षेत्रों में प्रायः मिलती है। मध्य प्रदेश के वनों में वर्षा ऋतु में यह पौधा स्वतः उग आता है। प्राकृतिक अंकुरण क्षतिग्रस्त होने तथा अपरिपक्व दोहन के कारण यह पौधा लुप्त होने की कगार पर है। यह विभिन्न तापमान तथा वर्षा की स्थितियों में सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। बलुई दोमट मिट्टी जिसका पी.एच. मान सामान्य हो तथा अच्छी गुणवत्ता हो, सफेद मूसली हेतु उपयुक्त होती है। कंदों की अच्छी वृद्धि के लिय रेतीली दोमट मिट्टी जिसमें जीवाश्म पर्याप्त मात्रा में उपस्थित हो, खेती के लिये सर्वोत्तम होती है। इसकी फसल के लिये उष्ण तथा शुष्क जलवायु अनुकूल होती है।

1.2 **क्षेत्रीय नाम** : (Local Names)

सफेद मूसली विभिन्न भाषाओं में अलग–अलग नामों से जानी जाती है :–

गुजराती	–	धोली मूसली	संस्कृत	–	स्वेत मूसली
मराठी	–	सुफेता मूसली	हिन्दी	–	विषकन्ड्री
मलयालम	–	रोदेवेली	अंग्रेजी	–	सफेद मूसली
तमिल	–	तानिरवितांग	गारो	–	चमक्सा
अरबी	–	शकेक्वेले	गोंड	–	गांजागाता
उड़िया	–	भारत बतूली	मुंदारी	–	पिरीजादू
संतल	–	जेरेनारक			

1.3 **प्रजातियाँ** : (Species)

मूसली की विभिन्न प्रजातियाँ पायी जाती है :–

1. क्लारोफाइटम बोरीविलीएनम *(Chlorophytum borivillianum)*
2. क्लारोफाइटम ट्यूबरोसम (chlorophytum tuberosum)
3. क्लारोफाइटम एटेनुएटनम (chlorophytum attenuatum)
4. क्लारोफाइटम मालाबेरिकम (chlorophytum malabericum)
5. क्लारोफाइटम ब्रेवीस्केपम (chlorophytum breviscapum)
6. क्लारोफाइटम अरुंडीनेशियम (chlorophytum arundinaceum)
7. क्लारोफाइटम लक्सम (Chlorophytum laxum)
8. क्लारोफाइटम कोमोसम (chlorophytum chomosum)
9. क्लारोफाइटम इंडीकम (chlorophytum indicum)

इन प्रजातियों में क्लोरोफाइटस बोरीविलिएनम तथा ट्यूबरोसम ही प्रायः उपलब्ध होते हैं। इन दोनों में मुख्य अन्तर यह है कि ट्यूबरोसम में क्राउन के साथ एक धागा जैसा लगा होता है तथा उसके उपरान्त इसकी मोटाई बढ़ती है। बोरीविलिएनम में कंद के फिंगर की मोटाई ऊपर ज्यादा होती है या पूरे फिंगर की मोटाई एक जैसी रहती है अथवा यह नीचे की ओर घटती जाती है। ट्यूबरोसम का छिलका उतारना कठिन होता है, अतः यह खेती हेतु कम उपयुक्त है। क्लोरोफाइटम बोरीविलिएनम प्रजाति की खेती व्यापक स्तर पर प्रचलित है।

1.4 **वानस्पतिक विवरण** : (Botanical Description)

सफेद मूसली एक कंदयुक्त, छोटा तथा शाकीय पौधा है, जिसकी ऊँचाई लगभग 1.5 फीट तक होती है। जड़ें कंदीय, मांसल, पुष्प शाखाग्र, श्वेताभ वर्ण के मई–जून माह में खिलते हैं। पत्ते मूलोद्भव, प्रासक्त, मसृण तथा 80 x 2 सेमी लम्बे होते हैं। इसकी पत्तियां तथा फूल खाने योग्य होते हैं। पत्तियां लम्बी, सीधी तथा विन्यासयुक्त हैं। पुष्पक्रम रेसीम प्रकार का, सीधा तथा घने पुष्पों वाला होता है। सफेद पुष्प सितारों के आकार के, नुकीले पंखुड़ियों वाले होते हैं। इस पौधे की सूखी जड़ें ही औषधियुक्त होती है, जिसका पाउडर प्रयोग में लाया जाता है। टॉनिक के रुप में यह सर्वाधिक प्रचलित है। सूखी जड़ें कठोर तथा सफेद रंग की होती हैं। वानस्पतिक वर्गीकरण इस प्रकार है :–

वर्ग	–	मोनोकॉटिलिडॉन्स
श्रेणी	–	कोरोनरी
कुल	–	लीलिएसी
जीनस	–	क्लोरोफाइटम
प्रजाति	–	बोरीविलिएनम

इसकी जड़ों का रासायनिक संघटन निम्न प्रकार है :

कार्बोहाइड्रेट्स	:	42%
प्रोटीन्स	:	8.9%
फाइबर	:	34%
अल्कलायड*	:	25 प्रकार

नमी : 5%

सैपोनिन्स* : 2–17%

* सैपोनिन्स तथा अल्कलायड्स ही सफेद मूसली के औषधीय गुणों के उपस्थित रहने हेतु सक्रिय तत्व हैं।

2. **उपयोगितायें** : (Uses)

विभिन्न औषधियों के निर्माण हेतु सफेद मूसली का उपयोग हमारे देश में प्राचीन काल से हो रहा है। यह एक ऐसी औषधि है, जिसमें किसी प्रकार की शारीरिक शिथिलता दूर करने का गुण है। इसके पौष्टिक तथा बलवर्द्धक गुणों के कारण ही इसे दूसरे शिलाजीत के नाम भी जानते हैं। इसकी तुलना चायनीज पौधे 'जिनसेंग' से भी की जाती है, जो औषधीय तथा बलवर्द्धक गुणों के कारण आयुर्वेद में विशेष स्थान रखता है। विदेशों में इससे कार्नफ्लेक्स बनाये जाने पर भी काम हो रहा है, जिसे दूध में डाल कर एक पौष्टिक नाश्ते के रुप में लिया जा सकता है। पत्तियाँ तथा फूल खाने में प्रयुक्त होते हैं। पौधा प्याज के स्थान पर भी प्रयुक्त होता है। इसके कन्द ही व्यवसायिक औषधि 'सफेद मूसली' के नाम से जाने जाते हैं। व्यावसायिक औषधि में अरुडीनेशियम, ट्यूबरोसम, एटेनुएटम तथा इंडीकाम प्रजातियों के कंद होते हैं। इसका उपयोग प्रदर, अतिसार, प्रसवोपरान्त होने वाली बीमारियों, गर्भावस्था में टॉनिक के रुप में, मधुमेह के उपचार में तथा अन्य असाध्य रोगों के उपचार में विभिन्न औषधियों के निर्माण में किया जाता है।

जड़ों का भुना हुआ पाउडर मुँह तथा ग्रीवा के विकारों में उपयोगी है। जड़ों तथा हल्दी मिश्रित काढ़ा अस्थिरोगों में लाभकारी है। गुजरात, महाराष्ट्र तथा गोवा क्षेत्रों के आदिवासी इसकी पत्तियाँ खाते हैं। सरसों के तेल में इसके जड़ों के पाउडर का लेप जोड़ों के दर्द में प्रयुक्त होता है। आयुर्वेदिक टॉनिक च्यवनप्राश का यह महत्वपूर्ण संघटक है। इसके अतिरिक्त यह अनेक आयुर्वेदिक, एलौपैथिक तथा यूनानी औषधियों के निर्माण में प्रयुक्त होता है, अतः इसे एक उच्च मूल्य जड़ी बूटी की श्रेणी में रखा गया है। भारत के साथ–साथ अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में भी इसकी प्रचुर मांग है।

सफेद मूसली की जड़ों में लगभग 25 प्रकार के अल्कलॉयड, विटामिन, खजिन, प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, स्टीरॉयड, पालीसैकराइड्स तथा सैपोनिन्स पाये जाते हैं। भारतीय महिलाओं को प्रसव के बाद इसकी जड़ों को लड्डू में मिला कर खिलाते हैं जो विशेष रुप से बेहतर स्वास्थ्य प्रदान करता है। विदेशों में इसकी जड़ों को आलू के चिप्स की तरह चिप्स के रुप में नाश्ते में खाते हैं। यह औषधि वियाग्रा का एक प्रभावी विकल्प है जो सामान्य सेक्स टॉनिक के रुप में प्रयुक्त होता है। शारीरिक रोग प्रतिरोधक क्षमता विकसित करने में जड़ों का पाउडर विशेष उपयोगी है। इसके साथ–साथ गठिया तथा वात विकारों में यह रोग को जड़ से समाप्त कर देता है।लगभग 20 ग्राम जड़ीय ट्यूबर दूध के साथ उबाल कर खाने से (एक महीने तक दिन में दो बार) शारीरिक कमजोरी दूर हो जाती है।

3. **कृषि तकनीक** : (Agro Technique)

सफेद मूसली की बढ़ती हुई मांग के कारण देश के विभिन्न भागों में मूसली की विधिवत खेती प्रारम्भ हुई है। यदि वैज्ञानिक तरीके से मूसली की खेती की जाये तो इसकी खेती से औसतन प्रति एकड़ 2–3 लाख रुपये तक का शुद्ध लाभ कमाया जा सकता है। इसकी खेती के लिये भारतवर्ष में मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, बिहार, उड़ीसा, हरियाणा, दिल्ली आदि प्रदेशों की जलवायु अधिक अनुकूल है। प्राकृतिक रुप से कठोर होने के कारण यह पौधा सामान्यतः सभी प्रकार की जलवायु में उग सकता है। इसकी

विधिवत खेती आसान होने के साथ–साथ आर्थिक रुप से अति लाभप्रद है। सामान्य किसान इस विधि को अपनाकर आय का अतिरिक्त विकल्प तैयार कर सकते हैं। खेती सम्बन्धी सफल प्रयोगों के आधार पर ही कृषि तकनीक विकसित की गयी है, जिसमें खेत की तैयारी से लेकर अन्तिम उत्पाद के विपणन सम्बन्धी तथ्यों पर प्रकाश डाला गया है। विभिन्न संदर्भों तथा अध्ययन पर आधारित कृषि तकनीक इस प्रकार है :

3.1 **नर्सरी तैयार करना :** (Raising of Nursery)

यह बीजों, जड़ों वाली कलिकाओं या प्राकृतिक रुप से उगे छोटे पौधों से तैयार कर सकते हैं :

बीजों द्वारा – बीज काले रंग के तथा नुकीले किनारे वाले होते हैं। यह 12–16 दिनों में अंकुरित होते हैं। नर्सरी में पहले से तैयार की गयी बेड में खाद (गोबर) तथा सड़ी पत्तियाँ जून के प्रथम–द्वितीय सप्ताह में मिला देते हैं तथा बीजों की बुवाई कर के सिंचाई करते हैं। बीजों का अंकुरण 11–25% तक पाया गया है। इससे मिट्टी में नमी का उचित स्तर बना रहता है। तैयार पौध अगले खरीफ मौसम में खेत में लगायी जा सकती है। पौधे तथा जड़ों का विकास बीज प्रवर्धन विधि से अधिक घना नही होता है, अतः 30X15 सेमी की दूरी उपयुक्त होती है।

कायिक प्रवर्धन : (Vegetable Propagation)

इस विधि में पौधों के कंदों का उपयोग कायिक प्रवर्धन हेतु किया जाता है। यह विधि बीज प्रवर्धन विधि से अधिक सफल एवं उपयुक्त है। कंदिल जड़ों का अंकुरण मई माह के प्रारम्भ में शुरु हो जाता है, कभी–2 अप्रैल के अन्तिम सप्ताह में भी हो सकता है।

3.2 **रोपण सामग्री :** (Planting material)

पूर्व की फसल से निकाले गये कंद/टयूबर्स–फिंगर्स अथवा जंगलों से एकत्र किये गये कंद भी प्रयोग कर सकते हैं। फिंगर्स के साथ पौधे के क्राउन का कुछ भाग अवश्य साथ में लगा रहना चाहिये अन्यथा अंकुरण में परेशानी आती है। फसल निस्तारण के बाद लम्बे तथा पूर्ण विकसित फिंगर्स विपणन हेतु तथा छोटे फिंगर्स बीज के रुप में प्रयुक्त कर सकते हैं। अच्छी फसल उगाने हेतु 5–10 ग्राम वजन का ट्यूबर (कंद) उचित रहता है। बाजार में रोपण हेतु उपयोग किये जाने वाले कंद की कीमत लगभग रु0 300/– स 600/– प्रति किग्रा तक आती है। एक एकड़ खेत में 4.5 कुन्तल बीज की आवश्यकता होती है, अतः लगभग 1.5 लाख रुपये बाजार में बीज/रोपण सामग्री का मूल्य आता है। यह किसान हेतु एक बड़ी रकम है। ''वैकल्पिक उपाय में पहले वर्ष किसान जंगलों या स्थानीय बाजार से वर्षा ऋतु के बाद सस्ते मूल्य (5–50 रु0 प्रति किग्रा) पर सामग्री खरीद कर बिना अलग किये हुए क्राउन के साथ खेतों में लगा देना चाहिये। इस प्रकार की मूसली को खेतों में विकसित होने में समय लगता है। प्रायः प्रथम वर्ष में फसल नही ली जाती है, परन्तु अगले वर्ष यह विकसित हो कर उत्पाद देने के लिये तैयार होते हैं। तीसरे वर्ष में तो यह बीज तथा उत्पादन दोनों के लिये तैयार हो जाते हैं। अच्छी फसल की प्राप्ति तथा समय की बचत हेतु क्राउनयुक्त फिंगर्स/कंद ही बुवाई हेतु उपयुक्त है।''

मूसली के बीज काफी छोटे होने के कारण इनका संग्रहण बहुत कठिन होता है। बीजों से मूसली तैयार करने की दिशा में अधिक सफल परिणाम नही मिले हैं। इसका ऋणात्मक पहलू यह भी है कि बीज से पौधा तैयार होने में काफी समय लगता है तथा पौधा स्वस्थ भी नही पनपता है।

3.3 **खेती हेतु भूमि की तैयारी** : (Field Preparation)

उपयोग किये जाने वाले खेत की मिट्टी नर्म होनी चाहिये, क्योंकि यह एक कन्दीय पौधा है जिसमें कन्द

को जमीन के अन्दर बढ़ने के लिये उचित स्थान चाहिये। रेतीली दोमट मिट्टी इस प्रकार की खेती हेतु सर्वोत्तम मानी गयी है, जिसमें जल निकासी तथा शोषण दोनों की क्षमता होती है। मिट्टी ज्यादा नर्म भी नही होनी चाहिये अन्यथा कन्द की फिंगर्स पतली ही रह जाती है जो अन्तिम उत्पाद को प्रभावित करता है। अप्रैल–मई माह में भूमि की तैयारी करना चाहिये। मार्च–अप्रैल माह में मिट्टी की गहरी खुदाई मिट्टी को सूखा भुरभुरा करके नर्म बना देती है। एक एकड़ खेत में लगभग 5–6 ट्राली गोबर की खाद अप्रैल या मई माह में मिलाना चाहिये। उभरी नर्सरी बेड मई माह में पौधारोपण की योजना के अनुसार तैयार करना ठीक रहता है। बेड में कतार से कतार की दूरी 24 इंच तथा बेड की ऊँचाई 10–12 इंच रखना चाहिये। रोपण के पूर्व सभी बेड की ठीक प्रकार से सिंचाई करना चाहिये। उभरी बेड, मूसली के ट्यूबर्स की वृद्धि में सहायक होती है, जिसमें पानी की निकासी की उचित व्यवस्था होती है।

3.4 **खाद की आवश्यकता :** (Manuring)

मूसली की खेती में गोबर खाद, रासायनिक खाद, हरी खाद आदि की आवश्यकता खेत के अनुसार होती है। गोबर की खाद मिट्टी में मिलाना फसल हेतु उपयोगी है। अच्छी फसल के लिये 5–10 ट्रॉली सड़ी हुई गोबर की खाद प्रति एकड़ खेत हेतु उपयुक्त होती है। खेत की तैयारी के समय ही प्रायः गोबर की खाद मिट्टी में मिलाना चाहिये। हरी खाद मिलाने से भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ती है। जनवरी–फरवरी माह में मूसली के कन्दों की खुदाई के बाद अगली फसल मई–जून तक के खाली समय में अल्पावधि वाली कोई फसल जैसे सन, अगस्ती, बस् अथवा धतूरा उगाया जा सकता है। नई फसल हेतु खेत की तैयारी के समय इस फसल में हल चला कर इसे खेत में हरी खाद के रुप में मिला देना चाहिये। धतूरा उगाने से खेत में दीमक का असर भी समाप्त हो जाता है। हड्डी युक्त खाद का प्रयोग भूमि में फास्फोरस तथा अन्य आवश्यक पोषक तत्वों को बढ़ाता है। कंदयुक्त फसलों हेतु यह खाद बहुत उपयोगी है। कम मात्रा में यह खाद खेतों के लिये बहुत उपयोगी सिद्ध हुई है। यद्यपि रासायनिक खाद का उपयोग लाभकारी रहा है, परन्तु यथासम्भव इसका उपयोग न किया जाये तो उपयुक्त होगा। एक्सपोर्ट की दृष्टि से भी इस खाद का प्रयोग उचित नही है। जिस खेत में मूसली की फसल लगायी गयी हो, उसमें यदि सॉयल कन्डीशनर डाला जाये तो मृदा बहुत नरम हो जाती है। यह उपज में विशेष वृद्धि देता है। हिन्दुस्तान एन्टीबायोटिक्स का ''माइसिमिल'' सॉयल कन्डीशनर परीक्षणों के उपरान्त प्रभावी पाया गया है।

3.5 **बुवाई :** (Sowing)

मूसली के 2–5 ट्यूबर जिसमें क्राउन का भी भाग हो तथा वजन लगभग 5–10 ग्राम हो बुवाई हेतु उपयुक्त होते हैं। 6'' x 6'' की दूरी कतार से कतार के बीच सामान्यतः रखी जाती है। खेत की तैयारी करने के उपरान्त 3–3.5 फीट चौड़े जमीन से 1–1.5 फीट ऊँचे बेड बनाये जाते हैं। बरसात प्रारम्भ होते ही उचित दूरी पर छेद करके बुवाई प्रारम्भ करते हैं। बुवाई के पूर्व बीजों को ह्यूमिसिल 5 मिली / लीटर पानी में मिला कर तथा डायथेन एम–45, 5 ग्राम / लीटर पानी में उपचारित करते हैं।

सफेद मूसली एक खरीफ की फसल है। पहली वर्षा के बाद जून माह में इसकी बुवाई उपयुक्त होती है। मूसली के ट्यूबर्स (लगभग 8–15 ग्राम) गुच्छे के रुप में ही सावधानी से अलग करना होता है। इन ट्यूबर्स को ही खेत में रोपित करते हैं। प्रथम वर्षा के बाद नाइट्रोजन, फॉस्फोरस तथा पोटैशियम खाद का 20:40:20 किग्रा प्रति एकड़ का छिड़काव अच्छा होता है। बुवाई के पहले रोपण सामग्री को फफूँद नाशक तथा जीवाणुनाशक से उपचारित करना चाहिये। गौ–मूत्र से उपचारित सामग्री के भी अच्छे परिणाम देखे गये

हैं। 0.5–1.00'' इंच की गहराई पर रोपण करने से तेज वर्षा में भी पौध सुरक्षित रहती है। रोपण के तुरन्त पश्चात खेत की सिंचाई करना चाहिये तथा इसके बाद भी खेत में नमी स्तर पौध के नवीन अंकुरण तथा वृद्धि हेतु संतुलित होना चाहिये। रोपण के 5–15 दिनों के बाद नई बीज वृद्धि प्रारम्भ होती है। इसी बीच पत्तियां, फूल तथा बीज आते हैं। अक्टूबर – नवम्बर माह में पत्ते स्वतः सूखकर गिर जाते हैं और कंद जमीन के अन्दर रह जाते हैं।

3.6 **सिंचाई** : (Irrigation)

जून माह में रोपण के कारण जून–अगस्त तक प्राकृतिक वर्षा होने से सिंचाई की आवश्यकता कम पड़ती है। वर्षा ऋतु के बाद प्रत्येक 10 दिनों के अन्तराल पर खेत में पानी देना उपयुक्त होता है। अक्टूबर–नवम्बर माह में पौधों के पत्ते सूख कर झड़ जाने के बाद भी जब तक कंद खेत में हों, हल्की सिंचाई प्रत्येक 10 दिनों में करते रहना चाहिये। सिंचाई हेतु स्प्रिंकलर्स अधिक उपयुक्त होते हैं। सिंचाई व्यवस्था में पानी की निकास व्यवस्था पर अवश्य ध्यान देना चाहिये, क्योंकि खेत में पानी के लगने से कंद सड़ जाते हैं।

3.7 **निराई** : (Weeding)

तीस–चालीस दिनों के अन्तराल पर 2–3 निराई खर पतवार पर नियन्त्रण रखती है। निराई के एक दिन पूर्व सिंचाई कर देने से खर–पतवार आसानी से निकल जाते हैं।

4. **सफेद मूसली का उत्पादन तथा संग्रहण** : (Production and collection of Safed Musli)

यह विभिन्न बिन्दुओं पर निर्भर करता है – सर्वाधिक महत्वपूर्ण बिन्दु है रोपण सामग्री। ऐसा पाया गया है कि छोटे बीजों (कंदों) से (5 ग्राम से कम वजन) 4–5 बड़ा कन्द तैयार होता है, जबकि ज्यादा वजन वाले बड़े बीजों (कंदों) से प्रायः तीन गुना बड़ा कंद तैयार होता है। कंदों का वजन 2 ग्राम से 270 ग्राम तक होता है, परन्तु औसतन एक अच्छी फसल में सामान्यतः 20–25 ग्राम वजन वाले कन्द प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार औसतन एक पौधे में 10–12 फिंगर्स पाये जाते हैं। एक अध्ययन के अनुसार डाले गये बीज की मात्रा की तुलना में मूसली का उत्पादन 5–10 गुना ज्यादा होता है। प्रायः एक हेक्टेयर खेत से लगभग 50–60 कुन्तल तक ताजे कन्द प्राप्त होते हैं, जो सूख कर 10–12 कुन्तल रह जाते हैं।

4.1 **पौध रक्षण** : (Plant Protection)

मूसली की पत्तियों का रक्षण सभी प्रकार के कीटों तथा रोगों से करना चाहिये, जिससे अधिक फसल का उत्पादन हो सके। मूसली ट्यूबर्स के रुप में जमीन के अन्दर रहने से सभी प्रकार की प्राकृतिक आपदाओं से सुरक्षित रहती है। मूसली की फसल में प्रायः कोई विशेष बीमारी नही देखी गयी है, अतः किसी प्रकार के कीटनाशकों का प्रयोग करने की सलाह सामान्यतः नही दी जाती है। पानी की निकासी की व्यवस्था न होने पर पौधों की जड़ों के पास पानी ज्यादा दिन तक इकट्ठा रह जाता है। यह पैदावार को प्रभावित कर सकता है तथा कन्द पतले रह जाते हैं। खेत में नीम / रतनजोत / करज / बकायन की खली का प्रयोग पौधे को सुरक्षित रखता है।

4.2 **अन्तर्फसलीय खेती** : (Intercropping)

आम, सागौन तथा पोलोनिया के साथ मूसली की खेती करने पर अच्छे परिणाम देखे गये हैं। पपीते के साथ भी मूसली की खेती लाभप्रद है। मूसली की खेती लाभकारी फसल होने के कारण मुख्य फसल के रुप में ही करना चाहिये परन्तु अन्तर्फसल के रुप में भी इसकी खेती उपयोगी है। सागौन के बीचो–बीच अन्तर्फसल के रुप में मूसली की खेती की जाती है। एक अध्ययन के अनुसार सागौन के बीचो–बीच 1.5 फीट के दायरे में

मूसली के 11 पौधे रोपित कर दिये जायें तथा इन्हें मिट्टी चढ़ाकर इन्हें 18 महीने तक पड़ा रहने दिया जाये। स्प्रिंकलर्स द्वारा सिंचाई व्यवस्था और लाभकारी होगी। इस प्रकार 18 महीने बाद बिना किसी अतिरिक्त खर्च के मूसली के पौधों में स्वतः ही 4–5 गुना बढ़ोत्तरी हो जायेगी।

4.3 जमीन से कंदों को उखाड़ना : (Harvesting)

अंकुरण के पश्चात नमी का स्तर बनाये रखने तथा निराई करते रहने से पौध वृद्धि अच्छी होती है। ट्यूबर्स का निर्माण भी शीघ्र होता है। पौधों में पुष्पण, अंकुरण के तुरन्त बाद या 20–30 दिनों के बाद हो जाता है। यह जलवायु तथा पौध प्रकृति पर निर्भर करता है। पुष्पों के परिपक्व होने की दशा में बीज निर्माण प्रारम्भ होता है तथा बीजों के परिपक्व होने में 2–3 माह लगते हैं। इसके साथ ही नये ट्यूबर्स का उत्पादन भी नवम्बर–दिसम्बर माह से प्रारम्भ हो जाता है। पत्तियों का पीले पड़ने के साथ ही गिरना भी शुरु हो जाता है तथा ट्यूबर्स का निर्माण भी पूरा हो जाता है। इस अवस्था में ट्यूबर्स का निर्माण भी पूरा हो जाता है। इस अवस्था में ट्यूबर्स कठोर नहीं होते हैं, इनकी सतह चिकनी तथा 85–90 प्रतिशत पानी होता है यह अगले वर्ष में बुवाई हेतु उपयुक्त नही होते हैं। 2–3 माह तक इन ट्यूबर्स को छोड़ने से हार्डनिंग हो जाती है जिससे ट्यूबर्स में पानी 70–75 प्रतिशत तक ही रहता है। फसल के निस्तारण के पूर्व खेत को ठीक प्रकार सींचना चाहिये जिससे ट्यूबर्स बिना टूटे हुए आसानी से निकल सकें। मूसली का क्रापिंग चक्र 8–9 माह का होता है।

कच्चे कंदों का रंग सफेदी लिये हुए होता है जो कि धीरे–2 भूरा होने लगता है। जमीन में कंद जब परिपक्व हो जाते हैं तब इनका रंग गहरा भूरा हो जाता है। कंदों की परिपक्व अवस्था में ही उन्हें सिंचाई के बाद कुदाली या हाथ से एक–एक करके निकालते हैं। प्रायः कंद निकालने का कार्य जनवरी माह में किया जाता है। छोटे फिंगर्स को प्लांटिंग मैटेरियल (planting material) के रुप में अलग रखते हैं तथा बड़े कंद बिक्री हेतु तैयार करते हैं। यदि कंदों को जमीन में पड़ा रहने दें या मजबूरी में नही निकाल पाये तो बरसात में यह कंद गल जाते हैं तथा अगले वर्ष नये पौधे के रुप में बाहर आते हैं।

5. कंदों की निर्माण विधि : (Processing of Tubers)

5.1 धुलाई : (Washing)

छीलने से पूर्व कंदों में लगी मिट्टी साफ करने के लिये पानी से धोया जाता है। छिद्रयुक्त टोकरियों में कंद रखकर तेज पानी के बहाव के नीचे रखने से कंद स्वच्छ हो जाता है तथा गंदा पानी टोकरियों से स्वतः निकल जाता है। इसके धुले हुए कंदों की छिलाई (Peeling) होती है।

5.2 छिलाई : (Peeling)

सर्वप्रथम रोपण सामग्री हेतु प्रयुक्त होने वाले कंदों को आकार तथा वजन के आधार पर अलग कर देते हैं। शेष कंदों की विपणन में भेजने से पहले छिलाई करते हैं। छिलका उतारने से यह अधिक साफ हो जाती है तथा आसानी से सूख जाती है। मूसली को छीलने का कार्य बहुत धैर्य तथा श्रम से करना होता है। इसमें बहुत समय लगता है क्योंकि एक–एक ट्यूबर को छीलना पड़ता है। छिलाई कई प्रकार से की जा सकती है :–

– एक विधि में श्रमिक पत्थर तथा कंदों को घिसता है जिससे मूसली छिलका उतर जाता है। इस विधि में छोटे कंद छिलने के साथ साथ गुदा भी छोड़ देते हैं जिससे मुख्य उत्पाद प्रभावित होता है। इस प्रकार से छिली मुसली की बाजार में गुणवत्ता भी कम होती है क्योंकि एक समान छिलाई न होने से मुसली टेढ़ी व असामान्य आकार की हो जाती है। एक अन्य विधि में मूसली को पानी में भिगो देते हैं फिर निकाल कर कुछ समय तक पानी के छींटे दे देकर गीला रखते हैं। जंगलों से मूसली की फसल के निस्तारण के बाद इसी विधि

को अपनाते हैं। थोड़े समय के बाद मूसली स्वतः छिलका छोड़ने लगती है। या हाथ में मलते ही छिलका अलग हो जाता है। ज्यादा पकी मूसली में यह विधि काम नही करती है।

– तेज चाकू द्वारा कंदों की घिसाई करने से छिलका बारीकी से एक समान अलग हो जाता है। इसमें उत्पाद व्यर्थ नही होता है। अकुशल मजदूर भी इस विधि को आसानी से सीख लेते हैं। यह विधि ही व्यवहारिक रुप से सर्वश्रेष्ठ मानी गयी है। मूसली का छिलका कंद को बिना नुकसान पहुंचाये रासायनों द्वारा अलग करने की दिशा में शोध हो रहा है। सफल परिणाम इसकी विपणन व्यवस्था को मजबूती प्रदान करेगा।

5.3 **सुखाना :** (Drying)

छिली मूसली को सुखाने से नमी समाप्त हो जाती है। इसे धूप में फैलाकर सुखाते हैं। यदि धूप तेज हो तो 3–4 दिन का समय पर्याप्त है।

5.4 **ग्रेडिंग :** (Grading)

मूसली को छीलने के बाद गुणवत्ता के आधार पर ग्रेडिंग की जाती है। सर्वश्रेष्ठ, मध्यम तथा निम्न श्रेणी। इनका मूल्य श्रेणी के आधार पर रुपया 1000/– से 1700/– प्रति किग्रा तक हो सकता है। ग्रेडिंग में रोपण सामग्री वाले कंद अलग कर दिये जाते हैं।

5.5 **पैकिंग :** (Packing)

विपणन हेतु भेजने के पूर्व कंदों की पैकिंग की जाती है। पॉलिथीन की एअर टाईट थैलियों में इन्हें सुरक्षित बन्द कर दिया जाता है। यह नमी आदि दुष्प्रभावों से मूसली की रक्षा करता है। मूसली के सूखने के पश्चात उसके ताजे वजन की तुलना में 75–80 प्रतिशत की कमी आती है। मात्र 20–25 प्रतिशत सूखा उत्पाद प्राप्त होता है।

5.6 **आगामी फसल हेतु रोपण सामग्री का संग्रह :** (Collection of planting material for next crop)

फसल के निस्तारण के बाद क्राउन सहित छोटी फिंगर्स रोपण सामग्री हेतु एकत्र की जाती है जो आगामी फसल हेतु रख ली जाती है। यह कंद जनवरी–फरवरी माह में निकाले जाते हैं तथा आगामी फसल हेतु मई–जून माह में बोये जाते हैं, तब तक के समय हेतु इस सामग्री का भण्डारण करना होता है।

5.7 **पौध सामग्री का भण्डारण :** (Storage of Planting Material)

कोल्ड स्टोरेज में भण्डारण अनुपयुक्त पाया गया क्योंकि पौधों का अंकुरण प्रभावित होता है। इनका भण्डारण छिद्रयुक्त विशेष प्रकार के रैक में करना चाहिये, जिसका नियंत्रित तापमान 25–31^{0} सेन्टीग्रेड तक तथा आपेक्षित आर्द्रता 50–65 प्रतिशत तक हो। किसानों हेतु यह भण्डारण विधि व्यवहारिक रुप से कठिन तथा महंगी है। कंदों को एक छाया वाले स्थान में एक गढ्ढे में रखकर ऊपर से मिट्टी डाल कर सुरक्षित रखे जाने हेतु प्रयोग किया जा सकता है।

6. **मूसली कंदों का विपणन :** (Marketing of Tubers)

सफेद मूसली के कंदों की राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में मांग तेजी से बढ़ रही है। गुजरात राज्य वन विभाग ने एक औषधि 'नई चेतना' के नाम से बाजार में उतारा है जो सफेद मूसली के कंदों से ही बनी हुयी है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सफेद मूसली का वृहद बाजार चीन, फ्रांस जर्मनी, इटली, जापान तथा अमेरिका आदि देशों में है। औसतन मूसली कंदों की विदेशी मांग 300–700 टन प्रति वर्ष है। मांग–आपूर्ति के अनुपात में कंदों की मांग आपूर्ति से बहुत ज्यादा है। जानकारी के अभाव में भारतीय किसान सफेद मूसली की खेती को अपनाने

में कठिनाईयाँ महसूस कर रहे हैं। मूसली के कंदों का विपणन गुणवत्ता के आधार पर किया जाता है। अच्छी गुणवत्ता वाली मूसली जहां 1200 – 1700 रुपये प्रति किग्रा तक बिक जाती है, वहीं हल्की प्रकार की मूसली 200–250 रु0 प्रति किग्रा तक बिकती है। सफेद मूसली की खेती व्यापक स्तर पर अपनायी जा रही है। औसतन 20 कुंतल जड़ों का उत्पादन प्रति हे होता है जो सूख कर 35 से 40 कुंतल तक हो जाता है ।एक हे क्षेत्र से लगभग 5.5 से 6.0 लाख तक लाभ प्राप्त किया जा सकता है ।

इसके विपणन हेतु किसान उत्तम गुणों वाले कंदों को विभिन्न आयुर्वेदिक कम्पनियों को सम्पर्क कर के बेच सकते हैं, जिससे मुनाफा अधिक होगा। इसके अतिरिक्त छोटे कंदों को रोपण सामग्री के रुप में भी बेच सकते हैं। देश में विभिन्न संस्थायें औषधीय पौधोंके प्रचार–प्रसार तथा विपणन में कार्यरत है। टॉनिक के रुप में तथा विभिन्न बीमारियों में प्रयुक्त होने के कारण सफेद मूसली की बाजार में मांग दिन प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है। आवश्यकता इस बात की है कि सामान्य किसान में जन चेतना जागृत हो कि वह सही स्थान पर विक्रय हेतु सम्पर्क करें। समय के साथ इसका प्रसार होने से एक किसान अपने अन्य सह किसानों से भी इसे रोपण सामग्री के रुप में खरीद कर सफेद मूसली की खेती अपना सकता है। विक्रय में अधिक लाभ अर्जित करने हेतु मूसली की गुणवत्ता बनाये रखना आवश्यक है। एक बार जब किसान का सम्पर्क हर्बल/आयुर्वेदिक प्रयोगशाला से हो जाता है, तब उस कम्पनी के प्रतिनिधि स्वतः किसान को सम्पर्क करके उचित समय पर उत्पाद क्रय करते हैं।

राष्ट्रीय मेडिसिनल प्लान्ट बोर्ड : (National Medicinal Plants Board)

औषधीय व सुगंधीय पौधों की आर्थिक महत्ता तथा उपयोग को देखते हुए भारत सरकार ने राष्ट्रीय मेडिसिनल प्लांट बोर्ड का गठन किया है। बोर्ड के कार्य का मुख्य आधार इन पौधों की खपत, आपूर्ति, विभिन्न योजनाओं का निर्धारण एवं निपटारा, पौधों का संरक्षण, उपज व कृषि तकनीकों का विकास करना पौधों तथा उसके उपयोगी भाग को आयात निर्यात करना आदि हैं। इस बोर्ड का मुख्य कार्यालय दिल्ली में है तथा उपकार्यालय भारत के लगभग सभी राज्यों में स्थापित किये गये हैं। किसानों हेतु सुलभ योजनाओं का आरम्भ इस बोर्ड के माध्यम से सरकार द्वारा किया जा रहा है, जिससे किसानों में एक नई सोच तथा उत्साह पैदा हुआ है। राष्ट्रीय मेडिसिनल प्लान्ट बोर्ड द्वारा प्राथमिकता प्राप्त एवं चिन्हित विशिष्ट 32 प्रजातियों में ''सफेद मूसली'' भी है। इन सभी प्रजातियों की घरेलू तथा अन्तराष्ट्रीय बाजार में अत्यधिक मांग है। किसान वर्ग स्वयं सेवी संस्थाओं या अन्य वर्ग बोर्ड के प्रारुप पर (उनकी शर्तों का पालन करते हुए) वित्तीय सहायता हेतु सफेद मूसली या अन्य औषधीय पौधे की खेती हेतु आवेदन कर सकते हैं।

<u>निष्कर्ष</u> : (Conclusion)

जनसामान्य एवं कृषक भारतीय अर्थव्यवस्था की असंतुलित स्थिति के कारण कठिनाई का सामना कर रहा है। परम्परागत खाद्यान्नों एवं तेलीय फसलों में भारत निरन्तर आत्मनिर्भरता की ओर अग्रसर है, लेकिन आवश्यकता है भारतीय कृषक को उन नवीन आयामों की, जिसके माध्यम से वह अर्थ–व्यवस्था की नई ऊँचाईयाँ पाने में योगदान दे सके। सफेद मूसली किसानों द्वारा परम्परागत खेती के अतिरिक्त अपनाने हेतु एक उपयोगी विकल्प है।

व्यवसायिक दृष्टि से सफेद मूसली की खेती से ज्यादा लाभकारी संभवतया कोई भी फसल नही है। विपणन आसान होने के साथ ही साथ किसान को कम लागत में अधिक प्राप्ति होती है। इसके अतिरिक्त देश के विभिन्न क्षेत्रों की जलवायु तथा अन्य परिस्थितियाँ इसकी खेती के लिये अत्यधिक अनुकूल हैं। उत्तर प्रदेश

में वनाच्छादन कुल भौगोलिक क्षेत्र का मात्र 4.46 प्रतिशत है। वन क्षेत्र तराई तथा विन्ध्य का क्षेत्र अशिक्षा, गरीबी, शहरीकरण तथा जनसंख्या की भार से ग्रसित है, जिससे वन क्षेत्र की विकास दर प्रभावित हो रही है। अतः सामाजिक वानिकी तथा कृषि वानिकी इस दिशा में कृषकों हेतु एक ठोस तथा व्यवहारिक कदम होगा। इस क्षेत्र का किसान कृषि वानिकी हेतु उचित वानिकी प्रजातियों के चयन में दिशाहीन है। आर्थिक स्थिति में सुधार हेतु अधिक लाभ देने वाली प्रजातियों की भूमिका महत्वपूर्ण है। सीमान्त तथा लघु किसानों का आर्थिक स्तर वृक्ष प्रजातियों को अपनाने के साथ–साथ सफेद मूसली तथा अन्य औषधीय प्रजातियों को कृषि वानिकी में स्थान देने से निश्चित रुप से समृद्ध होगा तथा विकास की एक नई दिशा प्रदान करेगा। विभिन्न सरकारी तथा गैर–सरकारी संस्थायें किसानों को खेती के नवीन संसाधनों से समय–समय पर अवगत कराती है किन्तु यह प्रयास वृहद स्तर पर अपेक्षित है। लघु तथा सीमान्त किसानों हेतु सफेद मूसली की कृषि तकनीक सम्बन्धी जानकारियाँ आवश्यक है। औषधीय पौधों के प्रचार–प्रसार हेतु ही भारत सरकार ने राष्ट्रीय मेडिसिनल प्लांट बोर्ड, नयी दिल्ली का भी गठन किया है जिसके माध्यम से किसान सफेद मूसली या अन्य चिन्हित प्रजातियों पर परियोजना हेतु वित्तीय सहायता प्राप्त कर सकता है। सफेद मूसली की खेती से किसान अल्प अवधि में ही अधिक लाभ अर्जित कर सकता है।

संदर्भ : (References)

1. शर्मा आर (2002) : औषधीय और सुगंधीय पौधों की कृषि तकनीक, 215–218, दया पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
2. पुरोहित एस0एस0 (2004) : औषधीय और सुगंन्धीय पौधे कृषि तकनीक, उपयोगितायें और वित्तीय मार्गदर्शन, 284, एग्रोबायोस (इण्डिया), जोधपुर।
3. नादकरनी, के0एम0 (2001) : इण्डियन प्लान्ट्स एण्ड ड्रग्स विद् देयर मेडिकल प्रापर्टीज एण्ड यूसेज, एशियाटिक पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
4. चटर्जी एस0के0 (2001) : हैण्डबुक आफ मेडिसिनल प्लान्ट्स, 92–93, प्वाइण्टर पब्लिशर्स, जयपुर।
5. ऑनन (1992) : वेल्थ आफ इण्डिया, वाल्यूम 3, 482, पब्लिकेशन एण्ड इन्फारेमेशन डायरेक्टरेट, सी0एस0आई0आर0, डा0 के0 एस0 कृष्णन मार्ग, नई दिल्ली।
6. जोशी एस.जी. (2000) : मेडिसिनल प्लांट्स, आक्सफोर्ड एण्ड आई.बी.एच. पब्लिशिंग कम्पनी, नयी दिल्ली।
7. ऑनन (1999) : यूसफुल प्लांट्स आफ इण्डिया, सी.एस.आई.आर., पब्लिकेशन एण्ड इनफॉरमेशन डाइरेक्टोरेट, नयी दिल्ली।
8. मंजूनाथ, जी., त्यागी, एस.के. तथा श्रीनिवासन, के. (2004) : सफेद मूसली : ए व्हाइट गोल्ड, एग्रोबायोस (इण्डिया), जोधपुर।

कृषक उत्पादक संगठन द्वारा कृषक आय संवर्धन

जय प्रकाश[1] , एस0के0 वर्मा[2], सियाराम[3] एवं प्रमोद कुमार[4]

विषय वस्तु विशेषज्ञ (कृषि प्रसार)[1], वरिष्ठ वैज्ञाानिक एवं अध्यक्ष[2], विषय वस्तु विशेषज्ञ (शस्य विज्ञान)[3]
विषय वस्तु विशेषज्ञ (मत्स्य)[4], कृषि विज्ञान केन्द्र, पचपेड़वा, बलरामपुर

प्रस्तावनाः

आज यह धारणा प्रबल होती जा रही है कि खेती घाटे का सौदा है अब प्रश्न उठता है कि बाजार में तो खाने पीने की चीज जो दुकान से बिकती है काफी महंगी होती हैं और बनती तो किसान द्वारा किए गए उत्पादन से ही है। तो फिर किसान को उत्पादन का लाभ क्यों नहीं मिलता है। इसका उत्तर है कि हमारे किसान भाई उत्पादक तो है लेकिन वह जागरुक होकर अभी उद्यमी या व्यवसाई नहीं बने हैं। खेती–बाड़ी में केवल अच्छा उत्पादन एवं उत्पादकता प्राप्त कर लेना किसान की अर्थ समृद्धि गारंटी नहीं है किसानों को अपने उत्पाद का वाजिब मूल्य प्राप्त करने के लिए उत्पादन के बाद समुचित भंडारण मूल्य संवर्धन के लिए सफाई , छनाई, श्रेणीकरण प्रसंस्करण जैसे विपणन व्यवस्था पर ध्यान देना होगा इसलिए किसानों के संगठित होने की आवश्यकता है किसान को खेती–बाड़ी में आने वाली प्रमुख समस्याएं निम्न हैं।

1. किसानों के पास छोटी–छोटी जोत हैं आने वाले समय में पीढ़ी दर पीढ़ी यह जोते और छोटी होती जाएगी। छोटी जोत के कारण खेती–बाड़ी के लिए सभी व्यवस्थाएं करने में कठिनाई आती है।
2. किसान के पास सीमित आर्थिक संसाधन या पूंजी की कमी के कारण सभी निवेशों की समय पर व्यवस्था कर जीना कठिन होता है।
3. किसान तक सूचना एवं तकनीकी का न पहुंच पाना।
4. स्थानीय स्तर पर भंडारण मूल्य संवर्धन एवं प्रसंस्करण की सुविधा का अभाव।
5. उत्पादन बेचने के लिए बिचौलियों पर निर्भरता एवं बाजार की कमी।

अब प्रश्न उठता है कि इन किसानों को कैसे संगठित करके उनकी इन समस्याओं का निदान किया जाए इसी कड़ी में एक प्रयास है फार्मर्स प्रोडूसर ऑर्गनाइजेशन ।आपने बड़ी बड़ी कंपनियों का नाम सुना होगा यह सारी कंपनियां भारत सरकार द्वारा बनाए गए कंपनी अधिनियम 1956 के अंतर्गत संचालित होती हैं और भारत सरकार के रजिस्टार ऑफ कंपनी द्वारा नियंत्रित होती है।इस कंपनी अधिनियम के अंतर्गत सरकार द्वारा अपने किसानों को भी अपनी स्वयं की कंपनी बना कर व्यवसाय करने का अवसर प्रदान किया गया है ।अगर सीधे शब्दों में कहें तो अब किसान हमारा उत्पादक ही नहीं अपितु वह किसान तथा बनिया के रूप में काम कर सकता है ।इस प्रकार "कृषक उत्पादक कंपनी कंपनी अधिनियम 1956" के अंतर्गत एक पंजीकृत संस्था है। जिसके निश्चित उद्देश्य और गतिविधियां होती है।

अब सबसे बड़ी बात हमारे किसान भाई कैसे अपनी फार्मर प्रोडूसर कंपनी बना सकते हैं इसके लिए उन्हें एक चरणबद्ध प्रक्रिया अपनानी होती है सबसे पहले उनको छोटे–छोटे फार्मर प्रोडूसर उत्पादक समूह बनाने की जरुरत होती है ।उत्पादक समूह एक ऐसे किसानों का समूह है जो एक समान उत्पादन कर रहे हैं जैसे कई कृषक अनाज दलहन, तिलहन, सब्ज़ी फल, फूल, मुर्गी पालन आदि कार्य में संलग्न हैं ।एक ही

गतिविधियों से जुड़े हुए कृषक जो कार्य कर रहे है।उनका उत्पादक समूह बनाया जा सकता है समूह के सारे सदस्य मिलकर के कृषि निवेश व्यवस्था, उत्पादन, भंडारण और उत्पाद बेचने का कार्य करेंगे और इन समूहों के गठन और संचालन के लिए कुछ सामान्य से नियम बना लेने चाहिए। जैसे उनकी नियमित बैठक करना बैठ को की कार्यवाही को लिखना समूहों की बचतों को इकट्ठा करना और उसका ब्यौरा रखना और उसको बैंक में जमा करना इस तरह से उत्पादक समूह अपनी गतिविधियां संचालित करेंगे इस प्रकार 10 से 15 कृषक परिवारों को लेकर एक कृशक उत्पादक समूह बनाया जा सकता है और इस प्रकार के चार–पांच या इससे अधिक समूह एक गांव में बनाए जा सकते हैं । इस प्रकार से 15 से 20 ग्रामों में ऐसे समूह बनाकर और लगभग 1000 किसानों को इकट्ठा किया जा सकता है और इन 1000 किसानों की संख्या होने के बाद एफपीओ के गठन की और आसानी से कतम बढ़ाया जा सकता है आवश्यक नहीं है कि यह संख्या 1000 ही हो यह 500,600 या 800 भी हो सकती है।लेकिन जितनी ज्यादा संख्या हो उतना ही अच्छा रहता है । सभी उत्पादक समूहों की एक बैठक कर के प्रत्येक सदस्य को शेयर होल्डर बनाने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए अर्थात अंश धारक बनाने के लिए प्रेरित करना चाहिए। उसको कुछ धनराशि एफपीओ के गठन के लिए अंश के रूप में जमा करनी होती है। इस प्रकार से ₹ 5 लाख की धनराशि जमा करना एफपीओ के पंजीकरण के लिए आवश्यक है। इसके पश्चात के गठन के लिए न्यूनतम 10 या अधिक किसान इकट्ठा करके कृषकों की कंपनी को बनाया जा सकता है।

फार्मर्स प्रोड्यूसर कंपनी का गठन एवं पंजीकरण

फार्मर्स प्रोड्यूसर कंपनी बनाने की चरणबद्ध प्रक्रिया को बिंदुवार निम्नवत समझा जा सकता है।

➢ फार्मर प्रोड्यूसर कंपनी के गठन एवं पंजीकरण के प्राविधान कंपनी अधिनियम 1956 की धारा 581सी में वर्णित है।

➢ उत्पादक कंपनी का पंजीकरण कराया जा सकता है।

- 10 या अधिक व्यक्तियों द्वारा मिलकर जो उत्पादक हो या
- कोई दो या अधिक उत्पादक संस्थान या
- 10 या अधिक व्यक्तियों और उत्पादक संस्थानों द्वारा मिलकर।

गठन हेतु मूलभूत आवश्यकताएंः

- 10 चयनित सदस्य जन्म 5 बोर्ड ऑफ डायरेक्टर सम्मिलित हैं।
- न्यूनतम प्रदत्त पूंजी एक लाख रुपये।
- पंजीकृत की जाने वाली कंपनी के कार्यालय का भारत में पता।

गठन हेतु आवश्यक दस्तावेजः

- कंपनी के नामित निदेशक मंडल के सदस्यों के नाम एवं आधार की प्रति।
- पासपोर्ट साइज फोटोग्राफ। निदेशक मंडल के सदस्यों की बैंक पासबुक की फोटो प्रतियां।
- कृषि जन्य आय का तहसीलदार/ एसडीएम या जिला कृषि अधिकारी/ उप कृषि निदेशक प्रमाण पत्र।

- कंपनी के प्रस्तावित कार्यालय का पता संबंधित साक्ष्य बिजली / टेलीफोन बिल / रजिस्ट्री / किराया एग्रीमेंट की प्रति आदि।
- मेमोरेंडम ऑफ एसोसिएशन तथा आर्टिकल आफ एसोसिएशन की प्रतियां।
- निदेशक मंडल के सदस्यों का पूर्ण विवरण।
- निवेशकों अन्य सदस्यों का विवरण।
- कंपनी का प्रस्तावित नाम न्यूनतम 3 नाम प्रस्तावित करने होंगे।

पंजीकरण प्रक्रिया

- एफपीसी पंजीकृत कराने के लिए योग्य चार्टर्ड अकाउंटेंट / कंपनी सचिव की आवश्यकता होती है इस कार्य हेतु लगभग ₹40000 व्यय आता है।इस प्रकार आवेदन के उपरांत कंपनी को पंजीकृत करते हुए निम्न दस्तावेज कंपनी के लिए जारी किए जाते हैं।

1. कंपनी के पंजीकरण का प्रमाण पत्र।
2. कंपनी का डायरेक्टर आईडेंटिफिकेशन नंबर।
3. परमानेंट अकाउंट नंबर।
4. टैक्स डिडक्शन अकाउंट नंबर।
5. कर्मचारी भविष्य निधि।
6. कर्मचारी बीमा।
7. कंपनी का बैंक खाता संख्या (अंतिम)

पंजीकरण उपरांत कार्यवाहीः

- कंपनी के कार्यालय की स्थापना ऑफिस के बोर्ड सहित।
- शेयर आवंटन हेतु आर ओ सी का प्रार्थना पत्र।
- 30 दिन के अंदर बोर्ड ऑफ डायरेक्टर की पहली बैठक।
- कंपनी की सामान्य सभा की पहली बैठक एवं ऑडिटर की नियुक्ति 90 दिनों के अंदर।
- ऑडिटर की नियुक्ति के लिए फार्म ADI–1 पर आवेदन।
- जीएसटी के लिए आवेदन।
- व्यवसाय हेतु आवश्यकता अनुसार आवश्यक लाइसेंसों के लिए आवेदन उर्वरक, बीज, कीटनाशी, मंडी।
- शेयर सर्टिफिकेट का छपाई एवं आवंटन।
- कंपनी की आवश्यक मोहरें, फाइल एवं रजिस्टर बनाना।

कृषक उत्पादक संगठन बनाने हेतु सुविधाएंः

- भारत सरकार द्वारा कृषक उत्पादक संगठनों का गठन एवं प्रोत्साहन योजना संचालित की जा रही है योजना अंतर्गत वर्ष 2019–20 से 2023–24 तक 5 वर्ष देश में कुल 10,000 एफ पी ओ का लक्ष्य

निर्धारित है।

- योजनान्तर्गत गठित प्रत्येक एफपीओ को उसके गठन के वर्ष से अगले 5 वर्ष तक हैंड होल्डिंग सपोर्ट उपलब्ध कराया जाएगा। जिसके आधार पर वर्ष 2027–28 तक हैंड होल्डिंग जारी रहेगा।
- अकाउंटेंट कंपनी के सीईओ के वेतन, कार्यालय किराया, साज–सज्जा कंपनी के पंजीकरण पर होने वाले व्यय का वाहन योजना से किया जाता है।
- एफपीओ के प्रति सदस्य ₹2000 या दर से अधिकतम रुपया 1500000 की सीमा तक मैचिक इक्विटी ग्रांट की भी व्यवस्था है।
- एफपीओ को ऋण दो करोड़ रुपये की सीमा तक वित्तीय संस्थानों से ऋण हेतु क्रेडिट गारंटी की भी सुविधा मिलती है।
- एफपीओ को कंपनी के संचालन, वित्तीय प्रबंधन, लेखा–जोखा, संसाधनों के समुचित उपयोग हेतु योजना बनाना, विपणन, प्रसंस्करण आदि जैसे विषयों में क्षमता निर्माण एवं प्रशिक्षण की भी व्यवस्था सरकार द्वारा योजनांतर्गत की जाती है।

एफपीओ गठन के लिए इच्छुक कृषक / कृषक समूह कहां संपर्क करें:

जो कृषक एफ पी ओ बनाना चाहते हैं उन्हें जिला स्तर पर तैनात नाबार्ड के जिला विकास प्रबंधक से संपर्क करना होगा ।किसान भाई एफ पी ओ के संबंध में जानकारी के लिए अपने जनपद के उप कृषि निदेशक से भी संपर्क कर सकते हैं।

एफपीओ गठन से होने वाले लाभ:

एफपीओ से किसान भाइयों को मिलने वाले लाभ निम्न हो सकते हैं।

1. बीज, खाद, कीटनाशक जैसे कृष निवेशकों के लिए कृशि विभाग से लाइसेंस प्राप्त कर इनका व्यवसाय कर सकते हैं । इससे किसान भाई स्वयं गुणवत्ता युक्त कृशि निवेश उचित मूल्य और सही समय पर व्यवस्था कर सकते हैं।
2. एफपीओ को कंपनियां थोक विक्रेता होलसेलर भी बनाती है । इन कंपनियों की फ्रेंचाइजी लेकर एफपीओ व्यवसाय कर सकते हैं।
3. कृषि विभाग द्वारा संचालित विभिन्न योजनाओं के अंतर्गत एफ पी ओ को निम्न सुविधाएं दी जाती हैं जैसे।

1. नेशनल फूड सिक्योरिटी मिशन, नेशनल मिशन फॉर सस्टेनेबल एग्रीकल्चर, परंपरागत कृषि विकास योजना आदि के अंतर्गत कलस्टर आधार पर आयोजित होने वाले प्रदर्शनों का लाभ एफपीओ पा सकते हैं।
2. फार्म मशीनरी बैंक / कस्टम हायरिंग सेंटर के अंतर्गत 40 से 80 प्रतिशत तक की छूट पाकर एफपीओ अपने क्षेत्र में कृषि यंत्रीकरण द्वारा कृशकों को सेवाएं देकर लाभ कमा सकते हैं।
3. न्यूनतम समर्थन मूल्य पर खाद्यान्न खरीद केंद्र के रूप में एफपीओ को मान्यता मिल सकती है एफपीओ इसमें कमीशन पाकर स्वयं लाभान्वित होते हैं और कृषकों को भी सुविधा रहती है।
4. बीज उत्पादन, बीज विधायक, गोदाम निर्माण की योजनान्तर्गत एफपीओ को 60 लाख रुपये तक

का अनुदान मिलता है।

5. नेशनल फूड सिक्योरिटी मिशन /वीजीआरई आई जैसे योजनाओं के अंतर्गत मिनी राइस मिल, दाल मिल, आटा मिल, तेल मिल की स्थापना हेतु मशीनों पर छूट पाकर स्थानीय स्तर पर खाद्य प्रसंस्करण/ मूल्य संवर्धन का कार्य एफपीओ कर सकते हैं।
6. एफपीओ के पास पंजीकरण प्रमाण पत्र उपलब्ध होने की दशा में मंडी शुल्क में छूट का प्राविधान है।
7. भारत सरकार द्वारा लागू नए नियमों के अंतर्गत अब एफपीओ सीधे अपना माल उपभोक्ता को बेच सकते हैं । एफपीओ द्वारा ज्यादा मात्रा में किसी भी कृशि उत्पाद का उत्पादन कर सीधे बड़े–बड़े होटलों माल और बाजार में बेचकर बिचौलियों से बचा जा सकता है।
8. सरकार द्वारा विभिन्न योजनाओं तथा बड़ी–बड़ी कंपनियों द्वारा सीएसआर के अंतर्गत चलाए जाने वाली प्रशिक्षण कार्य{मों, प्रदर्शनों का लाभ कृषकों को एफपीओ के माध्यम से आसानी से प्राप्त हो जाता है।

.... पेज नं0 44 का शेष भाग

2. ग्रेड बीः इसमें सफेद मांसल जड़ें जिसकी औसतन लम्बाई 5 सेमी. व्यास 1 सेमी. का होता है जो कि जड़ का मध्य भाग होता है तथा यह जड़े कड़क व ठोस होती है।
3. ग्रेड सीः सबसे नीचे की जड़ जिसकी औसतन लम्बाई 3 से 4 सेमी. तथा व्यास 1 सेमी. से कम होता है इसमें पतली शाखित जड़ें आती है जो मांसल भी नहीं होती है। पतली शाखाओं युक्त जड़ें मोटी या पतली जो लम्बाई में टेढ़ी मेढ़ी काश्ठीय जड़ें होती हैं यह सब निम्न श्रेणी में आती हैं।

पैदावार

उन्नतशील बीजों तथा बताई गई वैज्ञानिक विधि से खेती करने पर लगभग 7–8 कुन्तल प्रति हेक्टेयर सूखी जड़ें प्राप्त की जा सकती है। वह जड़ें जिनकी लम्बाई 8 से 10 सेमी. हो तथा जिनका व्यास 10 से 15 मिमी. हो व्यापारिक दृष्टिकोण से अच्छी मानी जाती हैं तथा उसकी कीमत अच्छी प्राप्त होती है। बीज प्राप्त करने के लिए फसल के 5 प्रतिशत भाग की खुदाई नहीं करनी चाहिए, जब पौधों की अधिकतर बेरी नारंगी रंग की हो जाय तब काटकर सुखाने के पश्चात बीज निकाल लेते हैं।

आय–व्यय

अश्वगंधा की एक हेक्टेयर की खेती के लिए की तैयारी, बुवाई, निराई–गुड़ाई, सिंचाई, जड़ों की खुदाई एवं संग्रहित करने में लगभग रुपये 12,000 तक व्यय होता है। जड़ों का बाजार भाव 50 से 100 रुपये प्रति किग्रा. है। शुद्ध लाभ 25,000 से 30,000 रुपये प्रति हेक्टेयर तक प्राप्त हो जाता है।

बकरी पालन कृषकों के लिये एक लाभकारी व्यवसाय

डॉ0 विद्या सागर[1], डॉ0 प्रदीप कुमार[2], डॉ0 रामजीत[3], डॉ0 रेखा[4] एवं डॉ0 रामगोपाल[5]
सह प्राध्यापक / वि.व.वि.(पशु विज्ञान)[1], सहा. प्राध्यापक / वि.व.वि.(फसल सुरक्षा)[2], वि.व.वि.(सस्य विज्ञान)[2],
वरिष्ठ वैज्ञानिक व अध्यक्ष कृषि विज्ञान केन्द्र, पांती, अम्बेडकरनगर, पो0 मंशापुर–224168,उ0प्र0,[3]
कृषि प्रसार[4] , वि0व0वि0 (एग्रोनामी), कृषि विज्ञान केन्द्र, अम्बेडकरनगर (उ0प्र0)[5]

बकरी पालन का बहुआयामी आर्थिक महत्व है। बकरी हमें मॉस, दूध, खाल, रेशा एवं खाद आदि उपलब्ध कराती है। पिछले कुछ वर्षों में जनसंख्या वृद्वि एवं जीवन स्तर में सुधार के कारण मांस की मांग बढ़ी है। बकरी मांस चूकि सबसे लोकप्रिय है, अतः इसका मूल्य भी अधिक मिलता है। बकरी मांस की राट्रीय मांग के अतिरिक्त इसका बड़ा निर्यात बाजार भी उपलब्ध है। विभिन्न प्रजातियों में बकरी पालन एक प्रमुख व्यवसाय है। इसकी सबसे विशेष बात यह है कि भारत के लगभग सभी राज्यों में यह पाई जाती है भारत में लगभग 26 मुख्य बकरियों की नस्लें पाई जाती हैं। जिनमें जमुनापारी, बरबरी, बीटल, सिरोही, ब्लैक बंगाल, ओस्मानाबादी, सूरती, कच्छी और मारवाडी नस्ल की बकरियों का पालन सबसे ज्यादा किया जाता है। क्योंकि ये दूध और मॉस का अधिक उत्पादन करती हैं। बकरी पालन का कोई समाजिक या धार्मिक बन्धन नहीं है जिससे इसे सभी धर्म के लोगों द्वारा पाला जाता है। महिलाओं व बच्चों के लिए भी बकरी का रख रखाव न केवल आसान होता है बल्कि उनकी भागीदारी सुनिश्चित करके समाज के उत्थान में उनका योगदान लिया जा सकता है।

बकरी पालन से सम्बन्धित आवश्यक जानकारीः

बकरी पालने के लिए कम पूंजी की आवश्यकता होती है। एक गरीब किसान जो गाय एवं भैंस नहीं खरीद सकते वह एक गाय या भैंस की जगह में 3 से 4 बकरियां आसानी से पाल सकते हैं। बकरी एक एसे पशु है जो खराब से खराब और कम से कम चारे पर अपना निवार्ह कर लेती है।

बकरी के दूध की विशेषताएंः

बकरी के दूध में गाय के दूध से कम मात्रा में दुग्ध शर्करा पाई जाती है जिससे इसका उपयोग बच्चों व रोगियों के लिए विशेष रूप से लाभप्रद होता है। बकरी के दूध में वसा गोलिकाएं छोटी–छोटी होती हैं जिसके कारण यह दूध शीघ्र ही पच जाता है। बकरी के दूध में एक विशेष प्रकार की दुर्गन्ध आती है जो दूध दुहते समय बकरे के पास बंधे रहने के कारण होती है। बकरे की गर्दन की त्वचा में कुछ ऐसी ग्रन्थियॉ होती है जिससे कैप्रिक अम्ल निकलता है इस दुर्गन्ध को दूध सोख लेता है। अतः बकरी की दूध दुहते समय बकरी को बकरे से कम से कम 16 मी0 की दूरी पर बांधना चाहिए।

उत्पादन और उपयोगिता के आधर पर बकरियों को निम्न श्रेणी में वर्गीकृत किया गया हैः

उपयोगिता : मांस / खाल

नस्ल : ब्लैक बंगाल, गंजम, कच्छी, मालावाडी, सिरोही, ओस्मानाबादी, जालावादी, महसाना और कच्छी।

उपयोगिता :मांस / दूध

नस्ल : बीटल, बरबरी, जखराना, जमुनापारी और सूरती।

बकरी प्रजनन सम्बन्धी महत्वपूर्ण जानकारियाँ:

बकरियों में प्रौढ़ आयु करीब 10–12 माह में आती है, परन्तु इनका गर्भाधान 15–18 माह की आयु में करवाना उचित रहता है बड़े आकार की बकरियां प्रायः 12 से 15 माह में वयस्क होती है तथा 16–20 माह में प्रौढ़ता प्राप्त करती है। समूह में हमेशा शुद्व जाति का बकरा होना चाहिए। बकरे को प्रजनन के लिए 15 माह तक ही प्रयोग करना चाहिए। बकरी के गभर्काल की अवधि 140–150 दिन हाती है। ज्यादातर मादाएं सितम्बर एवं मार्च में गर्मी में आती है। बकरियां ज्यादातर वर्ष में दो बार जनवरी से अप्रैल एवं सितम्बर से नवम्बर में बच्चा देती है। बकरियों की प्रजनन आयु लगभग 10 वर्ष होती है परन्तु 3 से 5 वर्ष तक की अवधि में उनमें उत्पादन क्षमता अधिक रहती है। इसके उपरान्त उत्पादन क्षमता धीरे–धीरे कम होती जाती है। प्रत्येक बकरी पालक को यह कोशिश करनी चाहिये कि यह 6 वर्ष से अधिक की आयु की बकरियों को झुंड से निकाल कर विक्रय कर दें।

नर बकरे का चुनाव करते समय महत्वपूर्ण तथ्य:

बकरा सदैव समूह में सबसे भारी एवं चौडी छाती का होना चाहिए। शरीर स्वस्थ्य मजबूत टांगो के साथ उत्तेजक दिखने वाला होना चाहिए। किसी भी बीमारी से रहित होना चाहिए। प्रजनन क्षमता अधिक होनी चाहिए और वीर्य की गुणवत्ता और शुक्राणुओं की संख्या उत्तम होनी चाहिए तथा असामान्य शुक्राणु रहित होना चाहिए।

बकरियों की आवास व्यवस्था:

बकरियों के आवास हेतु अर्ध खुला वाड़ा पद्यति आदर्श व्यवस्था है तथा अर्ध शुष्क क्षेत्रों एवं मैदानी भागों के लिये उपयुक्त है। इस व्यवस्था में बकरियों के घर या शेड के साथ–साथ उसकी लम्बाई–चौड़ाई के अनुपात के बराबर खुली जगह साथ में जुड़ी रहती है। जिससे बकिरयॉ स्वेच्छा पूर्वक घूम सकती है। प्रत्येक बकरी के लिए लगभग एक वर्ग मीटर जगह की आवश्यकता होती है। यदि बकरियां कम हो तो इन्हें एक पंक्ति में बांधना चाहिए अधिक होने पर दोहरी पंक्ति में बांधना चाहिए। बकरियों के लिए चरही नांद की ऊंचाई 15 से. मी. और चौडाई 40 से.मी. होनी चाहिए। बाडे का फर्श भूमि से 15 से.मी. ऊॅचा हो और चरही से नाली तक 8 से. मी. का ढाल हो जिससे कि सारा मूत्र बहकर नाली मे चला जाए। फर्श साफ व सूखा होना चाहिए।

बकरियों की भोजन सम्बन्धी मुख्य बातें:

बकरियों के चारे की मात्रा निश्चित नहीं है परन्तु उन्हें इतना भोजन अवश्य मिलना चाहिए जितना कि एक बार में उस भोजन को समाप्त कर ले। बकरियों को अगर चारागाह में नहीं भेजा जाता तो उन्हें तीन

बार सुबह, दोपहर व शाम को चारा देना चाहिए।

बकरियों के लिये चारे दाने की आवश्यकता (प्रति पशु प्रतिदिन)

- 30–90 दिन : दाना–50–150 ग्राम — हरा चारा इच्छानुसार
- 3 से 6 माह : दाना–200–300 ग्राम — ,, ,,
- 6 से 12 माह : दाना–300–500 ग्राम — ,, ,,
- **वयस्क** : सूखी बकरी दाना–500 ग्राम –1 किग्रा. — ,, ,,
- बकरा, दूध वाली व गाभिन बकरी दानाः 1 से 1.5 किग्रा. — ,, ,,
- पशु को उसके शरीर भार का 4 प्रतिशत भार के बराबर ड्राई मैटर (सूखा तत्व) चारे दाने के रूप में उपलब्ध कराया जाना चाहिए।

बकरे–बकरियों के लिये सन्तुलित दाना मिश्रण बनाने की विधिः–

बकरे–बकरियों के लिये सन्तुलित दाना मिश्रण बनाने के उसमें 15 प्रतिशत तक पाच्य कच्ची प्रोटीन तथा 70–75 प्रतिशत तक कुल पाच्य पोषक तत्व उपस्थित रहना आवश्यक है। यह सन्तुलित मिश्रण निम्नलिखित घटकों के मिश्रण से तैयार किया जा सकता है।

क.सं.	अवयव	मात्रा (प्रतिशत में)
1.	मूँगफली या तिल की खली	25
2.	मक्का / बाजरा / ज्वार / जौ	25
3.	गेहूँ/धान की पालिष / चोकर	25
4.	दाल की चुनी	22
5.	खनिज मिश्रण	2
6.	नमक	1

एक औसत दुधारू बकरी को दिन में करीब 3.5–5.0 कि0ग्रा0 सूखा चारा अरहर, चना व मटर की सूखी पत्तियाँ या अन्य कोई दलहनी घास मिलनी चाहिए। गर्भवती बकरियों को अन्तिम 6–7 सप्ताह अच्छा आहार देना जरूरी है। इनको हरी पत्तियों के अलावा 1.0–1.5 किग्रा0 दाना देना चाहिए। इसके साथ कैल्शियम, फास्फोरस, नमक के मिश्रण को चाटने के लिए रखना चाहिए।

बकरी की प्रसूति के 4–5 दिन पहले 50 प्रतिशत दाना कम करके 1 किलो चोकर के साथ दलहनी चारा 1 कि0ग्रा0, हरा चारा 1 कि0ग्रा0, दाना मिश्रण 0.5 कि0ग्रा0 और सूखा चारा 1 कि0ग्रा0 देना चाहिए।

बकरियों को पानी की आवश्यकताः

बकरियों के आवास में पीने का साफ पानी हमेशा उपलब्ध होना चाहिए। एक बकरी को एक दिन में 6–8 लीटर तक पीने के साफ पानी की आवश्यकता होती है। गर्मी के मौसम में ज्यादा और जाडे के मौसम में कम पानी का उपयोग होता है।

बकरियों की प्रमुख बीमारियॉ एवं बचाव व उपचारः–

दुधारू बकरियों में बकरी प्लेग, बकरी चेचक, आंत्र विषाक्तता, खुरपका–मुँहपका, गलघोंटू, दुग्ध ज्वर एवं अफारा प्रमुख रोग हे। थनैला इनमें से अधिक हानिकारक है क्योंकि इसका इलाज न होने पर इससे प्रभावित आयन हमेशा के लिए खराब हो सकते हैं। यह छूत से फैलने वाला रोग है अतः इस रोग से प्रभावित बकरियों को झुंड से अलग करके उनका उपचार करना चाहिए।

बकरियों को विभिन्न रोगों से बचाव हेतु सावधानियांः–

टीकाकरण टीकाकरण का विवरण	प्रारम्भिक टीकाकरण		पुनः टीकाकरण
	प्रथम टीका	बूस्टर टीका	
1–खुरपका–मुंहपका (F.M.D.)	3 माह की आयु	आवष्यक नहीं	6 माह / प्रतिवर्ष
2–गलघोंटू/हिमोरेजिक सेप्टीमीया (H.S.)	3 माह की आयु	आवष्यक नहीं	प्रतिवर्ष
3–बकरी प्लेग (P.P.R.)	3 माह की आयु	आवष्यक नहीं	3 वर्ष पश्चात्
4–बकरी चेचक (Goat Pox)	3–5 महीने की आयु	प्रथम टीकाकरण के 1 माह के पश्चात्	प्रतिवर्ष '
5–आंत्र विषाक्तता/ इन्टेरोटाक्सीमिया (E.T.)	3 माह की आयु	प्रथम टीकाकरण के 3–4 सप्ताह के पश्चात् दूसरा टीका	6 माह / प्रतिवर्ष

1. दुधारू बकरियों को चरने के लिए छोड़ने से पहले उनके थनो पर साफ कपड़े की थैली बांध देनी चाहिए। इससे उन्हें चलने सें भी कठिनाई नहीं होगी तथा थनों पर चोट लगने की संभावना भी कम होगी।
2. समय—समय पर रोगों की जॉच करवा ली जानी चाहिए तथा संक्रामक रोगों से बकरियों को बचाने के लिए समय पर टीका लगवा दिया जाना चाहिए।
3. थनैला रोग से प्रभावित बकरी के अयन कड़े हो जाते हैं, तथा दूध शीघ्र फट जाता है। रोग की उग्र अवस्था में थनों से खून आ सकता है तथा बकरी को बुखार भी आ सकता है। इस रोग से प्रभावित बकरियों के थनों को लाल दवा (पोटैशियम परमैगनेट) के घोल से धोना चाहिए तथा आवश्यकता पड़ने पर बोरिक पावडर पानी में डालकर थनों को सेंक देना चाहिए। इस रोग के उपचार में पेटेन्टेड औशधियॉ जैसे पेन्ड्रीस्ट्रीन, नेफ्यूरांन, तथा आइरोमाइसिल काफी प्रथावशाली सिद्व हुई है। ये दवाएं दबने वाली (स्क्वीजिंग) ट्यूब के रूप में उपलब्ध है जिन्हें दूध निकालने के बाद थनों में चढ़ा देने पर पशु निरोग हो जाती है। इसके साथ—साथ इस रोग की रोकथाम हेतु थन पर लगी चोट का तुरन्त इलाज किया जाना चाहिए तथा बकरी को साफ सुथरी जगह पर बांधा जाना चाहिए।
4. दुधारू बकरियों को मानसून से पहले तथा बाद मे पेट के कीड़े मारने की दवा पशु चिकित्सक की सलाह से पिलानी चाहिए।
5. जाड़ों में जुएं तथा बरसात में चिंचड़ (टिप्स) के प्रकोप को कम करने के लिए बकरियों को 0.25 प्रतिशत कीटनाशी दवायुक्त घोल में नहलाया जाना चाहिए।

निष्कर्ष:

देश में बकरी उत्पादों एवं मांस की भारी मॉग को पूरा करने के लिए व्यवसायिक स्तर पर बकरी पालन अति आवश्यक है। दूध की भी बढती मांग को पूरा करने के लिए बकरी का दूध एक बेहतर विकल्प है क्योंकि इसके पालन में लागत कम लगती है और इसके दूध में उपलब्ध घटकों की गुणवत्ता और चिकित्सीय अनुप्रयोगों के कारण इसके दूध का उपयोग डेयरी खाघ पदार्थ बनाने में किया जाता है। विकसित तथा वैज्ञानिक तकनीकी से यदि बकरी पालन किया जाए तो यह आय का महव्वपूर्ण साधन हो सकता है। और यह लोगों को रोजगार के नये अवसर देने में भी सहायक है।

जैविक कृषि पर तीन दिवसीय प्रशिक्षण कार्यक्रम का शुभारंभ

मत्स्य पालन हेतु नए तालाब का निर्माण

प्रमोद कुमार[1], ए0के0 पान्डेय[2] एवं एस0के0 वर्मा[3]
वि0 व0 वि0 (मत्स्य)[1], वि0 व0 वि0 (कृषि अभि0)[2], वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष[3],
कृषि विज्ञान केन्द्र, पचपेड़वा, बलरामपुर

मीठे जल में मछली पालन के लिए तालाब एक उपयुक्त जल संसाधन है जिसे विभिन्न योजनाओं से अपने खर्च पर बनाया जा सकता है इसके लिए मत्स्य कृषकों को नए तालाब के निर्माण हेतु विभिन्न पहलुओं पर जानकारी होना आवश्यक है ताकि तालाब में अपेक्षित मात्रा में जल का भंडारण किया जा सके एवं सालों भर मछली पालन हेतु पानी उपलब्ध हो सके सामान्यतः तालाब निर्माण हेतु निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना आवश्यक है।

1. तालाब निर्माण हेतु ऐसी भूमि का चयन किया जाए जो प्राकृतिक रूप से गहरी हो ताकि आसपास के क्षेत्र का वर्षा जल संग्रहण करने में सुगमता हो।
2. भूमि की मिट्टी चिकनी दोमट लोम किस्म की हो।
3. तालाब तक पहुंचने का मार्ग सुगम हो।
4. मिट्टी ना ज्यादा अम्लीय हो ना ज्यादा क्षारीय हो।
5. तालाब समूह में बनाना अच्छा होता है।

तालाब के मिट्टी की पहचान

नए तालाब निर्माण के पहले मिट्टी की जांच आवश्यक है मिट्टी की जांच प्रयोगशाला में कराई जा सकती है साथ ही साथ मत्स्य कृषक अपने स्तर से भी मिट्टी की जांच कर सकते हैं जिसकी सरल विधि निम्नलिखित है।

1. जहां जहां तालाब बनाना है उस स्थान पर 3X3 फीट के क्षेत्र में 3 से 5 फीट का गढ्ढा बनाकर मिट्टी निकाले ।
2. उस मिट्टी को पानी में गीला कर 3 इंच व्यास का गोला बनाएं एवं 3 से 4 फीट तक हवा में उछालें। यदि गोला टूट जाए तो मिट्टी तालाब बनाने के लिए उपयुक्त नहीं है यदि गोला नहीं टूटे तो तालाब के लिए उपयुक्त है।
3. मिट्टी का गोला 3 इंच व्यास बनाकर उसे बेलनाकार घुमा कर 5 से 6 इंच तक लंबा करें यदि नहीं टूटे तो यह स्थान तालाब के लिए उपयुक्त है।

तालाब का आकार–प्रकार

1. साधारणतः आयताकार तालाब ज्यादा उपयुक्त माना जाता है लंबाई एवं चौड़ाई का अनुपात एक : दो से तीन होना ज्यादा उपयुक्त माना जाता है।
2. उपलब्ध जमीन का 70 से 75 प्रतिशत भाग तालाब के निर्माण हेतु अर्थात जल क्षेत्र के रूप में विकसित किया जा सकता है शेष 25 से 30प्रतिशत तालाब के बांध में चला जाता है अर्थात एक एकड़ के तालाब के निर्माण हेतु लगभग 1.35 से 1.40 एकड़ जमीन की आवश्यकता होती है।

3. तालाब की लंबाई पूरब से पश्चिम दिशा में रखा जाना बेहतर है इस प्रकार के तालाब में हवा के बहाव के कारण जल में अधिक हलचल होती है फलस्वरूप घुलित ऑक्सीजन की मात्रा अधिक रहती है।
4. तालाब की औसत गहराई उतनी होनी चाहिए जहां सूर्य की रोशनी तालाब की तली तक पहुंच सके जहां पानी का साधन हो वहां तालाब की गहराई से 4 से 6 फीट रखी जा सकती है यदि तालाब वर्षा पर आधारित हो तो वहां तालाब की गहराई 8 से 10 फीट तक रखी जा सकती है।

तालाब की संरचना

1. तालाब के जल क्षेत्र की मापी के बाद चारों तरफ 5 से 7 फीट जमीन वर्ग के रूप में छोड़कर बांध बनाया जाए जिससे बाद की मिट्टी को क्षरण होकर तालाब में जाने से रोका जा सके।
2. तालाब की खड़ी खुदाई नहीं करनी चाहिए तालाब का किनारा धारदार होना चाहिए तालाब का ढलान 1:1.5 या 1:2 ऊंचाई आधार रखा जाना चाहिए।

तालाब का बांध निर्माण

बांध इतना मजबूत होना चाहिए कि वह पानी के दबाव को सह सके तथा तालाब से पानी के रिसाव को भी रोक सके बांध निर्माण हेतु निम्नलिखित बातें आवश्यक है।

1. पेड़ पौधों को जड़ सहित हटा दें।
2. तालाब निर्माण प्रारंभ करने के पूर्व भूमि की उस जगह जहां मिट्टी की खुदाई होती है वर्ग का स्थान एवं बांध का निर्माण स्थल को चिन्हित कर लेना आवश्यक है बांध तैयार करने हेतु चयनित स्थल से घास, जंगली पौधों को हटाकर ट्रैक्टर या हल से जुताई करने के बाद ही वहां पर मिट्टी डालने का काम किया जाए। इससे बांध मजबूत बनेगा और उसे पानी के रिसाव की संभावना नहीं रहेगी।
3. जिस तरफ पानी का रिसाव हो उधर का बांध ज्यादा चौड़ा एवं मजबूत बनाना चाहिए।
4. बांध पर तह दर मिट्टी डालनी चाहिए तथा उसे दबाते रहना चाहिए।
5. शिखर की चौड़ाई के अनुरूप बांध के दोनों ओर ध्यान रखना आवश्यक है यदि बांध की ऊंचाई 4 से 5 फीट हो तो शिखर की चौड़ाई भी कम से कम चार से पांच फीट रखनी चाहिए तथा अंदर का ढलान 1:1.5 रखना चाहिए यदि बांध पर वाहन भी चलना है तो शिखर की चौड़ाई 8 से 10 फीट रखी जा सकती है।
6. तालाब से पानी का रिसाव रोकने के लिए बांध के अंदर चिकनी मिट्टी की परत भित्ती का निर्माण किया जा सकता है।

पानी का प्रवेश तथा निकास द्वार

पानी प्रवेश द्वार रचना की आवश्यकता तालाब में पानी के बहाव को नियंत्रित करने के लिए होती है एवं इसके माध्यम से तालाब में पानी भरा जा सकता है इसे बांध के आधार के समकक्ष ऊंचाई पर ही बनाना चाहिए जिस प्रकार प्राकृतिक ढलान को उधर पानी का निकास द्वार बनाना चाहिए निकास द्वार का निर्माण तालाब से जल निकासी की आवश्यकता को देखते हुए प्रवेश द्वार के नीचे के स्तर में बनाना चाहिए।

तालाब संरचना की देख रेख

तालाब की देखरेख करते रहना चाहिए एवं समय–समय पर बांध की मरम्मत करते रहना चाहिए चूहे आदि के द्वारा बनाए गए बिल को बंद करते रहना चाहिए कॉमन कार्प मछली के कारण बांध क्षतिग्रस्त हो जाता है ऐसी स्थिति में मरम्मत की आवश्यकता है बांधों पर दूब, घास लगाने से क्षति रोका जा सकता है।

बीज उपचार क्यों और कैसे

सुनील कुमार एवं डॉ. वी.पी. शाही
वि.व.वि. (बीज प्रौद्योगिकी), वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष
कृषि विज्ञान केंद्र बहराइच प्रथम,
आचार्य नरेंद्रदेव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या, (उ0प्र0)

फसल उत्पादन के लिए बीज एक महत्वपूर्ण अंग है किसानों का 10 से 15 प्रतिशत भाग अकेले बीज पर ही खर्च होता है सामान्यता फसलों के सभी रोग बीज, मिट्टी व हवा के माध्यम से फैलते हैं फसलों को बीज जनित, मृदा जनित, व वायुजनित रोगों से बचाने हेतु बीजों को रासायनिक तत्वों व जैव रसायनों आदि से उपचारित करना आवश्यक होता है बीज उपचार करने से बीच में उपस्थित आंतरिकव बाहरी परत के रोग व कीट नष्ट हो जाते हैं जिससे बीजों का स्वस्थ व अधिक अंकुरण प्राप्त होने के साथ–साथ फसल उत्पादन में भी 10 से 15 प्रतिशत की वृद्धि मिलती है इन जैविक रासायनिक पदार्थों से बीजों को उपचारित करना ही बीज उपचार कहलाता है किसान भाइयों गुणवत्ता युक्त व अधिक फसल उत्पादन प्राप्त करने के लिए नितांत आवश्यक है की हमेशा उन्नतशील और रोग व कीट प्रतिरोधी किस्मों के स्वच्छ स्वास्थ्य और प्रमाणित बीजों से ही बुवाई करें। बीज उपचार को फसल उत्पादन की प्रक्रिया में प्रथम श्रणे ाी में रखा जाना बहुत ही आवश्यक है। बीज क्या है। बीज एक परिपक्व बीजाण्ड जो निषेचन के बाद क्रियाशील होता है बीज उचित परिस्थितियां या जैसे जल, वायु, सूर्य, प्रकाश आदि मिलने पर क्रियाशील होता है बीज कहलाता है।

बीज उपचार क्या होता है

अधिक उत्पादन व गुणवत्ता युक्त फसल उत्पादन प्राप्त करने के लिये बीज को निरागे एवं स्वस्थ बनाने के लिये बीज को रसायन जैव रसायन एवं कल्चर से उपचारित करना चाहिए उपचारित करने की यही सब प्रक्रियायें बीज उपचार कहलाती है बीज उपचार की आवश्यकता क्यों बीजों को प्रारम्भ से ही बीज जनित रागे व कीटों के प्रभाव को कम या रोकने हेतु बीजों को उपचारितकरना आवश्यक होता है क्योंकि ये रोगों व कीटों से होने वाले नुकसान को कम करता है बीजो को उपचारित न करने पर पौधों की वृद्धि के समय रोगों व कीटों से बचाने के लिए किसानों को अधिक धन की आवश्यकता पडती है।

बीजों को उपचारित करने की बिधियां 1. ड्रम विधि– से बीजों को उपचारित करने के लिए ड्रम में दवा व बीजों की निर्धारित मात्रा डालकर 5 से 10 मिनट तक घुमाया जाता है अथवा जबतक दवा बीजों में मिल न जाए ड्रम विधि में एक बार में 25–30 किलोग्राम बीज उपचारित किया जा सकता है।

ड्रम विधि से बीज उपचार

2. घड़ा विधि द्वारा – घड़ा विधि बीज उपचार की एक प्राचीनतम विधि है इस विधि में बीजों व दवा की निर्धारित मात्रा डालकर घड़े का मुहं पॉलीथिन से बदं कर 10 मिनट तक अच्छी तरहसे मिलाया जाता है कुछ देर बाद घड़े का मुंह खोलकर बीजों को अलग रखते हैं।

घड़ा विधि द्वारा बीज उपचार

3. भीगे बीज उपचार विधि– पॉलीथिन चादर या पक्की फर्श पर बीजों को फैला दें उसके बाद हल्का पानी का छिड़काव करें रसायन या जैव रसायन की अनुशंसित मात्रा बीज के ढेर पर डाल कर उसे अच्छी तरह

मिलाकर सुखा लें। अनुपचारित गेहूँ का बीज कार्बोक्सिन एवं थिरम 2.5ग्राम/ किलाग्रोम

4. स्लरी बीज उपचार– इस विधि में स्लरी (घोल) बनाने हेतु रसायन या जैव रसायन की अनुशंसित मात्रा को 10 लीटर पानी की मात्रा में किसी बर्तन में अच्छी तरह मिला लें इस घोल में बीज/कंद/पौधे की जड़ों को। 10 से 15 मिनट तक डालकर रखे फिर छाया में सुखा लें।

किसान भाई बीज उपचार कैसे करें–

1 जैव रसायन द्वारा–

- ट्राइकोडर्मा 5 ग्राम / किलोग्राम बीज
- स्यूडोमोनस – 4.0–5.0 ग्राम/ किलोग्राम बीज।

2 रसायन द्वारा–

- कार्बंडोजिम़ + मैनकोज़ेब 2 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज।
- कैप्टान या थीरम 2.5 ग्राम किलोग्राम बीज। कीट नियंत्रण हतेु।

3 कीट नियंत्रण हेतु–

- क्लोरोपायरीफास 5.0 मिलीलीटर/किलोग्राम बीज।
- मोनाक्रोटोफॉस 5.0मिलीलीटर/ किलोग्राम बीज।

4 पोषक तत्व स्तरीकरण हेतु–

अ. नत्रजन स्तरीकरण हेतु–

- राइजोबियम, एजोटोबेक्टर एवं एजास्पाइरलिस 250 ग्राम /10–12 किलोग्राम बीज।

ब. फास्फोरस बिलियन हेतु–

- पी एस बी फास्फो बैक्टीरिया 250 ग्राम /12 किलोग्राम।

स. पोटाश स्थरीकरण हेतु–

- पोटाशिक जीवाणु 250 ग्राम/10–12 किलोग्राम।

5. प्राकृतिक विधि से बीज उपचार

प्राकृतिक विधि द्वारा बीजों को उपचारित करने के लिए बीजामृत तैयार करके बीजों को उपचारित किया जाता है 100 किलोग्राम बीज के लिए 5 किलोग्राम देसी गाय का गोबर 5 किलोग्राम देसी गाय का मूत्र ढाई सौ ग्राम कली चूना 20 लीटर पानी व खेत की मिट्टी मुट्ठी भर लेकर इन सभी सामग्रियों को 24 घंटे एक साथ पानी में डालकर रखें दिन में दो बार लकड़ी से चलायें बाद में बीज पर बनाए हुऐ बीजामृत का छिड़काव करें। बीजों को छिडक़ाव के बाद छाया में सुखाएं इसके बाद बीज की बुवाई करें जिससे बीजों को रोग मुक्त व अधिक अंकुरण प्राप्त किया जा सकता है।

प्राकृतिक विधि से बीज उपचार

बीजों का उपचार :–

- बाहय रागों से बचाव के लिये बीजों का उपचार
- सूखा बीज उपचार का प्रयागे बीजों को बाहय रोगों से बचानें के लिये प्रयोग किया जाता है जिसमें प्रमुख रूप से कैप्टान थीरम एग्रोसन जी एन वीटावैक्स आदि का प्रयोग किया जाता है ।
- आन्तरिक रोगों से बचाव के लिए बीजों का उपचार ।
- बीजों को आन्तरिक रोगों से बचाने के लिए सूखे फफूंदी जनकों का भी प्रयागे किया जाता है बीजों के जमाव के दौरान बीज फफूंदीजनक को अबशोषित करके रोगों को निष्क्रीय कर देते हैं।

वीटावैक्स आदि के प्रयोग से गेंहू की फसल में लूज स्मट रोग से बचाया जा सकता है ।

- **गर्म पानी से उपचार**– ये विधि गेहूं के लूज स्मट रोग में प्रयोग की जाती है इस विधि मे पानी को 52 डिग्री सेंटीग्रेट तापमान तक गर्म करके बीजों को डुबोकर 10 मिनट तक डुबोकर बीज को उपचारित करते हैं।
- **सौर ताप उपचार** – ये विधि भी गेहूं के लूज स्मट रोग मे प्रयोग की जाती है इस विधि में बीज को सुवह चार घण्टे के लिये पानी में भिगोकर धपू मे सूखने के लिये पतली पर्त मे फैला दिया जाता है।

बीज उपचार करते समय सावधानियाँ :–

- बीजों को उपचारित करने के लिए खरीदे गए नए रसायन की अंतिम दिनांक देख लेना चाहिए ।

बीजों को उपचारित करने के बाद छायादार स्थान पर ही सुखाना चाहिए।

- बीजों को उपचारित करने हेतु रोगों के अनुसार ही रसायनिक व जैविक पदार्थें का प्रयोग करें।
- बीजों को उपचारित करने के बाद तुरन्त बोना चाहिए।
- यदि बोने के बाद उपचारित बीज की मात्रा बच जाए तो उसे ना तो जानवर को खिलाना चाहिए न ही खुद खाना चाहिए।
- दबा के खाली डिब्बे या पैकेट को तुरन्त नष्ट कर देना चाहिए।

बीज उपचार करने के लाभ

- बीज उपचार की प्रक्रिया अपनाने से किसान अपनी फसल को बीज व मृदा जनित रोगा ें से बचा सकते हैं।
- बीज उपचार करने से पैदावार में वृद्धि होती है।
- बीजों को उपचारित करने से किसानों को अच्छा व गुणवत्ता युक्त बेहतर फसल उत्पादन प्राप्त होता है।
- बीज उपचार करने से अच्छा बीजों का अच्छा अंकुरण होता है।

निष्कर्ष :–

- बीज उपचार एक कम लागत तकनीक है।
- किसान भाई इसे आसानी से अपना सकते हैं।
- बीजों को उपचारित करके बोने के उपरान्त फसल में सुरक्षा के अन्य उपायों की कम आवश्यकता पड़ती है।
- किसानों को फसल में 12–15 प्रतिशत की वृद्धि प्राप्त होती है।

भारतीय समाज में ग्रामीण महिला भाक्तिकरण में शिक्षा का योगदान

साधना त्रिपाठी
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, शिक्षक, शिक्षा विभाग
नेहरू ग्राम भारती विश्वविद्यालय, प्रयागराज, (उ0प्र0)

'सारांश'

सम्पूर्ण विश्व की आधी आबादी महिलाओं की है। किसी भी समाज अथवा राश्ट्र की समृद्धि देखनी है तो वहॉ की महिलाओं की स्थिति को देखकर पता किया जा सकता है कि वह राश्ट्र तथा व समाज कितना शसक्त अथवा समृद्धशाली होगा। भारत की अधिकांश लगभग 75 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामों में निवास करती है और महिला उस समाज का आइना होती है। यदि वह साक्षर व शिक्षित है तो उस समाज का उत्थान और प्रगति के पथ पर लेकर जायेगी और शिक्षित तथा साक्षर महिला ही एक मात्र ऐसा उपाय है कि समाज तथा राश्ट्र के उत्थान में अपना अभूतपूर्व योगदान दे सकती है। आज के इस आधुनिक समाज का सबसे बडा मुद्दा है किसी भी नारी को साक्षर व शसक्त बनाना और जो शिक्षा के बिना सम्भव नहीं है और यह विशेश कर ग्रामीण परिवेश में तो कदापि सम्भव नहीं है। क्योंकि यदि एक पुरूश साक्षर है तो वह मात्र एक व्यक्ति साक्षर हुआ परन्तु यदि एक स्त्री साक्षर है तो वह सम्पूर्ण परिवार के साथ ही साथ सम्पूर्ण समाज को साक्षर व शक्तिशाली बनाने में अपना बहुत बडा योगदान करती है। इसलिए एक महिला विशेशकर एक ग्रामीण महिला को साक्षर दर्शित बनाना परिवेश की अति आवश्यक है।

आज के इस भारतीय परम्परागत समाज में जहॉ नारी को द्वितीय स्थान पर सदैव रखा गया इस पुरूश प्रधान समाज में नारी को सदैव संघर्श करना पडा। अतः आज के इस आधुनिक युग में महिला सशक्तिकरण कोई नई बात नहीं है क्योंकि वह सदियों से होता आया है कि समाज में महिलाए एक लम्बे समय से असमानता का सामना करती आ रही है और भारतीय समाज में महिलाओं को सदैव से दूसरे दर्जे का माना जाता रहा है। इनका कुछ भी स्वयं से करने का अधिकार नहीं था। परिवार तथा समाज में वे एक आश्रित से ज्यादा और कुछ नहीं थी। भारत के संविधान में उल्लिखित समानता के अधिकार को पूर्ण रूप से सुनिश्चित करने के लिए एक महिला को सशक्त बनाना सबसे ज्यादा जा रही है और शसक्त बनाने का सबसे बडा हथियार यदि कोई है तो वह है शिक्षा।

यह जरूरी है कि महिला शारीरिक, मानसिक और सामाजिक रूप से मजबूत है। अतः शिक्षा ही एक ऐसा हथियार है जो उसे शसक्त व मजबूती प्रदान कर सकती है और यह एक स्वयं परिवार तथा समाज के लिए अति आवश्यक है और इस सपने को सच करने के लिए अनेक बालिका तथा समाज की प्रत्येक नारी को शिक्षित करना अति आवश्यक है।

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार– किसी भी समाज में महिलाओं की स्थिति में परिवर्तन लाने के लिए उनकी स्थिति में सुधार लाए बिना विश्व राश्ट्र व समाज का कल्याण नहीं हो सकता है। अतः एक बार जब महिला शिक्षिक होकर अपना कदम राश्ट्र समाज व परिवार की तरक्की के लिए उठाती है तो परिवार आगे बढता है।

एक गॉव आगे बढता है और सम्पूर्ण राष्ट्र विकास की ओर बढता है। हमारे उपनिशदों में भी स्त्री ज्ञान को स्त्री शिक्षा को महत्व प्रदान किया गया है। मूल रूप से यदि देखा जाये तो एक महिला स्वभाव से मेहनती व्यवहार कुशल मेहनती व ईमानदार होती है। अतः शिक्षा एक ऐसा हथियार है कि जिसकी सहायता से कोई भी व्यक्ति अपनी बडी से बडी लडाई स्वयं लड़ सकता है बिना किसी की सहायता के। शिक्षा ने निःसन्देह स्त्री को समाज में एक स्थिति प्रदान की है और उसे शसक्त बनाया है परन्तु सशक्तिकरण का कार्य यह नहीं है कि आर्थिक आजादी व मात्र दौलत कमाना अपितु स्वयं निर्णय लेने का अधिकार से है। इसी प्रकार ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करने वाली महिलाओं के पास शिक्षा के साथ–साथ ज्ञान कौशल नई नई तकनीकियों के प्रयोग का हुनर भी बखूबी आती है। अतः राश्ट्र के प्रथम प्रधानमंत्री पं0 जवाहर लाल नेहरू स्त्रियों की स्थिति देखकर यह कहा था कि– ''उस देश की स्थिति या प्रतिश्ठा को बताया जा सकता है।''

वहीं भारत के राश्ट्रपति डा0 ए0पी0जे0 अब्दुल कलाम ने कहा है कि– ''महिला सशक्तिकरण एक अच्छे राश्ट्र निर्माण की आधार शिला है।'' जब महिला सशक्त होगी तो समाज का ज्यादा विकास सुनिश्चित है क्योंकि एक सशक्त महिला ही अच्छे परिवार अच्छे समाज और सन्देह रूप से एक अच्छे राश्ट्र का निर्माण भी कर सकती है।

इन सभी से यह प्रतीत होता है कि एक महिला न केवल अपने घर को सम्भाल सकती है अपितु कार्य क्षेत्र में समाज के उत्थान में अपनी भागीदारी प्रस्तुत करती है। आज समाज का एक बहुत बडी संख्या चाहे वह उच्च अथवा चाहे निम्न वर्ग की महिलाओं का है जो शिक्षित हैं। विभिन्न प्रकार की व्यवसायों का अध्ययन करके समाज में अपनी एक नई जगह बनाई है। आज समाज का कोई भी ऐसा कोना नहीं शेश बचा है जहॉ महिलाओं ने स्वयं को पहुॅचाया न हो और अपने कार्य कौशल को साबित न किया हो और स्वयं को व्यवसायी के रूप में समाज में एक काम–काजी नारी के रूप में स्थापित किया है। जिसके कारण आज समाज तथा परिवार में नारी की स्थिति एक सहयोगी के रूप में स्थापित हुई है। इस प्रकार शिक्षा के माध्यम से एक नारी के स्थान तथा उसके व्यक्तित्व विकास में भी समाज की तमाम रूढी मान्यताओं में परिवर्तन आया है और भारतीय समाज में महिलाओं को एक बताकर एक राश्ट्र भी प्रतीत हो रहा है। एक महिला का जीविका कार्य उसके व्यक्तित्व विकास के लिए भी उतना ही आवश्यक है जितना राश्ट्र समाज तथा परिवार के लिए आवश्यक होता है। वर्तमान परिवेश में यद्यपि आर्थिक दबावों के कारण महिला रोजगार का सामाजिक स्वीकृति तो प्राप्त हुई है परन्तु औपचारिक बातचीत तथा साक्षात्कार से यह दिखाई पडता है कि एक कार्यशील महिला के दायित्वों में किसी भी प्रकार की कोई कमी नहीं आई है। इसका मात्र शिक्षा के द्वारा ही परिवर्तित किया जा सकता है और महिला की सम्मान और समृद्ध तथा मजबूत समाज की द्योतक होती हैं। प्राचीनकाल से ही महिलाओं की स्थिति सम्मानजनक थी परन्तु आज की ग्रामीण महिलाओं की स्थिति अति संतोशजनक नहीं हो पायी है जितना होनी चाहिए जिसके भी अनेक कारण है जैसे– शिक्षा, राजनीति, आर्थिक भागीदारी इत्यादि। परन्तु प्रसिद्ध साहित्यकार महादेवी वर्मा की कुछ पंक्तिया भारतीय समाज में स्त्री की स्थिति व उसकी व्यथा को बताने के लिए लाभदायी है। एक स्त्री में ज्ञान, विवेक, प्रतिभा इत्यादि से जूझने की ताकत तो बडी है वह सशक्त तो हुई है परन्तु सामाजिक अवरोध अभी भी कमी है। पुरूश प्रधान समाज में स्त्री प्राचीन काल से आज के इस वर्तमान समाज के बीच कई प्रतिभागों में टक्कर ले रही है और स्वयं को तीव्रगति से आगे बढा रही है। सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक, सांस्कृतिक रूप से पुरूशों से कंधा से कंधा मिलाते हुए स्वयं को सामाजिक रूप

से मजबूत बना रही है। ग्रामीण क्षेत्रों में भी कृशि, पशुपालन, स्वरोजगार जैसे अनेक व्यवसायों में नारी की भूमिका पूर्व से कही अधिक मजबूत हुई है। शिक्षा के साथ–साथ समाज में मान–सम्मन तथा आर्थिक अधिकारों के प्राप्त होने के पश्चात नारी और भी ताकतवर व मजबूत बनकर सामाजिक संरचना का निर्माण करने में अपना महत्वपूर्ण सहयोग प्रदान कर रही है। अतः शिक्षा और शिक्षिक नारी ग्रामीण भारतीय समाज तथा राश्ट्र के विकास के लिए अति महत्वपूर्ण है। अतः ग्रामीण महिला सशक्तिकरण के लिए शिक्षा क्षेत्र में भी बहुत से कदम उठाने शेश हैं। ताकि एक सशक्त तथा शिक्षित महिला की भागीदारी ग्रामीण समाज एवं देश के संतुलित विकास के लिए अपनी सक्रिय सहभागिता प्रदान कर सके।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

(1) पाठक पी0डी0 ''भारत में शिक्षा का विकास एवं समस्याएँ''

(2) त्यागी, गुरूदास (2010) ''भारत में शिक्षा का विकास'' (अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा)

(3) गौतम हरेन्द्रराज, ''महिला अधिकार संरक्षण'', कुरूक्षेत्र मार्च 2006

(4) अल्टेकर ए0एस0, (1975) ''प्राचीन भारत में शिक्षा'', वाराणसी मनोहर प्रकाशन

(5) मुतालिक स्वाति, (1991) ''स्त्री शिक्षा तथा स्त्रियों की सामाजिक जागरूकता का अध्ययन'', एम0फिल0 एजूकेशन न्यू पूना यूनिवर्सिटी।

(6) पटेल, अमृत, ''महिला सशक्तिकरण में सामाजिक सुरक्षा एवं शिक्षा का प्रभाव'' शोध संक्षिप्तिका सितम्बर, 2009

जैविक खेती पर तीन दिवसीय प्रशिक्षण कार्यक्रम का समापन

प्रयागराज। सोसायटी आफ बायोलॉजिकल साइंसेज एंड रूलर डेवलपमेंट में चल रहे तीन दिवसीय प्रशिक्षण कार्यक्रम का समापन आज हो गया। समापन कार्यक्रम में सभी का स्वागत डॉक्टर विनी जॉन ने किया।

समापन कार्यक्रम की मुख्य वक्ता डॉ हेमलता पंत सचिव एस बी एस आर डी प्रयागराज ने जैव उर्वरक एवं जैव कीटनाशक की महत्ता पर अपना व्याख्यान देते हुए बताया कि जैव उर्वरक मुख्यतः सूक्ष्म जीवों जैसे जीवाणु ,फफूंद फर्न एवं शैवाल के उत्पाद है, जो मृदा में पोषक तत्वों की उपलब्धता को बढ़ाने हेतु प्रयोग किए जाते है। डॉक्टर पंत ने राइजोबियम, एजोटोबैक्टर, नील हरित शैवाल, एजोला, बैसिलस एवम् वाम फफूंद पर विस्तृत चर्चा की। जैव कीटनाशियों में ट्राइकोडर्मा , ब्यूवेरिया

बैसियाना , ट्राइकोकार्ड, एन पी वी आदि पर प्रकाश डाला।

डॉ पंत ने कहा कि जैव उर्वरक रासायनिक उर्वरक के पूरक व सस्ते होते है। मृदा की उर्वरा शक्ति को बढ़ाते के साथ पर्यावरण को भी हानि नहीं पहुंचाते है। इसी प्रकार केवल लक्ष्य को ही मारते हैं, मित्र कीटो को इनसे कोई हानि नहीं होती है। जैव उर्वरक के प्रयोग से उत्पादों का रंग, स्वाद, चमक बढ़ जाती है। समापन कार्यक्रम के दूसरे वक्ता डॉक्टर अमित कुमार मौर्य असिस्टेंट प्रोफेसर पादप रोग , विज्ञान विभाग घनश्याम उर्मिला पी जी कॉलेज फूलपुर ने मशरूम उत्पादन के बारे में बची हुई खाद जिसे स्पेंट कंपोस्ट कहा जाता है उसे पर प्रकाश डाला। डॉ मौर्या के अनुसार स्पेंट कंपोस्ट का प्रयोग सभी में कर सकते है। यह पोषकीय गुणों से भरपूर जैविक खाद है।

कार्यक्रम में डॉ मनोज कुमार सिंह ,डॉक्टर देवेंद्र स्वरूप ,डॉक्टर ज्योति वर्मा डॉक्टर विजय रंजन चौधरी डॉक्टर, डॉ मधुमिता, डॉ पाखी राय सहित 50 प्रशिक्षणार्थी उपस्थित रहे। कार्यक्रम का संचालन डॉ डाक्रम जेम्स सिंह तथा धन्यवाद ज्ञापन डॉ विनी जॉन ने किया। अंत में सभी प्रशिक्षणार्थियों की परीक्षा कराई गई।

पपीता में रोग–व्याधि प्रबंधन

प्रदीप कुमार, प्रवीण कुमार मौर्य, राम गोपाल, विद्या सागर एवं राम जीत
कृषि विज्ञान केन्द्र, पांती, अम्बेडकर नगर

पपीता फल की व्यवसायिक खेती पूर्वी उत्तर प्रदेश के समस्त जनपदों में कम लोकप्रिय होने के अनेक कारण है जो उपज व फल गुणवत्ता को प्रभावित करते हैं। जैसे अनुकूल वातावरण, मृदा प्रबंधन, उन्नत प्रजाति का चयन, गुणवत्तायुक्त बीज व पौधशाला में पौध उत्पादन, रोपाई का समय, उचित रोपण दूरी, पर्याप्त फसल पोशण, सिंचाई व जल निकास प्रबंधन, खरपतवार तथा हानिकारक कीट नियन्त्रण के अतिरिक्त अनेक रोग–व्याधि प्रबन्ध आदि। पपीता फलोत्पादक भलीभांति अवगत हों कि पपीता पौधों में रोग–व्याधि से फलोत्पादन व फल गुणवत्ता में कमी के साथ ही आर्थिक क्षति भी संभावित होती है। अतः पौध एवं पादप स्वास्थ्य प्रबंध की अवधारणा को अपनाना चाहिए। साथ ही, अधिकतम फलोत्पादन में बाधक प्रक्रियाओं जैसे पर–परागण का अभाव व जनन क्रिया में कमी, असमान पुश्पन व फलन, पौधों में जल–तनाव अर्थात अत्यधिक सूखा या या नमी, नर–मादा पुश्प अनुपात असंतुलन अथवा पराग कीटों का अभाव । कभी–कभी छोटे फलों की अत्यधिक संख्या होने पर छंटाई/तुड़ाई के अभाव में उपज व फल गुणवत्ता प्रभावित होते हैं। यह वैज्ञानिक सिद्ध हे चुका है कि पपीता फलोत्पादन में मधुमक्खी पालन से पर–परागण द्वारा अधिक फलत संभावित होती है।

पौधशाला में आर्द्र–गलन रोगः अधिक नमी की उपस्थिति में मुख्यतः कवक वृद्धि के कारण बीज अंकुरण न होना अथवा अंकुरण के पश्चात भूमिगत बीजांकुर का सड़ना तथा पौध गलन होना रोग के विशेश लक्षण हैं। वास्तव में, भूमि की सतह पर या तना के आधार पर कबक–वृद्धि से अंकुरित व विकसित हो रही पौध आर्द्रगलन रोग संक्रमित होने पर अचानक गिरना और तेजी से गलकर नश्ट होना ही प्रमुख समस्या है। पौध का तना जो भूमि के निकटस्थ रहता है, जलीय व नरम मृदु हो जाता है और मकजोर पौध मुड़कर गिर जाती है। रोग संक्रमण सघन पौध में सूर्य प्रकाश के अभाव के कारण अधिक तीव्र होता है।

रोगकारकः कवक– पिथियम डेबैरियनम, फाइटोफ्थोरा पैरासिटिका, राइजोक्टोनिया सोलेनाई

रोग नियन्त्रण के उपायः

1. यह मृदोढ़ रोग है अतः भूमि शोधन के अन्तर्गत मृतोपजीबी कबक ट्राइकोडर्मा विरडे अथवा ट्राइकोडर्मा हरजियेनम @ 8–10 कि0ग्रा0 प्रति हेक्टेयर की दर 100 किग्रा0 जैविक खाद के साथ नम मृदा में प्रयोग करें।
2. बीज उपचार के अन्तर्गत कार्वेण्डाजिम–50 अथवा बीटावैक्स पावर–75 कार्वोक्सिन 37.5% + थीरम 37.5% @ 2 ग्राम प्रति किग्रा0 बीज की दर से बीज लेपन करें।
3. पौधशाला में उपचारित बीज को उचित दूरी पर बोये ताकि अंकुरित बीज व स्वस्थ पौध में पर्याप्त वायु संचार और सूर्य प्रकाश से प्रकाश संश्लेशण सुनिश्चित हो।
4. खड़ी पौध पर कॉपर आक्सीक्लोराइड–50 WP @ 3 ग्राम प्रति लीटर पानी अथवा रिडोमिल एमजेड 72 WP (मेटालाक्जिल 8 % + मैनकोजेव 64 %) @ 2 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से

आवश्यकतानुसार छिड़काव करें । अच्छे परिणाम हेतु तैयार घोल में स्टिकर / शैम्पू मिलायें।

तना व जड़ सड़न रोगः वर्शा ऋतु (जुलाई–सितम्बर) के दौरान नमी की अधिकता में पपीता पौधे के तना तना के निचले भाग पर जलीय धब्बे बनकर तना के चारों ओर मेखला बना देते हैं। परिणामस्वरुप रोगग्रस्त पौधे की पत्तियां पीली पड़कर मुरझा जाती हैं और समय से पहले ही गिर जाती हैं। रोगी पौधों पर फूल–फल नही लगते बल्कि उपलब्ध फल लग भी जायें तो पकने से पहले ही गिर जाते हैं। प्रायः तना के आधार पर मृदूतक का विघटन / गलन हो जाता है जिससे संपूर्ण पौधा आधार से टूटकर गिर जाता है। ऐसे रोगग्रस्त पौधे बाद में मर जाते है। सामान्यतः यह रोग 2–3 वर्श के पुराने पौधों (पेड़ी) में अध्कि सक्रिय होता है। कभी–कभी व्यस्क पौधे संक्रमण के बाद जल्दी नही मरते बल्कि कुछ समय तक जीवित रह सकते हैं।

रोगकारकः कवक– पिथियम अफैनीडेरमेटम, फाइटोफ्थोरा पैरासिटिका, राइजोक्टोनिया सोलेनाई

रोग नियंत्रण के उपाय :

1. पौधशाला में पौध तथा मुख्य खेत में पौधों को अधिक नमी से बचायें।
2. भूमि शोधन अपनायें अर्थात नीम की खली @ 100 किग्रा प्रति हेक्टेयर पौध रोपण के समय मृदा में मिलाएं।
3. रोगग्रस्त पौधों के जड़ क्षेत्र में सर्वांगी कबकनाशी जैसे – कार्वेण्डाजिम–50 WP अथवा कैपटान–70 WP @ 2 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से प्रयोग करें ।

पत्ती धब्बा (पर्ण चित्ती) रोगः पुरानी पत्तियों पर गोल, लम्बे या असीमित, अण्डाकार धब्बे बनते हैं जिनका मध्य भाग राख रंग का तथा बाहरी परिधि पीली या भूरी होती है। यह पीलापन स्वस्थ उतकों के हरे रंग से मिला–जुला मालूम पड़ता है। बाद में, धब्बों का मध्य भाग फट जाता है और अनेक धब्बे बन जाने से रोगी पत्तियां सूखकर गिर जाती हैं। यह रोग वर्शा ऋतु (अगस्त–सितम्बर) के दौरान अधिक नमी वाले वातावरण में अधिक आक्रान्त होता है।

रोग कारकः कवक– फाइलोस्टिकटा कैरिका उपजाति पपायी

रोग नियन्त्रण के उपायः

1. रोग कारक फसल–अवशेश पर उत्तरजीवी रहता है जो हवा या वर्शा की बूदों द्वारा तथा कीटों के माध्यम से स्पर्श द्वारा पहुंचाता है अतः रोगी फसल अवशेश नश्ट कर दें।
2. खड़ी फसल में रोग आने पर क्रमशः अगस्त, सितम्बर व अक्टूबर में कोई एक कबकनाशी छिड़काव प्रति माह करना चाहिए अर्थात कॉपर आक्सीक्लोराइड–50 @ 3 ग्राम प्रति लीटर, अथवा कॉपर हाइड्रोक्साइड– 53.8 WP @ 2 ग्राम प्रति लीटर अथवा मैंकोजेव–75 WP @ 2.5 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से प्रयोग करें।

भयामवर्ण व फल सड़न रोगः अधपके तथा पके फलों पर छोटे–छोटे गोल जलीय धब्बे बनते हैं जो आकार में असमान और 3 सेमी व्यास तक होते है। इन धब्बों का रंग भूरा होता **है** जो प्रायः में धंसे हुए होते है। इन धब्बों पर कवक वृद्धि के सकेन्द्री बलय बन जाते हैं और अधिक आर्द्रता व 30°C तापक्रम युक्त अनुकूल वातावरण में धब्बों की लगातार बढ़ोत्तरी होने से अनेक धब्बे आपस में मिल जाते हैं। बाद में ऐसे रोगी फल कबक वृद्धि के कारण सड़ जाते हैं। रोगग्रस्त फल में एमीनो अम्ल की कमी के कारण पपेन कम बनता है जबकि नये फल कम रोगग्राही होते हैं। प्रायः यह देखा गया है कि कच्चे फलों पर इस रोग का संक्रमण नही होता है।

रोग कारकः कवक– कोलेटोट्राइकम पपायी

रोग नियंत्रण के उपायः

1. बाग में उपलब्ध पौधों व फलों की नियमित निगरानी रखें।
2. रोग बचाव के लिए कॉपर आक्सीक्लोराइड–50 WP @ 3 ग्राम प्रति लीटर, अथवा कॉपर हाइड्रोक्साइड– 53.8 WP @ 2 ग्राम प्रति लीटर अथवा मैंकोजेव–75 WP @ 2.5 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करें ।

पर्णकुंचन रोगः पत्तियों का विकृत होना, उनकी शिराओं का रंग पीला पड़ जाना तथा नसों का स्पश्ट दिखाई देना विशेश लक्षण है। वास्तव में, पत्तियां नीचे की तरफ मुड़ जाती हैं और उल्टे प्लेट की तरह पड़ती हैं। रोगी पत्तियों की शिराएं तथा शिरिकाएं नीचे से मोटी व गहरे हरे रंग की होती हैं। पत्तियों के डंठल (पर्णवृन्त) ऐठे हुए एवं टेडे–मेड़े होते हैं। रोगग्रस्त पत्तियां अधिकतर मोटी, भंगुर और उपरी सतह पर अति–वृद्धि के कारण खुरदरी हो जाती हैं। प्रायः रोगी पत्तियां छोटी व झुर्रीदार होती हैं। रोग तीव्र होने पर पत्तियां गिर जाती हैं अथवा पौधों की वृद्धि रुक जाती है तथा रोगग्रस्त पौधे में फूल–फल कम लगते हैं जिससे उपज प्रभावित होती है।

रोग कारकः विशाणु– तम्बाकू विशाणु– 16। **रोग संचरण कीट** – प्रौढ. सफेद मक्खी

रोग नियन्त्रण के उपायः

1. विशाणु जनित रोगों का कोई कारगर निदान नही है बल्कि उपचार से बचाव अच्छा है। यह सिद्धांत सर्वोपरि माना जाता है।
2. पपीता बाग के आस–पास तम्बाकू या टमाटर या अन्य रोग संचरण परपोषी पौधे नहीं रखना चाहिए।
3. रोगग्रस्त पौधों को मुख्य खेत से उखाड़ कर अन्यत्र नश्ट करें अथवा जला दें।
4. रोग प्रसार रोकने के लिए सर्वागी कीटनाशक जैसे – मैलाथियान 50 ई0 सी0 अथवा डाइमेथोएट 30 ई0 सी0 @ 2 मि0ली0 अथवा इमिडाक्लोप्रिड 17.8 ई0 सी0 @ 1 मि0ली0 प्रति लीटर पानी की दर से छिडक़ाव करें।

विकृति वलय चित्ती रोगः पूर्वी उत्तर प्रदेश में यह भंयकर रोग है प्रायः पुराने पौधों में रोग संक्रमण अधिक होता है जबकि किसी भी अवस्था पर रोग संक्रमण सकता हैं। सर्वप्रथम नई पत्तियां चितकबरी व आकार में छोटी दिखाई देती है। जिनकी सतह खुरदरी होती है। रोगग्रस्त पत्तियों पर गहरे हरे रंग के फफोले पड़ जाते हैं पत्तियों का डंठल (पर्णवृन्त) छोटा होता है तथा पौधों पर उपलब्ध उपरी पत्तियां खड़ी होती है। पुरानी पत्तियां कभी–कभी समय से पहले ही गिर जाती हैं जिसके फलस्वरुप रोगी पौधों के सिर पर छोटी पत्तियों का एक समूह बचा रहता है। ऐसी पत्तियों का आकार प्रायः प्रतान के अनुरुप हो जाता है। पत्तियों की नसों की संख्या में बढ़ोत्तरी हो जाती है और सभी पत्तियां विकृत होती है। कुछ पत्तियों मे केवल अर्द्ध–भाग में ही ऐसा परिवर्तन होता है। कभी–कभी पर्णवृन्त ओर तना पर गहरे हरे रंग के धब्बे तथा लम्बी धारियां भी दिखाई पड़ती हैं परन्तु जरुरी नही कि यह लक्षण पाया ही जाये। इस रोग महामारी के दौरान पौधों पर फूल–फल नही बनते। रोगी पौधों के फलों में पपेन व शर्करी स्वस्थ पौधों के फलों की अपेक्षा कम होती है। फलों पर भी गहरे हरे रंग के फफोले बनते हैं।

रोग जनकः विशाणु– पपाया रिंग स्पॉट पोटीवायरस। **रोग संचरण**– कीट माहू (माइजस परसिकी)

रोग नियंत्रण के उपायः

1. यह बीज जनित रोग नही है जबकि पौधों की छंटाई के समय संक्रमित यन्त्रों द्वारा यान्त्रिक अथवा प्रौढ़ माहू कीट द्वारा विषाणु संचरण होता है।
2. अधिक तापक्रम व कम नमी में रोग तीव्रता अधिक होती है। अतः ठण्डे मौसम उपयुक्त होता है।
3. निवौली सत् 5 % अथवा नीम का तेल @ 3 मि0ली0 प्रति लीटर पानी अथवा सर्वांगी कीटनाशक डाइमेथोएट 30 ई0 सी0 @ 1 मि0ली0 या इमिडाक्लोप्रिड 17.8 ई0सी0 @ 1 मि0ली0 प्रति लीटर पानी की दर से स्टिकर/शैम्पू से झाग करके छिड़काव करें।
4. पपीता बाग में अथवा आसपास कददूवर्गीय पौधों को न उगायें। यदि आस–पास स्वयं उगे संक्रमित पौधों से रोग संचरण हो जाता है तो अविलम्ब रोगी पौधों को उखाड़कर नष्ट कर देना चाहिए ।

मन्द मोजेक रोगः यह रोग पूर्वी उत्तर प्रदेश में अधिक व्यापक है। पत्तियों में चितकवरापन (सुनहरे चकत्ते) अथवा हरिमाहीनता विशिश्ट लक्षण है अर्थात् पत्तियों पर छोटे–छोटे पीले–सुनहरे धब्बे बनते हैं तथा नसें पीली होकर स्पष्ट दिखाई देती है जबकि पत्तियों के डंठल (पर्णवृन्त) तना तथा फलों पर कोई लक्षण नही पाये जाते हैं। प्रायः नई पत्तियों में लक्षण केन्द्रित होते हैं तथा पत्तियों के डंठल (पर्णवृन्त) कुछ छोटे हो जाते हैं। रोगी पत्तियां खड़ी और सीधी अवस्था ग्रहण करने के समय नीचे की ओर मुड़ जाती हैं। बाद में, पत्तियों की नसों (शिराओं) को आर–पार देखा जा सकता है।

रोगजनकः विशाणु– पपाया मोजेक वायरस ।रोग संचरण कीट– माहू एफिस गोसाईपी कपास

रोग नियन्त्रण के उपायः

1. बीज अंकुरण से लेकर पौध निकालते तक मच्छरदानी या कीट जाली का प्रयोग करें। स्वस्थ पौध का रोपण करें। रोपण व निराई–गुड़ाई के दौरान यान्त्रिक घाव न होने दें। साथ ही, कृशि औजार को सोडियम हाइपोक्लोराइड @ 0.5 % घोल में दुबोकर ही प्रयोग करें अथवा ब्लीचिंग घोल 10 % से उपचारित करें।
2. रोपण के पश्चात सर्वांगी कीटनाशक जैसे डाइमेथोएट 30 ई0 सी0 @ 2 मि0ली0 अथवा इमिडाक्लोप्रिड 17.8 ई0 सी0 @ 1 मि0 ली0 अथवा साइपरमेथ्रिन 5 ई0 सी0 + क्लोरपायरीफॉस 20 ई0सी0 मिश्रण @ 2 मि0 ली0 प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करें।

पत्तियों का छोटा रह जाना (पर्ण न्यूनीकरण/बौनापन) रोगः सर्वप्रथम पत्तियों में मोजेक सदृश लक्षण होते हैं जिससे पत्तियों का आकार बहुत छोटा हो जाता है। बाद में, विकृति के कारण रोगी पौधे बौने रह जाते हैं और उनमें पपेन (लेटेक्स) का बहाव बहुत कम हो जाता हैं।

रोग कारकः विशाणु– पपाया लीफ रिडक्शन वायरस (पी एल आर वी)।

रोग संचरण –कीट माहू माइजस परसिकी)

रोग नियन्त्रण के उपायः

1. स्वस्थ पौध का रोपण करें। रोग ग्रस्त पौधे दिखाई पड़ने पर अविलम्ब उखाड़कर नष्ट कर देना चाहिए।
2. यह रोग केवल पपीता को प्रभावित करता है अतः विशाणु संचरण कीट के नियन्त्रण हेतु डाइमेथोएट 30 ई0सी0 @ 2 मि0ली0 प्रति लीटर अथवा इमिडाक्लोप्रिड 17.8 ई0सी0 @ 1 मि0ली0 प्रति लीटर की दर से छिड़काव करें। पपीता में रोगों के अतिरिक्त जैसे कीट व खरपतवार, जंगली जंतु व छुट्टा पशु आदि अन्य फसल सुरक्षा समस्याएं भी परिलक्षित होती है।

मृदा स्वास्थ हेतु हरी खाद का प्रयोग

डा0 शशिकान्त यादव, पंकज कुमार सिंह एवं डॉ0 विनय कुमार चौरसिया
कृषि विज्ञान केन्द्र, अयोध्या

मृदा उर्वरता एवं उत्पादकता तथा मृदा में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा को बढ़ाने के उद्देश्य से दलहनी अथवा गैर दलहनी फसलों को उनके वानस्पतिक वृद्धि काल में उपयुक्त समय पर जुताई करके मृदा में अपघटन के लिए दबाना ही हरी खाद देना कहलाता है। सघन कृषि पद्धति अपनाये जाने के कारण मृदा मं कार्बनिक पदार्थ की निरन्तर कमी होती रहती है। जबकि मृदा की उर्वरा शक्ति को कायम रखने के लिए मृदा में पर्याप्त मात्रा में कार्बनिक पदार्थ होना आवश्यक है। हमारे देश की मृदा में कार्बनिक पदार्थ की भारी कमी (न्यूनतम मात्रा 0.6प्रतिशत) है।

हरी खाद के लिए उपयुक्त फसलें :—

हरी खाद के लिए प्रयुक्त होने वाली फसलों में कुछ विशेष गुणों का होना आवश्यक है। फसलें शीघ्र वृद्धि करने वाली हो, इनके तने, शाखाएं व पत्तियां मुलायम हो तथा अधिक से अधिक शाखाएं और पत्तियां हों, ताकि अधिक से अधिक कार्बनिक पदार्थ मिल सके। फसलें गहरी जड़ वाली हो ताकि गहराई से पोषक तत्वों का अवशोषण करके उन्हें हरी खाद के रूप में ऊपरी सतह में मिलाया जा सकें। फसलें विभिन्न प्रकार की मृदाओं एवं जलवायु में उगने में समर्थ हों। फसलें सुखा व जलमग्नता के साथ—साथ कीट एवं बिमारियों के आक्रमण को भी सहन करने की क्षमता रखती हो। हरी खाद के लिए प्रयुक्त होने वाली प्रमुख दलहनी फसलें सनई, ढैचा, ग्वार, मूंग, ऊर्द, लोबिया, मटर, बरसीम, सैंजी तथा अदलहनी फसलें ज्वार, सरसों आदि है। हरी खाद के लिए दलहनी फसलों का उपयोग काफी उपयोगी पाया गया है। मुलायम फसलों का सड़ाव शीघ्र तथा रेशेदार फसलों का सड़ाव देर से होता है।

हरी खाद की फसलों की सस्य क्रियाएं एवं उत्पादन क्षमता :—

हरी खाद के लिए फसलों का चुनाव जलवायु, मृदा दशाओं एवं फसल चक्र के लिए उपयुक्तता के आधार पर करना चाहिए। सनई अच्छे जल निकास वाली बलुई अथवा दोमट मृदाओं के लिए उत्तम है। ढैंचा सभी प्रकार की जलवायु तथा मृदा दशाओं में सफलता पूर्वक उग जाती है। ग्वार सामान्य दशाओं तथा कम वर्षा वाले क्षेत्र की बलुई मृदाओं में भी सफलता पूर्वक उगाई जा सकती है। लोबिया की फसल उचित जल निकास वाली बलुई दोमट मृदाओं के उपयुक्त तथा क्षारीय लवणीय मृदाओं के लिए अनुपयुक्त होती है।

हरी खाद के लिए प्रयुक्त विभिन्न फसलों की बुआई का समय एवं बीज की मात्रा का उपयोग (सारणी—1) के अनुसार करें। कम उर्वरता वाली मृदाओं में, दलहनी फसलों में 25 किग्रा0 तथा अदलहनी फसलों में 40—60 किग्रा0 नाइट्रोजन प्रति हैक्टेयर उपयोग करना उपयोगी पाया गया है। नाइट्रोजन के उपयोग करने से फसल की प्रारंभिक वृद्धि अच्छी होगी तथा कार्बनिक पदार्थ की मात्रा बढ़ाने तथा अपघटन (सड़ान) को तीव्र करने में भी सहायक होगी। हरी खाद के लिए दलहनी फसलों में बुआई के समय फास्फोरस के उपयोग से हरी खाद की गुणवत्ता एवं हरे पदार्थ की मात्रा बढ़ जाती है। जिससे आगामी फसल को नाइट्रोजन एवं फास्फोरस की अधिक मात्रा उपलब्ध होती है।

हरी खाद की पलटाई का समय :–

हरी खाद की फसल से अधिकतम कार्बनिक पदार्थ एवं नाइट्रोजन प्राप्त करने के लिए एक विशेष अवस्था पर ही पलटाई करनी चाहिए। यह आवस्था वह है जब फसल अपरिपक्व हो, फूल निकलने प्रारम्भ हो गये हो तथा फसल की अधिकतम मुलायम हरे पदार्थ वाली अवस्था हो। यह अवस्था बोआई के 6 से 8 सप्ताह बाद प्राप्त होती है। इस समय पौधों की वानस्पतिक वृद्धि अधिक तथा शाखाएं एवं पत्तियां मुलायम होती है। यदि पलटाई में विलम्ब होता है तो पौधों के तनों एवं शाखाओं में रेशे की मात्रा बढ़ जाती है। जिससे फसल के सड़ाव में अधिक समय लगता है। सनई को लगभग 50 दिन तथ ढैंचा को 40–50 दिन की आयु पर पलटना चाहिए।

आगामी फसल की बुआई का समय :–

हरी खाद की पलटाई के बाद आगामी फसल की बुआई/रोपाई, हरी खाद की फसल के पूर्ण सड़ाव के बाद ही की जाती है। लगभग 20–30 दिन में फसल का पूर्ण सड़ाव हो जाता है। सड़ाव के लिए लगने वाला समय फसल की प्रकृति और जलवायु पर भी निर्भर करता है। जिन क्षेत्रों में पर्याप्त नमी तथा उच्च तापमान होता है, सड़ाव की क्रिया तेज होती है। धान के वे क्षेत्र जहां वर्षा अधिक, नम जलवायु तथा तापमान अधिक होता है, वहां फसल की पलटाई 40–50 दिन की अवस्था पर करनी चाहिए। लवणीय व क्षारीय मृदाओं में भी ढैंचा की 40 दिन की अवस्था पर पलटाई करने के तुरन्त बाद धान की रोपाई की जा सकती है क्योंकि लगभग 4–6 दिन में ही ढैंचा का 50 प्रतिशत सड़ाव हो जाता है तथा 20 दिन में पूर्ण सड़ाव होकर मृदा में मिल जाता है।

हरी खाद देने की विधि :–

जिस खेत में हरी खाद का उपयोग करना हो उसमें हरी खाद के लिए उपयुक्त फसलों को शुद्ध अथवा मिश्रित रूप में उगाया जाता है। इसके बाद फसल को वानस्पतिक वृद्धिकाल में डिस्क हैरो की सहायता से खेत में पलट देते है। फिर खेत की सिंचाई कर दी जाती है। इस विधि के लिए समुचित वर्षा या सुनिश्चित सिंचाई आवश्यक है।

हरी खाद के लाभ :–

1. हरी खाद के उपयोग से गन्ने के उत्पादन में 30–35 प्रतिशत, धान में 25–30 प्रतिशत तथा गेंहूँ में 20–50 प्रतिशत तक वृद्धि हो सकती है। अतः हरी खाद के उपयोग से फसलोत्पादन में वृद्धि भी होती है।
2. ढैंच की जब पलटाई की जाती है, तो ढैंचा विघटित होता है, जिससे अमोनिया गैस ढैंचा के कार्बनिक पदार्थ से क्रिया करके, इसकी उपरी सतह पर एक युग्म बना लेती है। यह गुम्म मृदा के कार्बनिक पदार्थ एवं लवणों से क्रिया करके अमोनिया को सोखते है। इससे नाइट्रोजन मृदा में लम्बे समय तक विद्यमान रह सकती है। यह क्रिया फोटोसाइटिक अभिक्रिया कहलाती है। इस क्रिया के द्वारा ही खराब मृदा का पी.एच. मान कम होता है। अतः हरी खाद के उपयोग से लवणीय एवं क्षारीय मृदाओं का सुधार ही होता है।
3. हरी खाद की फसलों के सड़ाव के समय कार्बन डाई आक्साइड गैस निकलती है, जो नमी (पानी)में घुलकर कार्बोनिक अम्ल बनाती है। यह अम्ल मृदा में विद्यमान अप्राप्य पोषक तत्वों को प्राप्य रूप में परिवर्तित कर देता है। जिससे आगामी फसलों के लिए मृदा में विद्यमान पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ जाती है।

4 हरी खाद, कार्बनिक पदार्थ की आपूर्ति के साथ–साथ एक नाइट्रोजन प्रधान खाद भी है। साथ ही इसके उपयोग से मृदा को वे सभी पोषक तत्व प्राप्त हो जाते है जो फसलों के लिए अनिवार्य है।

5 हरी खाद के उपयोग से मृदा सतह में पोषक तत्वों का एकत्रीकरण होता है तथा मृदा संरचना में सुधार होता है।

सारणी–1 : हरी खाद की फसलों की सस्य क्रियाएं एवं औसत उत्पादन क्षमता

क्र.सं.	फसल का नाम	बोआई का समय	फसलों की औसत उत्पादन क्षमता			
			बीज पद (किग्रा./है.)	हरे पदार्थ की मात्रा (टन/है.)	नाइट्रोजन का प्रतिशत	प्राप्त नाइट्रोजन (किग्रा./है.)
1.	सनई	अप्रैल से जुलाई	50–60	18–28	0.43	60–100
2.	ढैंचा	अप्रैल से जुलाई	40–50*	20–25	0.42	84–105
3.	लोबिया	अप्रैल से जुलाई	45–55	15–18	0.49	74–88
4.	उर्द	जून से जुलाई	20–22*	10–12	0.41	40–49
5.	मूंग	जून से जुलाई	20–22*	8–10	0.48	38–48
6.	ग्वार	अप्रैल से जुलाई	30–40	20–25	0.34	68–65
7.	ज्वार	अप्रैल से जुलाई	40–50	20	0.34	56
8.	सैंजी	अक्टूर से दिसम्बर	25–30	26–29	0.51	120–135
9.	बरसीम	अक्टूबर से नवम्बर	20–30	16	0.43	60
10.	मटर	अक्टूबर से नवम्बर	80–100	21	0.36	67

***ऊसर भूमि में 60 किग्रा0** ****जायद (मार्च–अप्रैल) में 35–40 किग्रा0**

सारणी–2 : एक टन ढैंचा 'शुष्क पदार्थ' द्वारा मृदा को जुटाये जाने वाले पोषक तत्वों की मात्रा

क्र0सं0	पोषक तत्व का नाम	मात्रा (पी.पी.एम.)
1.	नाइट्रोजन	26.2
2.	फास्फोरस	7.3
3.	पोटाष	17.8
4.	सल्फर	1.9
5.	कैल्षियम	1.4
6.	मैंगनीषियम	1.6
7.	जिंक	25
8.	लोहा	105
9.	मैंगनीज	39
10.	तांबा	7

स्रोत : सर्वे आफ इण्डियन एग्रीकल्चर – 1995

पपेन और उपयोगा

डॉ0 मनोज कुमार सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर
उद्यान विज्ञान, कुलभास्कर आश्रम पी0जी0 कॉलेज, प्रयागराज, उ0प्र0

पपीते के उत्पादन के अतिरिक्त पपीता का उत्पादन पपेन के लिए भी किया जाता है। पपेन कच्चे पपीता जो कि तीन–चौथाई विकसित हुआ हो के दूध को सुखाया हुआ पदार्थ को पपेन कहते हैं। पपेन निकालने की विधि सरल है। इसमें भी पपीता का उत्पादन पपीते की खेती जैसा ही करते हैं। पपेन हरे फल से प्राप्त किया जाता है। इसके लिए आधा से तीन–चौथाई विकसित फलों से निकाला जाता है। फल की उम्र फल लगने के 70–100 दिन के लगभग होनी चाहिए। दूध निकालने के लिए फल को लम्बाई में 0.3 सेंटीमीटर गहराई में एक बार में सुबह चार चीरे लगाते हैं। चीरे पूरे फल पर लगभग समान दूरी पर लगाना चाहिए। चीरे लगाते समय ध्यान देने योग्य बात यह है कि स्टेनलेस स्टील के ब्लेड या तेज चाकू से चीरा लगाते हैं। चीरे लगाने के स्थान पर सफेद दूध निकलता है। इसे धातु के बर्तन में इकट्ठा न करके काँच, चीनी या एल्यूमिनियम के बर्तन से इकट्ठा करते हैं। चीरा के कुछ समय बाद चीरे के स्थान पर दूध इकट्ठा हो जाता है और जम जाता है उसे भी खुरच कर इकट्ठा कर लेना चाहिए। चीरे लगाने का कार्य 2–3 बार 3–4 दिन के अन्तराल पर करना चाहिए। इस तरह प्रत्येक फल से 10–16 दिन के अन्तर पर 3–4 बार चीरे लगाया जा सकता है। इस तरह लगभग सम्पूर्ण दूध निकल जाता है।

उच्च कोटि का पपेन बनाने के लिए दूध इकट्ठा कर सुखा लिया जाता है। इसे सीधे धूप में या हटीर में 50–55 डिग्री सेंटीमेंट तापमान पर सुखाना चाहिए। तरल दूध में सुधारने के पूर्व 0.05 प्रतिशत पोटोशियम मेय–बाई सल्फाइट के मिलने से इसका भण्डारण क्षमता कुछ बढ़ जाती है। अधिक तापमान या अधिक तेज सुखाने पर पपेन खराब हो जाती है। सुखाने की क्रिया तब तक पदार्थ शल्क के रूप में न आने लगे। निर्वात में सुखाने से काफी अच्छी पपेन बनती है। पूर्णरूप से सूखे हुए दूध को पीसकर बारीक चूर्ण के रूप में बना लेते हैं और 10 मेश की छन्नी से छान लेते हैं। इस प्रकार से तैयार चूर्ण को हवा बंद बोतलों से भरकर सील कर दिया जाता है। पपेन बनाने के लिए फलों के दूध निकाल लेने से उनके फल के पकने और स्वाद में कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। लेकिन चीरा लगाने से फल की ऊपरी सतह खराब हो जाती है जिसके परिणामस्वरूप बाजार भाग नहीं प्राप्त होता है। इस तरह के फलों को जैम, जैली, टॉफी, कैंडी, टूटी–फूटी इत्यादि बनाकर परिरक्षित किया जा सकता है।

पपेन का आर्थिक उपयोग पदार्थों, माँस को गलाने, टयूना मछली से तेल निकालने में प्रयोग करते हैं। रेशम रेयान से गोंद निकालने, स्नो क्रीम, दन्त मंज और शराब के कारखाने में अधिक उपयोग होता है। पपेन बहुत से रोग जैसे उतकक्षय, पाचन संबंधी रोगों में, चमड़े के धब्बे मिटाने और गुर्दे इत्यादि बीमारियों के उपचार में उपयोग किया जाता है।

सब्जियों की जैविक खेती

डॉ0 रामगोपाल*, डॉ0 प्रदीप कुमार, डॉ0 विद्यासागर*** एवं डॉ0 प्रवीण कुमार******

*वि0व0वि0 (एग्रोनामी), **वि0व0वि0 (फसल सुरक्षा), ***वि0व0वि0 (पशुपालन), ****वि0व0वि0 (उद्यान), कृषि विज्ञान केन्द्र–अम्बेडक रनगर (उ0प्र0), कृषि विज्ञान केन्द्र–अम्बेडकरनगर

कार्बनिक खेती फसल उत्पादन की वह पद्धति है, जिसमें रासायनिक उत्पादों जैसे रासायनिक उर्वरक, कीटनाशी, फफूँदनाशी, खरपतवारनाशी, वृद्धि नियामक आदि के प्रयोग को हतोत्साहित करते हैं और कार्बनिक पदार्थो जैसे कार्बनिक खादें, जैव उर्वरक, हरी खाद, फार्म के उत्पाद, जैविक कीटनाशी एवं फफूँदनाशी तथा फसल चक्र आदि के प्रयोग पर ही निर्भर रहते हैं। कार्बनिक कृषि का मुख्य उद्देश्य मृदा, पौधों, पशुओं एवं मनुष्यों के स्वास्थ्य को ध्यान में रखते हुए फसल की उत्पादकता बढ़ाना है।

सब्जियों में रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशी के अन्धाधुन्ध प्रयोग से मृदा उर्वरता एवं मनुष्य के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव देखा गया है। कीटनाशी एवं फफूँदनाशी के अधिक छिडकाव से इनके हानिकारक अवशेष सब्जियों के माध्यम से मनुष्य के शरीर में बुरा प्रभाव डालते हैं जिससे बहुत से रोग एवं विकार पनप रहे हैं। अतः इनके स्थान पर जैव कीटनाशी एवं फफूँदीनाशी का प्रयोग करके इनके हानिकारक दुष्प्रभाव से बचा जा सकता है।

सम्पूर्ण रासायनिक उर्वरक का लगभग 10 प्रतिशत भाग अकेले सब्जियों में प्रयोग होता है। सब्जियों में प्रति वर्ष लगभग 12.5 लाख टन रासायनिक उर्वरक प्रयोग किए जा रहे हैं जिसमें नत्रजन 5.3 लाख टन, फास्फेटिक उर्वरक 3.2 लाख टन तथा पोटाश उर्वरक का 4 लाख टन प्रयोग किया जा रहा है। चौदहवीं विश्व कार्बनिक कांग्रेस (2002) के अनुसार अमेरिका में प्रतिदिन 48 एकड़ जमीन रासायनिक खादों के प्रयोग से बंजर होती जा रही है। इसके अतिरिक्त, मृदा उर्वरता में असंतुलन विशेषकर मृदा में सल्फर, जिंक एवं मैग्नीशियन की कमी, मृदा सूक्ष्म जीवों पर हानिकारक प्रभाव, मृदा जल का प्रदूषित होना तथा मृदा का लवणीय या क्षारीय होना आदि रासायनिक उर्वरको के दुष्परिणाम है। अतः कार्बनिक खेती अपनाकर इन हानिकारक रासायनिक उर्वरकों के दुष्प्रभाव से बचा जा सकता है। अध्ययन से पता चला है कि कार्बनिक खेती अपनाने से शुरूआती तीन वर्षो में रासायनिक खेती की अपेक्षा कम उपज प्राप्त होती है, लेकिन बाद के वर्षो में अधिक लाभप्रद एवं सतत् अच्छा उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। ब्रिटेन में अध्ययन से निष्कर्ष निकला है कि कार्बनिक खादें जैसे गोबर की खाद का लगातार 20 वर्षो तक प्रयोग करने से मृदा में इतने कार्बनिक पदार्थ जमा हो जाते हैं कि अगले 100 सालों तक मृदा में कार्बनिक तत्व की पर्याप्त मात्रा में पौधों के लिए उपलब्ध रहती है। अतः मिट्टी की उर्वरता बनाए रखने के लिए कार्बनिक खादें जैसे गोबर की खाद, चीनी मिल की खाद, कम्पोस्ट आदि की 15–20 टन मात्रा/हे. एवं हरी खाद का 3 वर्षो में कम से कम एक बार खेत में पलटना चाहिए।

प्रदेश से कार्बनिक सब्जियों के निर्यात की प्रबल संभावना है। कार्बनिक पद्धति से उगायी गयी सब्जियों का अमेरिका, यूरोप तथा एशिया में निर्यात की अच्छी संभावना होने से किसान अच्छा लाभ कमा

सकते है। कार्बनिक खाद्य पदार्थो की विभिन्न देशों में माँग एवं बाजार वृद्धि को तालिका–1 में दर्शाया गया है।

तालिका–1 विश्व में कार्बनिक खाद्य पदार्थो की माँग

देश	कार्बनिक खाद्य पदार्थो की माँग	प्रतिवर्ष माँग में वृद्धि	बाजार मूल्य में वृद्धि
	(करोड़ रूपये में)	(प्रतिशत)	
अमेरिका	30000	20	10–20 प्रतिशत ज्यादा मूल्य
जापान	15000	–	10–30 प्रतिशत ज्यादा मूल्य
जर्मनी	9000	10	30 प्रतिशत ज्यादा मूल्य
इटली	4500	20	20–200प्रतिशत ज्यादा मूल्य
ब्रिटेन	3250	75	25–100प्रतिशत ज्यादा मूल्य
फ्रांस	3050	25	25–50 प्रतिशत ज्यादा मूल्य
कनाडा	2860	25	10–50 प्रशित ज्यादा मूल्य
अन्य	3240	–	–
कुल	70900	–	–

कार्बनिक खेती के मुख्य घटक

क) प्राथमिक स्त्रोत

1. कार्बन खादें– गोबर की खाद, कम्पोस्ट, मुर्गी की खाद
2. वानस्पतिक अवशिष्ट– खलियाँ, पुआल, भूसा, फार्म अवशिष्ट
3. गोमूत्र एवं सींग से तैयार खाद (बायोडायनेमिक)
4. जैव उर्वरक– राइजोबियम, एजोटोवैक्टर, एजोस्पाइरिलम, फास्फेट को घुलनशील बनाने वाले सूक्ष्म जीव (पी.एस.एम.), न्यूट्रिलिंक (वैम)
5. जानवरों के अवशिष्ट–हड्डी का चूरा, मछली की खाद, वर्मीकम्पोस्ट (केंचुए की खाद)
6. कीडो एवं रोगों का जैविक नियंत्रण– ट्राइकोग्रामा, एन.पी.सी., ट्राइकोडर्मा, फेरोमोन, नीम उत्पाद आदि ।

ख) पूरक/द्वितीयक श्रोत –

- चीनी मिल की खाद (प्रेशमड)
- सीवर की खाद (डाइजेस्टेड स्लज)
- कार्पेट अवशिष्ट

ग) सस्य तकनीक –

- फसल चक्र
- मृदा सूर्य ताप शोधन (भूमि का सोलेराइजेशन)

- एग्रोनेट का प्रयोग
- ट्रैप क्राप (आकर्षण फसलें)
- गर्मी की गहरी जुताई

कार्बनिक खेती के लिए प्रतिबन्धित एवं संस्तुति पोषक पदार्थ

संस्तुति

राक फास्फेट, फेल्डस्पर, डोलोमाइट, राक पोटाश, मछली का चूरा, लकड़ी की राख, चिप्सम, चूना पत्थर वाला चाक, हड्डी, खुर एवं सींग की खाद।

सीमित मात्रा में प्रयोग के लिए

चमड़े की खाद, सुहागा (बोरेक्स), इप्सम, पोटैशियम सल्फेट, मैग्नीशियम सल्फेट

प्रतिबंधित

खून, मांस, बुझा चूना, यूरिया एवं अन्य रासायनिक उर्वरक तथा कीटनाशी एवं फफूँदनाशी

कार्बनिक खेती के लिए संस्तुति कीटनाशी एवं फफूँदनाशी

(क) वानस्पतिक उत्पाद

निकोटीन सल्फेट

यह तम्बाकू की पत्तियों से तैयार कीटनाशी है जो कि सब्जियों में थ्रिप्स, माँहू (एफिड), मकड़ी तथा अन्य चूसने वाले कीड़ो के नियंत्रण के लिए उपयुक्त है।

सबाडिल्ला

यह सबाडिल्ला नाम लिली के बीज से तैयार कीटनाशी है जो कि सब्जियों में थ्रिप्स, माँहू (एफिड), मकड़ी तथा अन्य चूसने वाले कीड़ो के नियंत्रण के लिए उपयुक्त है।

रोटीनोन

यह कीटनाशी दो विभिन्न दलहनी फसलों की जड़ो से तैयार किया जाता है। यह विभिन्न सब्जियों में पत्ती खाने वाली सूड़ी एफिड एवं थ्रिप्स की रोकथाम के लिए उपयोगी है।

नीम उत्पाद

नीम के बीज से तैयार किया गया कीटनाशी सब्जियों में बहुत से कीटों के नियंत्रण के लिए प्रभावकारी पाया गया है तथा मनुष्य एवं लाभकारी मधुमक्यिों के लिए सुरक्षित है।

पाइरिथ्रम

यह गुलदावदी के फूलों से तैयार किया गया रसायन है जिसका बहुतायत प्रयोग कीड़ो के नियंत्रण के लिए किया जाता है।

(ख) खनिज आधारित कीटनाशी

सल्फर, चूना सल्फर

(ग) जैव आधारित कीट एवं फफूँदनाशी

ट्राइकोग्रामा, ट्राइकोडर्मा, एन.पी.वी., बैसीलस थ्रुन्जेनेसिस

कार्बनिक खाद्य पदार्थो का श्रेणीकरण एवं प्रमाणीकरण

कार्बनिक खाद्य की श्रेणीकरण एवं प्रमाणीकरण के लिए अन्तर्राष्ट्रीय कार्बनिक खाद्य आन्दोलन

प्रतिष्ठान (आई.एफ.ओ.ए.एम.), आइरिस कार्बनिक उत्पादक एवं किसान संगठन, संयुक्त राज्य अमेरिका का कृषि विभाग (यू.एस.डी.ए.) आदि के मापदण्डो के अनुसार सब्जियों की शस्य तकनीकी अपनाई जाती है। भारत में कार्बनिक खाद्य के प्रमाणीकरण (डेमेटर सर्टीफिकेट) के लिए मापदंड एपेडा, नई दिल्ली के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है। भारत में इसके प्रमाणीकरण के लिए एपेडा, आइरिस कार्बनिक उत्पादक एवं किसान संगठन से सहयोग लेता है।

सब्जियों में जैव उर्वरक का प्रयोग

जैव उर्वरक उपयुक्त वाहक से तैयार किया गया सूक्ष्म जीव होता जो कि जैविक नत्रजन का स्थिरीकरण करके या अघुलनशील जटिल फास्फोरस को घुलनशील बनाकर या फिर वृद्धि नियामक, विटामिन और अन्य वृद्धि कारकों को उत्पन्न करके फलस की उत्पादकता को बढ़ा देते हैं। सब्जियों में एजोटोवैक्टर, एजोस्पाइरिलम और फास्फेट को घुलनशील बनाने वाले जैव उर्वरकों के प्रयोग से सब्जियों की उपज एवं गुणवत्ता में बढोत्तरी के साथ–साथ नत्रजन एवं फासफोरसधारी उर्वरकों की भी बचत की जा सकती है।

एजोटोवैक्टर एवं एजोस्पाइरिलम जैव उर्वरक

ये जीवाणु जनित जैव उर्वरक स्वतंत्र रूप से नत्रजन का 25–30 किग्रा प्रति हे. स्थिरीकरण करते हैं। इसके अतिरिक्त ये जैव उर्वरक वृद्धि नियामक जैसे आक्जिन एवं जिबरेलिन तथा विटामिन–बी (बायोटिन, फोलिक एसिड आदि) भी उत्पन्न करते है जो पौधे की वृद्धि एवं विकास के लिए लाभप्रद होता है।

फास्फोरस (फास्फेट) को घुलनशील बनाने वाले सूक्ष्म जीव (पी.एस.एम. या पी.एस.बी.)

मृदा में कुल फास्फोरक का लगभग 95–99 प्रतिशत फास्फोरस अघुलनशील होता है जो कि पौधों द्वारा ग्रहण नहीं किया जा सकता है। ये सूक्ष्म जीव जो कि जीवाणु या फफूँद होते हैं, अघुलनशील फास्फोरस को कार्बनिक अम्ल उत्पन्न करके घुलनशील बना देते हैं जिससे ये पौधो द्वारा अवशोषण कर लिया जाता हैं ये सूक्ष्म जीव लगभग 25 प्रतिशत अघुलनशील फास्फोरस को घुलनशील बना देते है जिससे रासायनिक उर्वकर की काफी बचत हो जाती हैं बैसीलस पालीमिबसा, एसपरजिलस अवमेरी, पेनिसिलियम डिजीटेटम आदि सूक्ष्म जीव अघुलनशील फास्फोरस को घुलनशील बनाकर फास्फोरस की उपलब्धता को बढा देते हैं।

न्यूट्रिलिंग (वैम)

वैम फफूँद जन्य जैव उर्वरक होते है जो कि पौधों की जड़ो पर समूह बनाकर रहते हैं। ये फफूँद पौधों को पोषक तत्वों एवं जल की उपलब्धता तथा मृदा की जल धारण क्षमता को बढाते हैं। वैम जड से संबंधित रोगों एवं निमैटोड के नियंत्रण के लिए बहुत प्रभावकारी पाया गया है। इसका प्रयोग मुख्यतः सब्जियों की पौधशाला में टीकाकरण के लिए किया जाता है। 50 ग्राम जैव उर्वरक प्रति एक वर्ग मीटर पौधशाला के शोधन के लिए पर्याप्त होता है। वैम को मृदा में छिडकने से पूर्व उसे मिट्टी, सडी गोबर की खाद एवं बालू के बराबर मिश्रण (1:1:1) में मिलाकर प्रयोग करना चाहिए। वैम के प्रयोग से फास्फोरस, जिंक एवं कापर की उपलब्धता बढ जाती हैं। इसके प्रयोग से 25–50 प्रतिशत फास्फेटिक उर्वरक की बचत की जा सकती है।

जैव उर्वरक की सब्जियों में प्रयोग विधि

बीजक शोधन द्वारा

जैविक खाद की 200 ग्राम मात्रा 10–12 कि.ग्रा. बीज शोधन के लिए पर्याप्त होती है। 200 ग्राम जैविक खाद को 400 मि.ली. पानी में मिलाकर अच्छी तरह मिश्रित करके बीज को इसमें डाल देते हैं। 10–15

मिनट बाद बीज को निकालकर 15 मिनट के लिए छाया में सुखाकर बीज की बुवाई कर दी जाती है। ध्यान रहे कि जैविक खाद की एक पतली परत भली भॉति प्रत्येक बीज के ऊपर सुनिश्चित हो जाए। मटर, भिण्डी, राजमा एवं कद्दू वर्गीय सब्जियों के बीज इस विधि से शोधित किए जाते हैं।

2. पौध शोधन द्वारा

टमाटर, मिर्च, प्याज, फूलगोभी, पत्तागोभी, आदि की पौध इस विधि द्वारा शोधित की जाती है। इस विधि में एक कि.ग्रा. जैव खाद कल्चर को लगभग 10–12 लीटर पानी में मिलाकर घोल तैयार किया जाता है। इस प्रकार तैयार घोल एक एकड़ की पौध के शोधन के लिए पर्याप्त होता है। तैयार किए गये घोल में पौधे की जड़ को 15–20 मिनट तक डुबोने के बाद पौध का रोपण किया गया है।

3. भूमि शोधन द्वारा

भूमि शोधन के लिए 2–3 कि.ग्रा. जैव उर्वरक को 40–60 कि.ग्रा. बारीक भुरभुरी मिट्‌टी या कम्पोस्ट के साथ मिलाकर तैयार किया जाता है। इस प्रकार तैयार उर्वरक एक एकड़ में छिड़कने (प्रयोग करने) के लिए पर्याप्त होती है। जैविक खाद को बीज की बुवाई या पौध की रोपाई के 24 घंटे पूर्व से लेकर बीज की बुवाई या पौध की रोपाई करते समय तक प्रयोग किया जा सकता है।

कार्बनिक खेती से लाभ

1. उपभोक्ता की माँग में वृद्धि

इस समय सम्पूर्ण विश्व में कार्बनिक खाद्य पदार्थो की माँग काफी बढ गयी है। वर्तमान में कार्बनिक पद्धति से उगाए गए खाद्य पदार्थो की माँग लगभग 70000 करोड़ रूपए है जो कि प्रतिवर्ष 20–25 प्रतिशत की दर से बढ रही है। कार्बनिक खाद्य पदार्थो की बाजार में कीमत परम्परागत तरीके से उगाए गए उत्पादों की अपेक्षा 10–15 प्रतिशत ज्यादा होती है। इस प्रकार सब्जियों की कार्बनिक खेती मृदा, मनुष्यों एवं पशुओं के स्वास्थ्य के लिए लाभप्रद होने के अलावा इसके उत्पादों के बाजार मूल्य भी अधिक प्राप्त किये जा सकते हैं।

2. गुणवत्ता में सुधार

अध्ययन से पता चला है कि कार्बनिक खादें एवं जेव उर्वरक के प्रयोग से सब्जियों में विटामिन–ए, विटामिन–सी तथा भण्डारण क्षमता में वृद्धि हुई है।

3. उत्पादन में वृद्धि

रासायनिक उर्वरकों के साथ–साथ जैविक एवं कार्बनिक खादें प्रयोग करने से सब्जियों के उत्पादन में 10–50 प्रतिशत तक वृद्धि आँकी गयी है।

4. रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशी में कटौती

कार्बनिक खाद, हरी खाद, वर्मी कम्पोस्ट (केंचुए की खाद), जैव उर्वरक, जैविक कीटनाशी आदि के प्रयोग से रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशियों की मात्रा में 25–50 प्रतिशत तक कमी लायी जा सकती है।

5. मृदा की दशा में सुधार

कार्बनिक खेती के माध्यम से मृदा की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों में सुधार लाया जा सकता है तथा अधिक उत्पादन के साथ मृदा की उर्वरता को सत्त बनाए रखा जा सकता है।

6. मृदा जल प्रदूषण से बचाव

कीटनाशी, खरपतवारनाशी एवं रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग से मृदा जल प्रदूषित होता है।

कार्बनिक कृषि अपनाकर मृदाजल को प्रदूषण से बचाया जा सकता है।

7. पशुओं एवं मनुष्यों के स्वास्थ्य की रक्षा

कीटनाशी एवं रासायनिक उर्वरकों के अन्धाधुन्ध प्रयोग से पशुओं एवं मनुष्यों में हानिकारक रसायनों का प्रवेश हो रहा है। कार्बनिक खेती अपनाकर इन हानिकारक तत्वों के प्रवेश को रोका जा सकता है और वातावरण तथा मनुष्य के स्वास्थ्य की रक्षा की जा सकती है।

सारिणी–2 विभिन्न कार्बनिक अवशिष्टों के रासायनिक संगठन

घटक	उपचारित स्लज	चीनी की खाद (प्रेशमड)	कारपेट अवशेष
नत्रजन (प्रतिशत)	1.75	1.05	12.50
फास्फोरस (प्रतिशत)	0.40	1.30	0.05
पोटैशियम (प्रतिशत)	0.33	0.28	0.05
जिंक (पी.पी.एम.)	760	440	90
कॉपर (पी.पी.एम.)	130	260	20
आयरन (पी.पी.एम.)	4780	5040	20
मैंगनीज (पी.पी.एम.)	250	460	20

सारिणी–3 हरी खाद से मुख्य पोषक तत्वों की उपलब्धता (प्रतिशत में

हरी खाद	नत्रजन	फास्फोरस	पोटैशियम
ढैंचा	0.62	0.15	0.58
लोबिया	0.75	0.12	0.51
सनई	0.75	0.12	0.51

सारांश

भारत वर्ष में जमीन का हस्तांतरण अपने उत्तराधिकारी को करने की परम्परा है। अतः हमें अपने उपभोग काल तक ही नहीं सोचना चाहिए, बल्कि अपने उत्तराधिकारियों के लिए एक मजबूत एवं अच्छी उर्वरता वाली भूमि सौंपने के लिए प्रयासरत रहना चाहिए। यह तभी सम्भव है जब हम कार्बनिक खेती की तकनीक को अपनाए तथा रासायनिक पदार्थो के प्रयोग को ज्यादा से ज्यादा हतोत्साहित करें। वर्तमान में विश्व में केवल 1.4 प्रतिशत उत्पादक की कार्बनिक खेती अपना रहे हैं जो कि सम्पूर्ण कृषि क्षेत्र का मात्र 1.2 प्रतिशत भाग है। कार्बनिक खेती के शुरूआती वर्षो में उपज कुछ कम हो सकती है, लेकिन भविष्य में लाभप्रद एवं अधिक उत्पादकता निरन्तर सुनिश्चित की जा सकती है। वर्तमान परिस्थिति में कार्बनिक खेती के व्यावसायीकरण की संभावना कम ही दिखाई देती है, लेकिन यदि 2 प्रतिशत किसान भी इस तकनीक को अपनाते हैं या प्रत्येक किसान अपने कृषि योग्य भूमि का कम से कम 5 प्रतिशत क्षेत्र अपने परिवार के स्वास्थ्य को ध्यान में रखकर कार्बनिक खेती के लिए समर्पित करें तो वे कम से कम अपने उत्तराधिकारी के भविष्य के प्रति न्याय करेगे और विनोबा भावे के सपने को साकार करेंगे, जिन्होंने सबसे पहले भारत में इस तकनीक को अपनाने के लिए किसानों का आह्वान किया था।

धान की फसल में जिंक की कमी एवं उसका निदान

डा0 शशिकान्त यादव, पंकज कुमार सिंह एवं डॉ0 विनय कुमार चौरसिया
कृषि विज्ञान केन्द्र, अयोध्या

धान पूर्वी उत्तर प्रदेश की मुख्य खरीफ की फसल है, जिसकी खेती पूर्वी उत्तर प्रदेश के सभी जनपदों में की जाती है। कृशि में सघन में विधियाँ अपनाने एवं अधिक उपज देने वाली फसलों के लगातार उगाने से भूमि में नत्रजन, फास्फोरस एवं पोटाश के साथ–साथ सूक्ष्म मात्रिक तत्वों की भी कमी हो जाती है, इसलिए नत्रजन, फास्फोरस एवं पोटाश उर्वरकों के भरपूर प्रयोग से भी हम धान की अच्छी पैदावार नहीं ले पा रहे है। किसान अभी तक इन सूक्ष्म तत्वों से अनिभिज्ञ हैं। सूक्ष्म मात्रिक तत्वों में विशेश रूप से जिंक तथा कहीं–कहीं पर लोहा की कमी पायी जाती है। जिंक या जस्ता की कमी के लक्षण स्पशट रूप से धान की फसल मं देखे जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त मृदा परीक्षण प्रयोगशालाओं में मृदा विश्लेशण द्वारा ज्ञात हुआ कि पूर्वी उत्तर प्रदेश की मृदाओं में 0.2 पी0पी0एम0 से लेकर 3.2 पी0पी0एम0 तक जिंक पाया जाता है, परन्तु अधिकतर निचली मृदाओं में 0.5 पी0पी0एम0 से कम ही जिंक पाया जाता है जो इसकी कमी का द्योतक है। लवण प्रभावित मृदाओं में भी इस तत्व की भयंकर कमी पायी जाती है इसके अलावा जिन क्षेत्रों में गेहूँ के बाद धान की खेती की जाती है उन क्षेत्रों की मृदाओं में भी जिंक की कमी पायी गयी है। जिंक की कमी के कारण धान की फसल में खैरा रोग लग जाता है, जिसको दूर करने के लिए मृदाओं में जिंक सल्फेट उर्वरक का प्रयोग किया जाता है।

जस्ते की कमी के कारण :

- इन मृदाओं में इस तत्व की कमी निम्नलिखित कारणों से हो जाती है।
- धान के खेत में लगातार पानी भरा रहने से कारण मिट्टी में जस्ते की कमी हो जाती है, क्योंकि इसमें प्राप्त जस्ता रासायनिक
- क्रियाओं द्वारा अप्राप्त अवस्था में बदल जाता हैं जिसको पौधे नहीं ग्रहण कर पाते हैं।
- धान की फसल में अत्यधिक एवं असंतुलित मात्रा में उर्वरकों के प्रयोग से भी जस्ते की कमी इन मृदाओं में हो जाती है।
- मृदा में जीवांश पदार्थ की अत्यधिक मात्रा डालने से भी जस्ते की प्राप्यता घटती जाती है क्योंकि प्राप्त जस्ता कार्बनिक पदार्थ के साथ क्रिया करके अविलेय जस्ता के यौगिक बाना लेता है जो पौधों के लिए अप्राप्त होते है।
- ऊसर मृदाओं में भी जस्ते की कमी अधिकतर पायी जाती है क्योंकि इन मृदाओं में जस्ता लवणों के साथ रासायनिक क्रिया द्वारा लवण यौगिक बना लेता है, जिससे जस्ते की प्राप्यता घट जाती है।

जिंक की कमी से प्रभावित धान की फसल

विभिन्न विधियों द्वारा धान में जिंक सल्फेट का प्रयोग

क्र0सं0	उपचार	उपज कु0 / हे0 (ऊसर मृदायें)		क्र0सं0	उपचार	उपज कु0 / हे0 (सामान्य मृदायें)	
		दाना	भूसा			दाना	भूसा
1	2	3	4	5	6	7	8
(1)	कन्ट्रोल	31.2	52.5	(1)	कन्ट्रोल	39.2	51.2
(2)	जिंक सल्फेट 40 किग्रा0 / हे0 (रोपाई से पूर्व)	41.8	72.6	(2)	जिंक सल्फेट 20 किग्रा0 / हे0 (रोपाई से पूर्व)	47.5	62.0
(3)	जिंक सल्फेट 40 किग्रा0 / हे0 (खड़ी फसल में)	41.2	68.1	(3)	जिंक सल्फेट 20 किग्रा0 / हे0 (खड़ी फसल में)	46.3	61.5
(4)	जिंक सल्फेट 0.5 प्रतिशत घोल(एक छिड़काव)	37.1	63.0	(4)	जिंक सल्फेट 0.5 प्रतिशत घोल(दो छिड़काव)	45.9	59.3
(5)	जिंक सल्फेट 0.5 प्रतिशत घोल(दो छिड़काव)	46.2	69.3	–	–	–	–
(6)	जिंक सल्फेट 0.5 प्रतिशत घोल(तीन छिड़काव)	46.8	73.5	–	–	–	–

स्रोत : राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान परियोजना (नार्प), वार्षिक प्रगति प्रतिवेदन, 1992, नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रोद्योगिकी विश्वविद्यालय, नरेन्द्रनगर (कुमारगंज), फैजाबाद–224229 ।

इसलिए इन मृदाओं में धान की फसल में जिंक की कमी महसूस की जाती है।

जस्ते की कमी के पूर्वानुमान :

मिट्टी एवं खड़ी फसल में इस तत्व की कमी का अभास केवल मृदा परीक्षण, पादप विश्लेशण या फसल में कमी के लक्षण को देखकर किया जा सकता है। मृदा में जस्ते की कमी होने पर धान की फसल में खैरा रोग का प्रकोप हो जाता है जिससे धान की पैदावार पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। इस रोग को निम्नलिखित लक्षण देखकर पहचाना जा सकता है।

- जब पौधे तीन–चार सप्ताह के हो जाते है तो उनकी पत्तियों पर सर्वप्रथम लाल–बदामी या कतीई रंग के धब्बे पत्तियों की नोक पर दिखाई पड़ते है जो धीरे–धीरे पूरी पत्ती को ढक लेते है। बाद में पत्तियाँ कागज केसमान निर्जीव हो जाती है। जस्ते की भयंकर कमी होने पर पौधे झुलसे हुए प्रतीत होते है।

○ पौधें की वृद्धि रूक जाती है।

○ पौधें की जड़े कमजोर हो जाती है और उनका रंग भूरा हो जाता है।

जस्ते की कमी को दूर करनेके उपाय :

आमतौर पर किसान भाइयों को जस्ते की कमी को दूर करने के लिए निम्नलिखित कृशि क्रियायें अपनानी चाहिए जिनसे कुछ सीमा तक

जिंक की कमी को दूर किया जा सकता है।

- खेत में लगातार भरे हुए पानी को बीच–बीच में निकालते रहना चाहिए।
- संतुलित उर्वरकों का प्रयोग करना चाहिए।
- कार्बनिक पदार्थ की उचित मात्रा ही खेतों में डालना चाहिए।
- ऊसर मृदाओं में मृदा परीक्षण के अनुसार जिप्सम या पाइराइट का प्रयोग करके भी जस्ते की प्राप्यता को बढ़ाया जा सकता है।

यदि उपरोक्त विधियों द्वारा भी खड़ी फसल में या मृदा में जस्ते की कमी महसूस हो तो जिंक

सल्फेट उर्वरक का प्रयोग निम्नलिखित प्रकार से करना चाहिए।

- धान की रोपाई से पूर्व सामान्य मृदाओं में 20 किग्रा0 तथा ऊसर मृदाओं में 30–40 किग्रा0 कजंक सल्फेट प्रति हेक्टेयर के हिसाब से 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट घोल का खड़ी फसल में पत्तियों पर छिड़काव करें। इसके लिए 5 किग्रा0 जिंक सल्फेट लेकर 1000 ली0 पानी में घोल लें जो एक हैक्टेयर क्षेत्र के लिए पर्याप्त होता है।
- यदि खड़ी फसल में एक छिड़काव से सुधार न हो तो फिर 10 दिन बाद पुनः दूसरा छिड़काव करें।
- अच्छा होगा कि जिंक सल्फेट के घोल में एक किग्रा0 चूना या 2 प्रतिशत यूरिया मिलाकर पत्तियों पर छिड़काव करें।
- धान की नर्सरी में 5 ग्राम प्रति वर्ग मीटर के हिसाब से जिंक सल्फेट का प्रयोग मृदा में नर्सरी डालने के पूर्व करना चाहिए।
- जिंक सल्फेट का मूल्य अधिक होने के करण जिंक सल्फेट का मृदा में प्रयोग की अपेक्षा पत्तियों पर घोल के रूप में छिड़काव करना अधिक लाभकारी पाया गया है क्योंकि घोल के स्प में छिड़काव द्वारा जिंक सल्फेट की मात्रा प्रति हेक्टेयर कम लगती है।
- ऊसर मृदाओं के साथ–साथ सामान्य मृदाओं में भी जिंक सल्फेट का प्रयोग धान की पैदावार को बढ़ाता है।

जिंक की कमी से प्रभावित धान की फसल

नियमित नियमित आय के लिए लाभदायक व्यवसाय बकरी पालन

डॉ0 देवेंद्र स्वरूप, डॉ0 विकास रंजन चौधरी एवं श्री नरेंद्र कुमार वर्मा
कृषि विज्ञान केन्द्र, मैनपुरी, (उ0प्र0)

संपूर्ण विश्व की जनसंख्या लगभग 16.65 मानव एवं 20.0 प्रतिशत पशुधन कामा पूरे विश्व की कुल भूमि के मात्र 230ः क्षेत्रफल में हमारे देश में जीवन निर्वाह कर रहे हैं क्रश प्रधान भारत में आज भी लगभग 70 करोड परिवार पशुधन से जुड़ा हुआ है बकरी पालन व्यवसाय सबसे प्राचीनतम व्यवसायों में से एक है जिसका ला लालन–पालन लगभग 9000 से 7000 बीसी में शुरू हुआ माना जाता है 2004 के अनुसार भारतीय अर्थव्यवस्था में गरीबों की गाय कही जाने वाली बकरी के दूध मांस खा लूंगा आज का अंशदान लगभग 7 375 करोड़ का है।

पशुधन गणना 2003 के अनुसार 12.36 मिलन बकरियों के साथ भारत विश्व में प्रथम स्थान पर है तथा 12941 पॉइंट 00 बकरियों के साथ उत्तर प्रदेश में तीसरे स्थान पर है बकरी पालन मुख्यता दूध का मांस के लिए किया जाता है यह एक ऐसा दुधारू पशु है जिसे गरीब व भूमिहीन लोग भी बकरी पाल कर अच्छा लाभ अर्जित कर सकते हैं भूमिहीन एवं सीमांत कृषकों के लिए बकरी पालन एक शौक के साथ–साथ लाभकारी रोजगार है क्योंकि यह अनूप जाओ एवं बंजर भूमि पर उगी झाड़ियों कटीले वृक्षों की पत्तियों घास आज खाकर अपना जीवन निर्वाह करने में सक्षम है ऐसे स्थानों पर जहां दूध देने वाले बड़े पशुओं का अधिक स्थान घेरने अधिक पूंजी लगाने एवं अधिक चारा दाना का इंतजाम ना हो पाने के कारण पशुपालन जटिल हो उन स्थानों पर बकरियों को सफलतापूर्वक पाला जा सकता है।

बकरियों का दूध आसानी से फंस जाने के कारण रोगियों के लिए बहुत उपयोगी होता है गुणों में बकरी का दूध सभी दूध के समान होने के कारण मनुष्य के नवजात शिशु को पिलाने के लिए उपयुक्त होता है इसके दूध के लिए या विशेषता है कि फफूंद नाशक जीवाणु में लड़की नाशक होने के कारण से पास होता है बेहतर गुणों वाले दूध के साथ–साथ बकरी कम वसा वाले मांस चावल के उत्पादन में भी सहायक है।

बकरियां प्रातः 10–12 माह की अवस्था में युवा होकर 16–17 मार्च तक पहला बच्चा दे देती हैं जो अपने दूध कॉल (150–195) में 100–200 किलो दूध तथा इसके ने 1 वर्ष में 10 से 15 किलो मांस (नस्ल के आधार) पर दे देती हैं अच्छे व्यवसाय हेतु 6 वर्ष के मादा पशुओं को झुंड से बाहर निकालना अति आवश्यक है।

उन्नत नस्लें – भारतवर्ष में पाई जाने वाली 20 प्रजाति की बकरियों की उन्नत नस्ल ओं में जमुनापारी बरबरी ब्लैक बंगाल बीटल मारवाड़ी सिरोही जखराना आदि प्रमुख है।

जमुनापारी– यह सबसे बड़ी नस्ल है जो मूल रूप से उत्तर प्रदेश के इटावा जनपद में मध्यप्रदेश के भिंड तथा मुरैना जिले में पाई जाती है इसका रंग सामान्यतया सफेद होता है सर और गाल पर लाल भूरे रंग के धब्बे पाए जाते हैं इनका कान लंबे तथा लटकते हुए होते हैं इनकी माता दिन भर में 2 किलो दूध देती है जमुनापारी बकरी वर्ष में एक बार में अक्सर एक ही बच्चा देती है इसका आकार बड़ा होने के कारण इनके बच्चे को वयस्क होने में लगभग 1 वर्ष का समय लग जाता है ।

बरबरी –इस नस्ल की बकरियों का मूल स्थान एटा आगरा मथुरा अलीगढ़ है इनके शरीर का रंग मूलता हल्के भूरे धब्बे के साथ सफेद रंग का होता है कान छोटे और ऊपर की और नुकीले होते हैं इस नस्ल की बकरियां सामान्यतया 13 से 14 माह की समय में दो बार बच्चा जन देती हैं और एक बार में 2 बच्चे को जन्म देती है इन बकरियों का आकार छोटा होने के कारण इनके बच्चे जल्दी वयस्क होते हैं बांधकर खिलाने के लिए यह नस्ल उपयुक्त है।

ब्लैक बंगाल– यह नस्ल मुक्ता पश्चिम बंगाल पूर्वोत्तर राज्य बिहार उड़ीसा के उत्तरी भाग में पाई जाती है इसके शरीर का रंग मूल रूप से ज्यादातर काला होता है कान छोटे और चपटे रहते हैं इस नस्ल के बकरे का वजन 11 – 15 केकरा तथा बकरी का वजन 8–13.5 कि.ग्रा. होता है तथा इससे अच्छे प्रकार का मांस मिलता है।

बीटल यह– नस्ल मुख्यता पंजाब विशेषकर गुरदासपुर अमृतसर और फिरोजपुर जिले में पाई जाती है इसके शरीर का रंग सफेद धब्बे के साथ या धब्बों के बिना काले या भूरे रंग का होता है इनके कान की लंबाई लड़ते हुए जमुनापारी की तरह होती है इस नस्ल की बकरी दूध हुआ मांस दोनों के लिए उपयुक्त होती है।

आवास व्यवस्था बकरी के बारे में रहने का स्थान जो कि 0.4 से 1.86 वर्ग मीटर प्रति बकरी है शुष्क स्थान में 10 फुट ऊंचा बाड़ा हवादार छायादार एवं मल मूत्र का निकास हो वातावरण के अनुसार ही बनाना चाहिए बकरे के लिए अलग से बकरी के अस्थान का दोगुना स्थान निर्धारित कर बाड़े में स्वच्छ जल पानी की व्यवस्था की जाए।

बकरियों का भोजन या आहार व्यवस्था बकरियां स्वभाव से घूमना फिरना अधिक पसंद करती हैं प्राय देखा गया है कि जमुनापारी बकरी अपने मूल आस्थान चकरनगर में नदी के किनारे पाया जाने वाले छोटे–छोटे पौधे अर्थात करील बेर बेर की पत्तियां अपने पैरों के सहारे खड़ी होकर अपने खाने में विशेष रखती हैं भोजन का रूप व बदरिया पत्तियां घास खरपतवार साग भाजी लोबिया रिश्ता बरसीम अरहर चना और गेहूं का भूसा बड़े ही चाव से खाती है गोविंद बकरियों का हार खिलाने में मां के शरीर में पल रहे बच्चों के भोजन का भी ध्यान रखना चाहिए इस दशा में गाभिन बकरियों को अतिरिक्त पोषक तत्व न देने से उनके शरीर के तत्व बच्चे के शरीर में चले जाते हैं और मां के शरीर में कमजोरी आ जाती है इसलिए गर्व काल की आखिरी समय में बकरियों को अच्छे गुणों वाला दलिया हरा चारा और लगभग 500 ग्राम दानापुर खिलाना चाहिए दूध देने वाली बकरियों का भोजन दूध देने वाले बकरियों को खिलाते समय अनेक बातों का ध्यान में रखना चाहिए जैसे कि बकरी के शरीर का भार दूध की मात्रा और उनमें नई का प्रतिशत मौसम की दशा का मिलने वाले हरे चारे की मात्रा उनके गुण तथा भोजन में काम आने वाले खाद्य पदार्थों का मूल्य हरे चारे में दलहनी हरा चारा बहुत अच्छा होता है।

बकरी के लिए संतुलित राशन के घटक

खाद्य पदार्थ	**मात्रा**	**खाद्य पदार्थ**	**मात्रा**
दला हुआ चना	1.50 किलो	जली हुई मक्का	3.75 किलो
मूंगफली की खाली	2.50 किलो	गेहूं का चोकर	2.00 किलो
खनिज मिश्रण	200 ग्राम	नमक	50 ग्राम
		कुल	**10 किलो**

बकरी पालन का आर्थिक पहलू पांच बरबरी बकरी का वार्षिक आय व्यय

(क) व्यय

1.	पांच व्यय वाली बकरियों के अनुमानित कीमत	10000 से ₹ 50000 प्रति के दर से
2.	आहार दाना पर पर गर्व का अंतिम याद आने के बाद 2 माह तक तथा 8 बच्चे पर जन्म के साथ 15 दिन के बाद से 2 माह तक 125 की ग्रास गुड़े 16 प्रति किग्रा)	2000.00
3.	दवाओं आदि पर व्यय	1000.00
		53000.00
4.	वर्ष का रुपए 53000 का 12% की ब्याज दर	6360.00
कुल आय		**59360.00**

(ख) आय

5.	वर्ष के अंत में पांच बकरियों का मूल्य	50,000
6.	औसतन आठ बच्चे 8 माह की उम्र पर मूल्य ₹ 6000 प्रति बच्चा	48000 प्रति बच्चा
7.	औसतन 130 लीटर दूध प्रति बकरी कुल 650 लीटर ₹ 20 प्रति लीटर की दर से	13000
8.	1 वर्ष में एकत्रित खाद की अनुमानित कीमत	2000
	कुल आय	**113000**

शुद्ध लाभ वर्ष के अंत में 113000 – 59360 इसके 53640 रुपए का शुद्ध लाभ प्राप्त कर सकता है ।

खान पान पर रखिये ध्यान
टीकाकरण हो या रोग निदान
समुचित ध्यान यदि दे किसान
स्वस्थ रहें सदा पशुओं की जान ।

सुगन्धित धान की बैज्ञानिक खेती

डा० उमेश बाबू[1] एवं डॉ0 राम भरोसे[2]
वैज्ञानिक (जी.पी.बी.)[1], वैज्ञानिक (मृदा विज्ञान)[2]
कृषि विज्ञान केन्द्र श्रावस्ती
आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय कुमारगंज अयोध्या[1]

परिचयः—

भारत की सबसे महत्व पूर्ण खाद्य फसल है।जो कुल फसले क्षेत्र का एक चौथाई क्षेत्र कवर करता है। धान लगभग आधी भारतीय आबादी का भोजन है।बल्कि यह दुनिया की मानवीय आबादी के एक बड़े हिस्से के लिए विशेष रूप से एशिया में व्यापक रूप से खाया जाता है।गन्ना और मक्का के बाद यह तीसरा सबसे अधिक विश्वव्यापी उत्पादन के साथ कृषि वस्तु है। धान सबसे पुरानी ज्ञात फसलों में से एक है यह करीब 5000 साल पहले चीन में सबसे बड़े रूप मे ंउगाई गई भारत में धान की 3000 ईसा. में खोज हुई थी।भारत में हडप्पा सभ्यता के दौरान लोग लगभग 2500 ईसा. पूर्व लोग चावल को विकषित करने में लगे। अगर भारतीय ग्रंथो की बात की जाय तो युजर्वेद में धान का उल्लेख 1500 से 1800 ईसा. पूर्व किया गया है।चावल की खेती भारत भर के लाखों परिवारों की मुख्य गतिविधि और आय का स्रोत है।भारत को इसे विदेशी मुद्रा और सरकारी राजस्व की प्राप्ति होती है।भारत का धान की पैदावार में दूसरा स्थान है।सरकार भी इसकी पैदावार को बढ़ाने के लिए नई किस्मों का अविष्कार कर रही है।जिसे किसानों की आय मे ंइजाफा हो सके यहा पर धान की अच्छी पैदावार के लिए कुछ सुजाव है जिनका उपयोग कर के किसान भाई अच्छी पैदावार प्राप्त कर सकते है।

धान की किस्में—पूसा 1460, पूसासुगंध 3, पूसासुगंध 4, प.त. 64, नरेन्द्र—118, नरेन्द्र—97, साकेत—4, बरानीदीप, शुष्कसम्राट, नरेन्द्रलालमनी धान—10, पंत धान—4, सरजू—52, नरेन्द्र—359, नरेन्द्र—2064, नरेन्द्र धान—2065, पूसा—44, पीएनआर—381,नरेन्द्र—6093,नरेन्द्र—903011।

उसर भूमि के लिए—नरेन्द्रऊसर धान—3, नरेन्द्र धान—5050, नरेन्द्र ऊसर धान—2008, नरेन्द्रऊसर धान—2009।

बासमती किस्मे—इनमे ंमुख्य रूप से पूसा बासमती— 1, पूसा सुगंध— 2, 3, 4 व 5, कस्तुरी— 385, बासमती—370 व बासमती तरावडी आदि प्रमुख है।इसका नर्सरी समय 15 मई से 15 जून तक होता है।

खेत की तैयारी—धान की फसलको खेत में लगाने से पहले खेत की अच्छी तरह से गहरी जुताई कर लेनी चाहिए।जिससे पुरानी फसल के अवशेष निकल जाये।इसके बाद खेत मे ंपानी को लगा देना चाहिए, खेत में पानी को लगाने के बाद उसे कुछ दिन के लिए ऐसे छोड़ दे।इस के बाद खेत का फिर से जुताईकर मेडबंदी बना दे जिससे खेत में बारिश का पानी अधिक समय तक जमा रहे। धान के खेत में बुवाई के समय हरी खाद के रूप में ढैंचा ली जा रही है, तो फास्फोरस का भी इस्तेमाल करे। धान के खेत में रोपाई से एक हफ्ते पहले खेत को सिंचाई कर तैयार कर लेना चाहिए।

बीज की मात्रा

धान के बीजो को खेत में लगाने से पहले शुद्ध करलेना चाहिए इसके लिए 25 किलोग्राम बीजो को 4

ग्राम स्ट्रेपटोसईक्लीन तथा 75 ग्राम थीरम से उपचारित कर लेना चाहिए। अगर आप धान की सीधे तौर पर बुवाई करते है, तो प्रति हेक्टेयर के हिसाब से लगभग 40 से 50 किलोग्राम तक के बीज होने चाहिए।इसके अलावा धान की रोपाई के लिए लगभग 30 से 35 किलोग्राम धान प्रतिहेक्टयेर के हिसाब से होने चाहिए।

धान की खेती में उवर्रक की मात्रा—धान के फसल की अच्छी उत्पादकता के लिए खेत में सही मात्रा में उवर्रक का होना आवश्यक होता है। धान की रोपाई के बाद यदि फसलको उवर्रक की सही मात्रा दी जाती है, तो पैदावार काफी अच्छी होती है। धान की खेती में यूरिया के अधिक इस्तेमाल से बचना चाहिए, क्योकि इससे पैदावार को नुकसान होता है।किसान अपनी फसल की उत्पादकता को बढ़ाने के लिए 100—130 किलोग्राम, 70 किलोग्राम, 40 किलोग्राम यूरिया एवं 25 किलोग्राम जिंक प्रति हेक्टर की दर से रोपाई के समय तथा यूरिया की 60—80 किलो ग्राम मात्रा रोपाई के 4—5 सप्ताह बाद प्रतिहेक्टर के हिसाब से खेत में प्रयोग कर सकते है।

धान की सिंचाई—धान की फसल में सिचाई की अधिक आवश्यकता होती है इसलिए खेत में बीजो की रोपाई के तुरंत बाद इसकी पहली सिंचाई कर देनी चाहिए। धान की फसल को एक रोपाई के एक सप्ताह तक पौधों के कल्ले फूटने तक दाना भरते समय तक खेत में पानी की पूर्ती नियमित रूप से होनी चाहिए।इसके लिए बांध बनाकर उसमे पानी भर देना चाहिए, जिससे की पानी खेत में बना रहे और पौधे ठीक से वृद्धि कर सके। ध्यान रहे कि भूमि में नमी बराबर बनी रहे तथा दाना भरने की अवस्था में 5 सेमी० तक जल स्तर खेत में बनाये रखना लाभ दायक होता है।

खरपतवार नियंत्रण —धान की फसलमें खरपतवार ज्यादा नुक्सान पहुँचाती है धान के पौधों में खरपतवार नियंत्रण निराई गुड़ाई और रासायनिक दोनों तरीके से की जा सकती है। साधारण प्राकृतिक तरीके से खरपतवार नियंत्रण के लिए खेत में निराई गुड़ाई कर खरपतवार निकाल देनी चाहिए। धान की रोपाई के लगभग 20 से 25 दिन बाद उसकी पहली निराई गुड़ाई कर देनी चाहिए।उसके बाद दूसरी गुड़ाई पहली गुड़ाई के लगभग 20 दिन बाद कर देनी चाहिए। इस तरह धान की दो से तीन गुड़ाई करना अच्छा होता है रासायनिक तरीके से खरपतवार नियंत्रण के लिए खेत में पौधे की रोपाई के 20 से 25 दिन बाद बिसपिरिबक सोडियम 10 प्रतिशत एस.सी. या प्रेटिलाक्लोर 30 प्रतिशतईसी का छिडकाव खेत में करना चाहिए। यदि फसल में खरपतवार का नियंत्रण समय—समय पर होतो पैदावार भी अधिक होती है।

धान मेंलगनेवाले कीड़े—हर साल, एक तिहाई से भी ज्यादा चावल की फसल कीड़ों और बीमारियों की वजह से खराब हो जाती है।अपने फसल के दुश्मनों को जानना और उनका सामना करने के लिए पर्यावरण के अनुकूल रवैया अपनाना बहुत जरूरी है।हम चावल के कीड़ों और रोगों के उचित नियंत्रण के लिए किसी स्थानीय **कृषि विज्ञान केन्द्र** से परामर्श ले सकते हैं।

कीड़े

1. डेफोलिएटरर्स–बहुत सारे कीड़े (लेपिडोप्टेरा, ऑर्थोप्टोरा, और कोलॉप्टेरा), अपना पेट भरने के लिए चावल की पत्तियों पर जाते हैं।

2.प्लांट हॉपर और लीफहॉर्पस–प्लांट हॉपर अक्सर चावल के तने पर हमला करते हैं।इसके विपरीत, लीफ हॉपर पौधों के ऊपरी हिस्सों पर हमला करते हैं।इन से ग्रस्त पौधों का रंग गहरे भूरे रंग का हो जाता है, जैसे मानो वो जल गए हों।

3.अनाज पर हमला करने वाले कीड़े–पुगनेक्स, इसे राइसस्टिंक बग के रूप में जाना जाता है और ये अपरिपक्व पौधों पर हमला करते हैं और उनका अनाज खाते हैं।

धान में होने वाले रोग

1.बैक्टीरियल लीफस्ट्रीक–यह बीमारी भी जैंथोमोनसओरिजाई की वजह से होती है। यह ज्यादा आर्द्रता वाले क्षेत्रों में अस्वस्थ और चोटिल पौधों में पायी जा सकती है।इसकी वजह से पत्तियां सूखने लगती हैं और भूरी हो जाती हैं।

2.बैक्टीरियल लीफब्लाइटस–यह बीमारी जैंथोमोनसओरिजाई की वजह से होती है। यह ज्यादा आर्द्रता वाले, समशीतोष्ण और उष्णक टिबंधीय जलवायु दोनों में होती है।इसकी वजह से मुख्य रूप से पत्तियां पीली पड़ने लगती हैं।

3.भूरे धब्बे–यह एक फफूंदी रोग है जो मुख्य रूप से पत्तियों और पुष्प गुच्छ को प्रभावित करता है।पूरी पत्ती के ऊपर बड़े भूरे धब्ब फैलने शुरू हो जाते हैं। यह सबसे नुकसान दायक चावल के रोगों में से एक है और ज्यादा आर्द्रता वाले खेतों में अक्सर दिखाई देता।

चावल की फसलमें कीड़ेऔर रोगों से रोकथाम के उपाय

चावल की फसल में कीड़े और रोगों से रोकथाम के लिए किसानों को निम्नलिखित उपाय करने चाहिए
एक मौसम से दूसरे मौसम के बीच खेत और चावल के खेतों में प्रयोग किये जाने वाले उपकरणों की उचित सफाई करना जरूरी है।

- प्रमाणित बीजों का उपयोग।
- उर्वरकों के अत्यधिक प्रयोग से बचना।
- कई मामलों में, बीज बोने के 40 दिनों के भीतर कीटनाशक डालने की अनुमति नहीं होती है।

धान की कटाई–धान का पौधा 100 से 150 दिन में पककर तैयार हो जाता है प्रत्येक पौधे पर बाली निकलने के एक महीने बाद पौधा कटाई के लिए तैयार हो जाता है इस दौरान पौधा पीला दिखाई देने लगता है जब धान के बीज में 20 प्रतिशत नमी रहा जाएँ तब उन्हें काट लेना चाहिए।

चवल सुखाने की प्रक्रिया–अनाज की नमी को कम करने के लिए सुखाना एक महत्व पूर्ण प्रक्रिया है।फसल काटने के बाद, अनाज में आमतौर पर लगभग 25 प्रतिशत नमी होती है। अगर हम उन्हें ऐसे ही छोड़ देते हैं, तो इसकी वजह से अनाज का रंग उतर सकता है और कीड़े इस पर हमला करसकते हैं।इसलिए, ज्यादातर मामलों में, अनाज के भंडारण से पहले, किसान अनाज को सूखा देते हैं।

अनाज का उचित भंडारण–कई मामलो में, अनाज 13–14 प्रतिशत नमी वाले कंटेनरों में रखे जाते हैं।

बोन्साई

डॉ0 मनोज कुमार सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर
उद्यान विज्ञान, कुलभास्कर आश्रम पी0जी0 कॉलेज, प्रयागराज, उ0प्र0

बोन्साई एक विशेष प्रकार की कला है। इसके अन्तर्गत पौधे को गमले में इस तरह उगाते हैं कि उनका प्राकृतिक रूप तो बना रहता है लेकिर आकार में बौने रह जाते हैं।

बोन्साई बनाने हेतु सर्वप्रथम बोन्साई के लिए उपयुक्त पौधे को गमलें में उगाया जाता है। फिर उसके वाह्य भाग की इस प्रकार कटाई–छटाई करते हैं कि पौधे के बांधित शैली के अनुसार पूर्व निर्धारित आकार प्रदान किया जा सके। इसके तुरन्त बाद जड़ों की कटाई–छटाई करते हैं तत्पश्चात् वृक्ष को पात्र में लगा देते हैं। यद्यपि देखने में सरल प्रतीत होता है लेकिन ऐसे पौधे के चयन में जिसमें ऐच्छिक स्वरूप प्राप्त करने की क्षमता हो, काफी सर्तकता बरतने की आवश्यकता है। बोन्साई के लिए बीजू पौधे अधिक उपयोगी होते हैं। यद्यपि बीजू पौधे निश्चित आकार लेते हैं लेकिन इसे साधना आसान होता है। साथ ही उसका आकार–प्रकार कलमी पौधे की आपेक्षा अधिक वास्तविक तथा प्राकृतिक होता है। नर्सरी में गमलों में इन पौधों को उगाने की विधि अन्य पौधों के समान ही होती है।

बोन्साई में पौधे बौने बनाने की क्रियाएँ जैसे–शीर्ष कलिकाओं एवं पतली टहनियों की कटाई, जड़ों की कटाई–छटाई करना तथा बीच–बीच में कुछ मोटी शाखाओं को काटना सम्मिलित है। पत्तियाँ तथा जड़ों को काटते रहने से जड़ का विकास सीमित होता हैं बोन्साई कला में वृक्षों को उथले गमलों में लगाते हैं और उसके जड़ों के आस–पास मिट्टी कम होती है। जिसके परिणामस्वरूप वृद्धि पर विपरित प्रभाव पड़ता है। परन्तु बोन्साई पौधे मजबूत व स्वस्थ होते हैं। ये प्रायः इतने मजबूत होते हैं कि भू–दृश्य उद्यानों के प्राकृतिक वातावरण में उगे पौधों से इनका जीवन चक्र अधिक होता है। जड़ों तथा शाखाओं की कटाई–छटाई करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि पौधें में जड़े, तने तथा पत्तियाँ का एक निश्चित अनुपात बना रहे। जड़ों की कटाई–छटाई साल में एक बार करते है। इसमें वृक्ष की जड़ से लगी मिट्टी सहित गमले से निकालते है और आवश्यकता से अधिक बड़ी जड़ों की काट–छांट देते हैं। तने तथा शाखाओं की कटाई–छटाई के समय वृक्ष के आकार विशेष का विशेष ध्यान रखना चाहिए। इसके बाद गमले में नई मिट्टी भर के वृक्ष को पुनः लगाते हैं। बोन्साई पौधे को छाया में नहीं लगाना चाहिए। सूर्य के प्रकाश में रखने से पौधे मजबूत एवं छोटे रहते हैं। गमले में पानी जल्दी–जल्दी व कम मात्रा में देनी चाहिए ताकि पौधे की वृद्धि तीव्र गति से न हो सके। अतः बोन्साई पौधों को यथासंभव खुले एवं ऊँचे स्थान पर रखना चाहिए जहाँ धूप तेज लगती है और पानी जल्दी–जल्दी देना पड़ता है।

परवल की वैज्ञानिक खेती

डॉ0 रामगोपाल*, डॉ0 प्रदीप कुमार एवं डॉ0 विद्यासागर*****
*वि0व0वि0 (एग्रोनामी), **वि0व0वि0 (फसल सुरक्षा), ***वि0व0वि0 (पशुपालन),
कृशि विज्ञान केन्द्र, अम्बेडकरनगर (उ0प्र0)

परवल बहुत ही पौष्टिक, स्वास्थ्यवर्धक एवं औषधीय गुणों से भरपूर एक लोकप्रिय सब्जी है। यह आसानी से पचने वाली, शीतल, पित्तनाशक, हृदय एवं मस्तिष्क को बलशाली बनाने वाली एवं सूत्र सम्बन्धी रोगी को ठीक करने में काफी लाभदायक है। इसका प्रयोग मुख्य रूप से सब्जी, अचार और मिठाई बनाने के लिए किया जाता है। इसमें विटामिन, कार्बोहाइड्रेट तथा प्रोटीन अधिक मात्रा में पायी जाती है।

उन्नतशील किस्में अब तक परवल की किस्मों के विकास पर बहुत ध्यान केन्द्रित नहीं किया गया है। अतः केवल रंग एवं गुण के आधार पर इसकी जातियाँ उपलब्ध हैं जो क्षेत्र विशेष में स्थानीय नामों से जानी जाती है। ऐसी किस्में जो क्षेत्र विशेष में अच्छी उपज दे रही हो उसी का चुनाव करना चाहिए।

कुछ महत्वपूर्ण प्रजातियां जैसे – **वी.आर.पी.जी.–101, 102, 103 तथा 104** भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी से विकसित की गयी है। ये प्रजातियां ज्यादा उत्पादक हैं। अन्य प्रजाति जैसे **स्वर्णरेखा एवं स्वर्णा अलौकिक** का विकास केन्द्रीय बागवानी अनुसंधान केन्द्र, राँची से किया गया है।

बीज रहित परवल की प्रजाति आई.आई.वी.आर.पी.जी.–105 भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान द्वारा विकसित की गई है। इस प्रजाति के साथ खेत में नर पौध लगाने की आवश्यकता नहीं पड़ती है।

गहरे हरे रंग की मोटी, लम्बी, और सफेद धारी युक्त परवल जो सामान्यतः 6–10 से.मी. तक लम्बा होता है। इसकी खेती बिहार के रांची एवं साबोर के आसपास के इलाकों में होती है। गहरे हरे रंग की धारीयुक्त, छोटे एवं गोल आकार के परवल जिसकी खेती उत्तर प्रदेश के मैदानी भागो में की जाती है।

हल्के हरे रंग की मोटी एवं लम्बी बिना धारी वाली परवल जिसकी खेती उत्तर प्रदेश के पूर्वांचल में की जाती है। काली धारी युक्त छोटी एवं गोल परवल की प्रजाति जिसमें औषधीय गुण सबसे ज्यादा पाया जाता हैं इसकी खेती उत्तर प्रदेश के बस्ती एवं गोरखपुर जिले के आसपास की जाती हैं। छोटी, गोल एवं फूली हुई प्रजाति जिसकी खेती बिहार के सिवान एवं पटना के आसपास की जाती है। हल्का पीला सफेद रंग का परवल जो मध्य प्रदेश में काफी लोकप्रिय है।

जलवायु

परवल की खेती के लिए सामान्यतः गर्म एवं तर जलवायु उपयुक्त होती हैं। ऐसे क्षेत्र जिनमें औसत वार्षिक वर्षा 100 से 110 से. मी. तथा पाले का प्रकोप नहीं

होता हो इसकी खेती के लिए उत्तम माने जाते हैं। शरद काल में पौधा सुषुप्तावस्था में पड़ा रहता हैं ।

भूमि तथा भूमि की तैयारी

परवल एक बहुवर्षीय सब्जी है, जिसे एक बार लगाने के बाद लगभग 3 से 4 वर्षो तक लगातार उपज मिलती रहती है। अतः सफलतापूर्वक कई वर्षो तक उपज प्राप्त करते रहने के लिए बलुई या बलुई दोमट भूमि जिसमें जीवांश पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो, उत्तम मानी जाती है। भारी मिट्टी इसकी खेती के लिए अच्छी नहीं मानी जाती हैं। परवल की सफल खेती के लिए नदी के किनारे की जलोढ मिट्टी अत्यन्त उपयोगी रहती है। भूमि का चयन करते समय यह ध्यान देना चाहिए कि उसमें जल निकास का उचित प्रबन्ध हो।

मई–जून के महीने मे पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करके खेत को खुला छोड़ देना चाहिए तथा प्रथम वर्ष खेत की अन्तिम जुताई के समय 20–25 टन अच्छी तरह से सड़ी हुई गोबर की खाद या कम्पोस्ट और 6–7 कुन्तल अरण्डी की खाद खेत में मिलाना चाहिए। इसके अतिरिक्त तत्व के रूप में 60 कि. ग्रा. नाइट्रोजन, 40 कि.ग्रा. फास्फोरस और 40 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टेयर की दर से खेत में डालना चाहिए। पौध लगाने के पूर्व प्रत्येक गड्ढे में 100 ग्राम नीम की खली व 5 ग्राम फ्यूराडान डालना आवश्यक है, जिससे दीमक या अन्य मृदा जनित हानिकारक कीट मर जायें। नाइट्रोजन की 20 किलोग्राम मात्रा, फास्फोरस तथा पोटाश की पूरी मात्रा खेत की अन्तिम जुताई के समय खेत में डालना चाहिए। बची हुई नाइट्रोजन की मात्रा को 3 बराबर भागों में बांटकर खड़ी फसल में टापड्रेसिंग (छिड़ककर) के रूप में जड़ों से 6 से.मी. की दूरी पर देना चाहिए। प्रत्येक तुड़ाई के बाद 50 किलो ग्राम यूरिया प्रति हैक्टेयर से देने पर उपज अधिक मिलती है। जब पहले वर्ष रोपित पौधों पर फल लगना बन्द हो जाये और उसी की दूसरी बार फसल लेना हो तब जमीन की सतह से 6 इंच की दूरी तक तनों को छोड़कर काट देना चाहिए। सभी खरपतवार व पौधों के कटे तने को खेत से बाहर निकाल देना चाहिए और पौधे के मुख्य जड़ से 12 इंच की दूरी तक छोडकर शेष जमीन को फावड़े से गहरी खुदाई कर दें। अब पौध के आसपास की सफाई करके 6 इंच जगह छोडते हुए 6 इंच गहरा गड्ढा खोदकर उसमें लगभग 2 से 3 किलोग्राम गोबर की सड़ी खाद, यूरिया 60 ग्राम, सिंगल सुपर फास्फेट 80 ग्राम व म्यूरेट आफ पोटाश 40 ग्राम का मिश्रण बनाकर डाल दे। इस प्रकार पौधे की वृद्धि तेज होगी व जल्द फलत में आयेगा। पौध वृद्धि के समय (50 दिन बाद) 30 ग्राम यूरिया प्रति पौध जड़ो के आस–पास देना लाभदायक होता है। इसी प्रकार खाद एवं उर्वरकों की व्यवस्था तीसरे वर्ष फलत लेने के लिए भी करना चाहिए।

लगाने का समय

परवल लगाने का सबसे अच्छा समय 'मग्घा' नक्षत्र या 15 अगस्त के आसपास होता है। नदियों के किनारे दियारा में परवल लगाने का समय अक्टूबर व नवम्बर का महीना (जब बाढ़ समाप्त हो जाय) उत्तम माना जाता है।

परवल लगाने की विधि

सीधे लताओं द्वारा

अगस्त के अन्त से अक्टूबर के प्रथम सप्ताह तक खेत के पौधों से पुरानी व गहरे रंग वाली लताओं को लेकर खेत में लगाया जाता है। इसके लिए 30 से 40 से.मी. गहरे गड्ढे खोद लिए जाते हैं जिनमें 2–3 किलोग्राम गोबर या कम्पोस्ट की सड़ी खाद डाल देते है। लता की लम्बाई 60 से 75 से.मी. रखते हैं। लताओं से प्रसारण की कई विधियां हैं।

(क) लता को अंग्रेजी के आठ (8) की आकृति में मोड़ देते हैं। इसके मुड़े हुए बीच वाले भाग को पहले से तैयार 15 से.मी. ऊँचे उठे हुए कतार से कतार और पौध से पौध 2 मीटर की दूरी पर बने थाले में मिट्टी से दबा देते हैं लेकिन इसमें ध्यान रखना चाहिए कि दोनों गोल शिराओं वाला भाग ऊपर की तरफ रहे क्योंकि इन्ही से फुटाव निकलते हैं। इस प्रकार एक हेक्टेयर क्षेत्रफल में 2500 पौधे/कलमें लगती है।

(ख) लता का 60 से 90 से.मी. लम्बा कर्तन लेकर बंडल बना लेते हैं और इसका आधा भाग पहले से तैयार गड्ढे जो कतार से कतार और पौध से पौध 2 मीटर की दूरी पर बने हो में गाढ़ देते हैं तथा आधा भाग जमीन के ऊपर की तरफ हवा में रखते हैं। फुटाव ऊपरी भाग के गाँठो से होता है। इस प्रकार एक हैक्टेयर क्षेत्रफल में 2500 पौधे लगते हैं।

(ग) लता को सीधी नाली में फैलाकर– परवल को इस विधि से लगाने के लिए खेत को अच्छी प्रकार जुताई करके पाटा चला देते है। तैयार खेत में नाली खोदकर उसमें सड़ी गोबर की खाद व मिट्टी का मिश्रण (1:1) भी एक सतह तक भर दिया जाता है। इसके बाद बनी हुई नालियों में स्वस्थ्य लता के टुकड़ो को इस प्रकार फैलाते हैं कि वह मिट्टी में लगभग 15 से.मी. गहराई पर रहे और एक टुकड़ा का सिरा दूसरे टुकड़े के सिरा से मिला रहे। लगभग 15 से 20 दिनों में लता की गाठों से नई शाखाएं निकलना आरम्भ हो जाती हैं इन उपरोक्त विधियों से औसतन 6000 से 7500 टुकड़े की आवश्यकता पड़ती है।

लताओं में जड़ो को विकसित कर लगाना अर्थात नर्सरी के बाद रोपण

असामायिक बाढ़ या वर्षा आदि के प्रभाव से लताओं की उपलब्धता कम हो जाती है। साथ ही साथ खेत में मुख्य फसल होने के कारण सीधे कर्तनों को लगाना मुश्किल हो जाता है अतः एक निश्चित स्थान या नर्सरी में लताओं में जड़ो को विकसित कर लगाना या रोपण करना काफी लाभदायक होता है। नर्सरी में तैयार पौधे काफी स्वस्थ होते हैं और रोपण के बाद तेजी से वृद्धि करते हैं। नर्सरी विकसित करने के लिए 6ष ग 4ष प्लास्टिक की थैलियों को प्रयोग करते हैं। इसके लिए 4 से 5 गांठो वाली कर्तन को सितम्बर से अक्टूबर के महीने में थैलियों में विकसित होने के लिए रखते हैं। कर्तनों में 15 से 20 दिन के अन्दर फुटाव हो जाता है। इस विधि से तैयार पौधों को नर्सरी में काफी दिन तक रखा जा सकता है। विकसित पौध का मुख्य खेत के तैयार गड्ढे में रोपण नवम्बर या फरवरी के महीने में करते हैं।

जड़ो द्वारा

कुछ क्षेत्रों में परवल के पुराने पौधों की जड़ो को प्रसारण हेतु लगाते हैं। इस विधि से फुटाव शीघ्र तो होता है लेकिन जड़ पुरानी होने के कारण पौधों से अधिक उपज नहीं प्राप्त होती है। कभी–कभी रोग ग्रसित जड़ो के लग जाने से फसल मारी जाती है। अतः जड़ो द्वारा प्रसारण उचित नहीं है।

बीजों द्वारा

बीजों द्वारा परवल का प्रसारण किया जा सकता है लेकिन बीज की बुआई करने पर नर और मादा पौधों की संख्या का सही अनुपात नहीं हो पता है लगभग 85ः पौध नर व मात्र 15ः पौध मादा हो पाती है चूंकि फल मादा पौध पर बनता है अतः फलत पर काफी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

नालियाँ तथा थाले बनाना

थाले 2 मीटर की दूरी पर 50 से.मी. व्यास के और 30 से.मी. गहरे बनाने चाहिए। कतार से कतार व पौध से पौध की दूरी 2 ग 2 मीटर रखते हैं। गड्ढा तैयार करते समय उसमें आधा भाग मिट्टी, एक चौथाई गोबर की सड़ी खाद व एक चौथाई बालू मिलाकर भर देते हैं। थाले जमीन से 15 से 20 से.मी. ऊँचाई तक भरते

हैं। जिससे जड़ो के पास पानी न लगे परन्तु जब इनको मचान बनाकर उगाते हैं तो यह दूरी 1.5 x 1.5 मीटर रखते हैं। जबकि नदी की तलहटी में उगाने के लिए थाले 2 x 2 मीटर रखते हैं लेकिन इन क्षेत्रों में गड्ढे का व्यास 30 ग 90 से.मी. रखते है। इस प्रकार 1 हैक्टेयर क्षेत्रफल में कुल 2500 थाले बनेगें।

अच्छी फलत के लिए नर एवं मादा पौधों का संतुलन

परवल में नर व मादा पुष्प अलग–अलग पौधे पर लगते हैं, इसलिए अच्छी उपज के लिए नर व मादा पौधों का संतुलन खेत में बनाये रखना चाहिए। इस प्रकार नर व मादा दोनों प्रकार के पौधों से लता के टुकड़े काटकर लगाये जाते हैं नर व मादा पौधे का निर्धारण पुष्प के आधार पर करते हैं, और इसी के अनुसार टुकड़े या कलमें तैयार की जाती हैं। पहचान के लिए मादा फूल का निचला भाग फूला हुआ सफेद और रोयेंदार होता है जबकि नर पुष्प सीधा व लम्बा होता हैं। अच्छी उपज के लिए प्रत्येक 9 मादा पौधे के साथ एक नर पौधे का होना आवश्यक है। नर पौधे को खेत में इस प्रकार लगाना चाहिए कि सम्पूर्ण मादा पौधे पर बनने वाले पुष्प को परागित कर सके।

सिंचाई एवं जल निकास

परवल के कर्तनों के अच्छी प्रकार स्थापित होने एवं विकास हेतु लता लगाने के तुरन्त बाद थालों के पास हल्का पानी देना चाहिए। इस प्रकार पानी देने की प्रक्रिया लगातार कई दिनों तक करनी चाहिए। इससे जड़े जल्दी निकल आती हैं। ज्यादा पानी लगने से लगाई गयी लता सड़ जाती है। सामान्यतः मार्च, अप्रैल व जून को छोड़कर अन्य महीनों में पानी की आवश्कता नहीं पड़ती है। गर्मी के दिन में जब पौधों पर कल्ले बनते हैं उस समय पानी की ज्यादा आवश्यकता पड़ती है। इस प्रकार गर्मी में 7–8 दिन के अन्तराल पर हल्की सिंचाई करते रहना चाहिए। पुष्पन व फलन के समय खेत में उचित नमी रहने पर उपज बढ़ जाती है। पाले से बचाने के लिए खेत को नम रखना चाहिए। परवल से अधिक उपज के लिए खेत में जल निकास का अच्छा होना उतना ही आवश्यक है जितना कि समय से सिंचाई। प्रयोगों में यह पाया गया है कि जल निकास की अच्छी व्यवस्था न होने के कारण जब पानी बार–बार खेत में रूकता है तो फूल झड़ने लगते हैं और विकसित हो रहे फल पीले होकर गिर जाते हैं। पौधे के विकसित तने जगह–जगह फूंफद के संक्रमण से सड़ने लगते हैं।

अंतः शस्य क्रियायें

अन्य सब्जियों की अपेक्षा परवल, खर–पतवार के प्रति बहुत संवेदनशील होता है। प्रायः यह देखा गया है कि खेत में गर्मी की सिंचाई के बाद और वर्षा ऋतु में खरपतवार अधिक संख्या में उग आते हैं। अतः सफल खेती के लिए आवश्यक है कि निकाई–गुड़ाई करके थालों पर मिट्टी समय पर चढ़ाते रहना चाहिए। लताओं की रोपाई करने के बाद से फल लगने की अवधि तक आवश्यकतानुसार निकाई गुडाई करके खेत को खरपतवार से मुक्त रखना चाहिए।

रासायनिक विधि से खर पतवार नियंत्रण के लिए स्टाम्प 3.3 लीटर 1000 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर की दर से पौध लगाने के 2 दिन पूर्व छिडकाव करना चाहिए। इससे विस्तृत क्षेत्र में तथा कम लागत में खर पतवार नियंत्रण किया जा सकता है। वृद्धि काल में हाथ से खरपतवार निकालना अच्छा रहता है।

परवल की लताओं को सहारा देकर मचन पर चढ़ा कर खेती करने से 5 से 10 कुन्तल प्रति हेक्टेयर अधिक उपज मिलती है। इसके अलावा इसके कई फायदे हैं। फल जमीन के सम्पर्क में न रहने के कारण सड़ते–गलते नहीं तथा सभी फलों की तुडाई में काफी सुविधा होती है, क्योंकि लगभग जमीन पर फैले लता से

25 प्रशित तक फल तोड़े ही नहीं जाते। कीट एवं रोग नाशक दवाओं के प्रयोग में भी सुविधा हाती है। चूंकि पौधें की लताए मचान पर फैलाती हैं अतः नीचे रिक्त स्थानों की निकाई–गुडाई आसानी से की जा सकती हैं। चढ़ाने के लिए यदि बांस, सीमेन्ट के खम्भे या एंगिल आयरन पर लोहे के तार या डेढ़ फीट की ऊँचाई पर बना लिया जाय तो अच्छी फलत मिलती है। खम्भों को जमीन में एक तार या डेढ़ फीट की गहराई में गाडने से पौधों की लताओं के बढने व फल धारण करने पर वजन बढने से खम्भे जमीन पर नहीं गिरते। मचान पर चढ़ाकर खेती करने के लिए कतार से कतार व पौध से पौध की दूरी 1.5 मीटर रखी जानी चाहिए। इस प्रकार 1 हैक्टेयर क्षेत्रफल में कुल 4000 थालें बने हैं जिनमें पौधे/कलमे लगाई जाती है। जब परवल की बेल 30 से.मी. से अधिक बढ़ना शुरू हो जाये तो इन बेलों को मचान पर रस्सी का सहारा देकर चढ़ाना चाहिए। मचान बनाने का कार्य मार्च महीने से प्रारम्भ कर देते हैं लेकिन लताओं को वर्षा ऋतु में ऊपर चढ़ाते है। अगर गर्मी में लता को चढ़ाया जायेगा तो तेज धूप व गर्मी से पौध की लता झुलस जायेगीं।

फसल चक्र एवं शस्य मिश्रण

जहां पर परवल की विस्तृत खेती की जाती है वहां पर निम्नलिखित फसल चक्रों को अपनाते हैं।

1. आलू (नवम्बर–जनवरी) परवल (फरवरी–अक्टूबर)
2. मूली (नवम्बर–जनवरी) परवल (फरवरी–अक्टूबर)
3. अगेती मटर (नवम्बर–जनवरी) परवल (फरवरी–अक्टूबर)
4. पालक अथवा मेथी (नवम्बर–जनवरी) परवल (फरवरी–अक्टूबर)

परवल की खेती मिलवां फसल के रूप में भी की जाती है। पूर्वी उत्तर प्रदेश में इसकी खेती पान के साथ की जाती है, जिससे पान के कोमल पत्तों को छाया प्राप्त होती है। चूंकि नवम्बर से जनवरी तक पौधा सुषुप्तावस्था में रहता है अर्थात वृद्धि नहीं करता है अतः इस समय सह फसल के रूप में मटर या राजमा की खेती हरी फली के लिए रिक्त जगह में की जा सकती है। इसके अलावा पालक, प्याज, मूली, फूलगोभी, व पत्ता गोभी भी सफलतापूर्वक सह फसली के रूप में ली जा सकती है। इससे रिक्त स्थान के उपयाग के साथ साथ अच्छी आय अन्य फसल से ली जा सकती है। सह फसल के रूप में पालक सबसे उत्तम पायी गयी है।

फल की तुड़ाई एवं उपज

मैदानी क्षेत्रों में अगस्त में लगाई गई बेलों/लताओं से मार्च अप्रैल के महीने में फल आना शुरू हो जाते हैं जबकि नदियों के किनारे (दियारा) अक्टूबर–नवम्बर में लगाए गये पौधों पर फल फरवरी में आने लगते हैं। पौधों पर फल लगने के 15 से 16 दिन बाद पूर्ण विकसित हरे फलों की तुडाई करनी चाहिए। समय से फलों की तुड़ाई करते रहने से फल अधिक संख्या में लगते रहते हैं।

मैदानी क्षेत्रों में पहले वर्ष की फसल से औसतन 125 कुन्तल प्रति हैक्टेयर उपज प्राप्त होती है दूसरे व तीसरे वर्ष की फसल से 150 से 200 कुन्तल उपज प्राप्त की जा सकती है। नदियों के किनारे लगाए गये पौधों से 350 कुन्तल प्रति हैक्टेय फलत मिलती है और प्रत्येक वर्ष नयी फसल लगानी पड़ती है क्योंकि बाढ से फसल डूब जाती है और बाढ़ समाप्त होने पर प्रतिवर्ष गड्ढे खोदकर नये पौधे लगाए जाते हैं।

केले की उन्नत खेती

डा0 शशि कान्त यादव, डॉ0 रामगोपाल एवं प्रवीण कुमार मिश्रा
कृषि विज्ञान केन्द्र, अयोध्या

भारत में केला सामाजिक तथा आर्थिक दृष्टिकोण से एक बहुत ही महत्वपूर्ण फल है और लाखों लोगों के जीवनोपार्जन का साधन है। जागतिक नजरिए से 10 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्रफल से 98 मिलियन टन पैदावार मिलती है। भारत केले का प्रमुख उत्पादक है जो 5.00 लाख हेक्टेयर क्षेत्र से 17.50 मिलियन टन उपज प्राप्त करता है। यह अधिकतर तमिलनाडु, महाराष्ट्र, कर्नाटक, आंध्रप्रदेश और गुजरात में उगाया जाता है। असम, बिहार, केरल, मध्यप्रदेश, उड़ीसा और पश्चिम बंगाल में भी केले की खेती की जाती है।

जलवायु :

यद्यपि केला उष्ण कटिबंधीय फल है यह आर्द्र तथा उपोष्ण और 2000 एम.एस.एल. की ऊँचाई को भी सह सकता है। यह कम तापमान तथा पानी की रूकावट को नहीं सह सकता। नए पत्तों का निकलना तथा फलों का विकास मुख्यतः तापमान पर निर्भर करता है।

मिट्टी :

गहरी दुमट, हवादार और हल्की मिट्टी में यह अच्छा उगता है। यह 6.5 से 8.0 तक के पी.एच. को सह सकता है।

प्रजातियां :

ग्रेंड नेने, रोबस्टा, ड्वार्फ, केवेन्डिश, पूवन, रसथाली, नेन्द्रन, करपूरवल्ली, नेय पूवन, मोन्थान तथा पहाड़ी केले कुछ प्रमुख प्रजातियां है।

प्रतिपादन :

पारस्परिक तरीके से सकर अर्थात पौध या फिर कन्दो के जरिए केले के पौधों को उगाया जाता है। चौड़े पानीदार सकरो की अपेक्षा तलवार या खड्ग के आकार के और पतले लम्बे पत्तों वाले सकर को चुना जाता है। छटाई किए गए सकर अथवा टुकड़ो का वनज 1.0 से 1.5 कि.ग्रा. तक हो होना चाऐ जिसमें से अंकुर फूट रहा हो। रोपण सामग्री का वर्गीकरण बहुत ही महत्वपूर्ण होता है। इससे फसल का विकास और घारों के निकलने का सम, सभी में एकरूपता होती है।

रोपण :

रोपण के पहले 45x45x45 से.मी. गड्ढ़ो में अच्छी तरह गली हुई गोबर खाद डाला जाता है अथवा उन गड्ढो में 20–30 किलो/गड्ढा कम्पोस्ट भरा जाता है। चुने हुए सकर की अनावश्यक पत्तियां, वानस्पतिक विकास और अत्यधिक जड़ो आदि को काट दिया जाता है। इन सकरों को सूत्र कृमि एवं तना विविल से बचाने के लिए कन्दो को मिट्टी के घोल में 20–40 कण/सकर के हिसाब से कार्बोफ्यूरान डालकर उसमें इन्हे डुबोया जाता है।

जून–जुलाई रोपण के लिए उचित महीने हैं। वैसे तो वर्ष के किसी भी समय रोपण किया जा सकता है बशर्ते सर्दियो को छोड़कर अन्य मौसम में सिंचाई की पूरी सुविधा हो।

घने रोपण से अधिक पैदावार प्राप्त की जा सकती है। महाराष्ट्र में एक हेक्टेयर में 45000 पौधे लगाए

गए जबकि अन्य राज्यों में 2 अथवा 3 चक्रो में 3,000 से 3,500 पौधो का इस्तेमाल किया गया। ग्रेन्ड नेने, राबस्टो, ड्वाफ केवेन्डिश (महाराष्ट्र और गुजरात) मालभा (पश्चिम बंगाल) और पूवन (केरल और तमिलनाडु) के लिए दुहरी कतार वाली प्रक्रिया अपनाई गई है। इस पद्धति में कतारों के बीच 1.2 मी. और दो कतारों के बीच 1.8 से 2.0 मीटर तक की दूरी रखी जाती है। पौधों के बीच 1.2 मीटर का फासला रखा जाता है। रोबस्टा, ड्वार्फ केवेन्डिश, राजापुरी, बसराय और कोथिया 1.5x1.5 मीटर की दूरी पर (4444 पौधे प्रति हेक्टेयर) लगाया जा सकता है।

उर्वरक डालना :

केले के प्रत्येक पौधे के लिए 150–200 ग्राम नाइट्रोजन, 40–60 ग्राम फास्फोरस और 200–300 ग्राम पोटाश की आवश्यकता होती है। यह खुराक मिट्टी और किस्म पर भी निर्भर करती है। नाइट्रोजन और पोटाश की चार खुराकों में डाला जाना चाहिए अर्थात रोपण के 30, 75, 120 और 165 दिनों बाद डालना चाहिए जबकि फास्फोरक को रोपण के समय ही डाला जाता है। पुनरूत्पादन अवस्था में नाइट्रोजन का एक चौथाई हिस्सा और पोटाश का एक तिहाई हिस्सा डालना लाभदायक पाया गया। बूंद सिंचाई द्वारा उर्वरक डालने से पौधों की पोषण क्षमता में वृद्धि देखी गई। इसके साथ ही आई.आई.एच.आर. द्वारा तैयार किया गया बनाना स्पेशल (5 ग्रा. / ली.) को 15 लीटर पानी में 1 शैम्पू सैशे के साथ मिलाकर छिडकाना भी उचित पाया गया। यह छिडकाव 16 पत्ती और 30 पत्ती अवस्था में किया जाना चाहिए। घार निकलने के 30 और 60 दिनों के बाद इसके दो छिड़काव किये जाते है।

सिंचाई :

अधिक सूखी मिट्टी और गर्म मौसम में केले को कम अंतर पर पानी डालना पड़ता है। औसतन, रोबस्टा के लिए गरम महीनों अर्थात् फरवरी से मई तक 3 इंच / एकड़ सिंचाई की जरूरत होती है। बूंद सिंचाई दिन–ब–दिन महत्वपूर्ण होती जा रही है और हर जगह खासकर कम वर्षा वाले क्षेत्रों में यह बहुत ही लोकप्रिय हो रहा है। केले के पौधों में पर्याप्त पानी की आवश्यकता को पूरा करने के लिए माइक्रो ट्यूब वाले दो एमीटर (4 लीटर / घंटे) को पौधों से 25 से.मी. दूर पर रख देना चाहिए जो वाष्पीकृत पानी का 75–80 प्रतिशत कमी को पूरा करता है।

डीसकरिंग :

मातृ पौधे में फूल आने तक सभी सकर को निकाल देते है और बाद में केवल एक सकर को ही रखा जाता है। डीसकरिंग का यही सबसे अच्छा तरीका है। फिर भी घने रोपण में कटाई के उपरान्त सकर को बढ़ने नहीं देना चाहिये ताकि अगले फसल में सारी शस्य क्रियाओं में एकरूपता बनी रहे।

खरपतवार नियंत्रण :

प्रारम्भिक छः महीनों में खरपतवार नियंत्रण से उर्वरक तथा उपज में बढ़ोत्तरी होती है। दोहरी अंतर शस्य से खरपतवार दब जाते हैं और उस अंतर शस्य को पुष्पण के समय जमीन में गाड़कर और ऊपर से ग्लाइफोसेट 1–2 कि. / हे. दर से रोपण के 60 दिनो बाद छिड़काने की सिफारिश की गई है।

ट्रेशिंग :

सूखे पत्तों पर कीड़े दीर्घ निद्रा में सोते हैं और अनेक रोगों का कारण बनते हैं इन्हे अब–तब निकालते रहना चाहिए। पौधे से हरे पत्ते कभी न काटें।

स्टाइल, पेरिन्थ और नर कली नाश :

इससे फिंगर टिप रोग का नियंत्रण हो जाता है। जब धेला (घार) बहुत छोटा होता है उसी समय

पेरिन्थ और स्टाइल निकाल दें। नर कली अथवा हार्ट को तब निकालें जब धेले (घार) में अंतिम गुच्छा आ जाता है और फूल ऊपर की तरफ मुड़ने लगते हैं।

सहारा देना :

ऊँचे किस्मों के लिए सहारा देना बहुत जरूरी है। बांस, केसुरिना या नीलगिरी के लट्ठों से सहारा दिया जाता हैं। सस्ते साधन के प्लास्टिक या रस्सी का भी इस्तेमाल करते हैं।

मिट्टी चढ़ाना :

थाल से मिट्टी के बहाव को रोकने के लिए 2—3 महीने में एक बार पौधे के चारों ओर मिट्टी चढ़ाना आवश्यक है ताकि स्यूडोस्टेम का पानी से सीधा संबंध न बने।

मेटोकिंग :

धेले (घार) की कटाई के बाद तने को विभिन्न अवस्था में काटते जाना चाहिए ताकि 40—50 दिनों तक अगले रेटून फसल को पोषण मिलती रहे।

रोग

पनामा विल्ट :

रोगरोधी किस्में उगाना जैसे ड्वार्फ केवेन्डिश, रोबस्टा और ग्रेन्ड नेने, सारे खेत में सस्यावर्तन फसलों को लगाना, आदि नियंत्रण तरीके हैं। साथ ही कार्बेन्डाजिम (0ण्2:) से सकर का उपचार और रोपण के पांचवे, सातवें और नौवें महीने में कार्बेन्डाजिम से इन्जेक्ट करने से इस रोग की रोकथाम की जा सकती है।

कन्द गलन :

रोपण के पहले कन्दो को छीलकर 1.25 ग्रा./ली. एसेफेट में डुबोएं और पाक्षिक अंतर पर 1 प्रतिशत बोर्डो मिश्रण से गीला करने की सिफारिश की गई है।

गुच्छ शीर्ष :

रोगरहित बगीचों से स्वस्थ सकर लें अथवा रोगरहित ऊतक संवर्धित पौधों को ही लगाएं। रोपण के 75 और 165 दिनों के बाद मिट्टी में कार्बोफ्यूरान डालें। ग्रसित पौधों एवं टहनियों का नाश करने से भी इस रोग के प्रकोप को कम किया जा सकता है।

केले का स्ट्रीक विषाणु :

यह रोग केले उगाए जाने वाले सभी क्षेत्रों और खासकर पूवन में देखा जाता हैं इसके प्रकोप तथा लक्षण भिन्न प्रकार के होने के कारण उपज पर भी विपरीत प्रभाव पड़ता है। इसके लक्षण हैं पत्ते के बीच की नस पर अथवा पत्तों की चौड़ाई पर पीली धारियां बनने लगती हैं जो बाद में पानीदार धब्बे जैसे हो जाते है। जब प्रकोप भयंकर हो तो पीली धारियां तने पर (स्यूडोस्टेम), पीतियोल और मध्य शिरा के निचली सतह पर भी फैल जाता है अन्य किस्मों पर भी यह रोग फैलता जा रहा है। ग्रसित पौधों का तुरंत नाश कर दें और अच्छी हवादार खेती शुरू करें। स्वस्थ रोपण सामग्री का इस्तेमाल करें और ग्रसित पौधों के सकर का इस्तेमाल न करें।

केले का ब्रेक्ट मोजेक विषाणु :

इसके लक्षण हैं स्यूडोस्टेम पर पीले अथवा गुलाबी रंग की धारियां बननी शुरू हो जाती है और ब्रेक्ट पर जामनी रंग के तकली के आकार के चित्र बनते जाते हैं। ग्रसित पौधों को नष्ट कर दें और अच्छे प्रबन्ध तकनीक अपनाएं तथा स्वस्थ रोपण सामग्री का इस्तेमाल करें। अन्य सुग्राही किस्में हैं नेन्द्रन, मोन्थान, पूवन, नेय पूवन, रसथाली, रोबस्टा, कर्पूरवल्ली और अताहियाकोल।

संक्रमित क्लोरोसिस :

क्लोरोटिक अथवा पत्तों पर पीले धब्बे या फिर पूरे पत्ते पर धब्बेदार चिन्ह इस रोग के लक्षण हैं। पत्तों की नसों का असामान्य रूप से मोटा होना भी देखा गया हैं स्वस्थ रोपण सामग्री का इस्तेमाल करें और ग्रसित पौधों को नष्ट कर दें।

अन्य सुग्राही किस्में हैं पूवन, बसराय, थेलाचक्कर केली, लालवेल्ली और नेन्द्रन। इसके साथ खीरा अथवा तरबूज वर्गीय फलों का अंतर सस्य के रूप में न लगाएं।

कीट् पीड़क

कन्द विविल :

स्वस्थ सकर लगाने पर यह रोग नहीं रहता। गड्ढो में 10–15 ग्राम कार्बोफ्यूरान डालें।

थ्रिप्स :

इस कीट को 1.25 ग्रा./ली. एसेफेट के छिडकाव से रोका जा सकता हैं। एसेफेट के छिड़काव से रोका जा सकता है।

सूत्रकृमि :

सकर की छटाई करके या हीट थेरपी से या फिर रासायनिक तरीके से या इन सभी के मिश्रित नियंत्रण विधि से केला को रोग रहित बनाया जा सकता है। छिले हुए कन्दो को गर्म पानी में 55^0 सें. पर 10 मिनट तक रखने अथवा कार्बोफ्यूरान 3 जी (40 कि./सकर) में प्रोलीनेज और एसेफेट में 45 मिनट तक डुबोकर रखें अथवा 2 किलो/है. के दर से मिट्टी में कार्बोफ्यूरान डालने पर सूत्रकृमि की रोकथाम की जा सकती हैं इसके अतिरिक्त छंटाई और एसेफेट (1.25 ग्रा./ली.) में 60 मिनट तक डुबोना और गेंदे (हरा भाग) को 2 ग्रा./एम2 (बीज दर) मिलाना अथवा बुआई के 90 दिन बाद सनहेम्प 10 ग्रा./एम2 (बीज दर उपचार भी प्रभावी पाया गया।

कटाई :

केले की पक्वता मानक हैं फलों में कोणीय भाग न रह कर वे भरे हुए हो जाएं। बाजार की दूरी के आधार पर तीन चौथाई अथवा पूर्ण पक्व अवस्था में कटाई की जानी चाहिए। फलों का भरा हुआ होना केवल कुछ ही किस्मों के लिए लागू होता है जैसे रोबस्टा, ग्रेंड नेने, ड्वार्फ केवेन्डिश, रसथाली और नेय पूवन। यह सिद्धांत सब्जी वाले केले को लागू नहीं होता क्योंकि वे पूरे तैयार अवस्था में भी कोणीय ही रहते हैं।

पैदावार :

केवेन्डिश की औसत उपज 50–100 टन/है. है तथापि अच्छी खेती विधि, घना रोपण आदि से 150 टन/है. उपज प्राप्त की जा सकती है। पूवन, रसथाली और मोन्थान जैसी किस्में 40–65 किस्में 40–65 टन/है. उपज देती है।

हरी खाद से बढ़ाएं खेतों की उर्वरा शक्ति

डॉ0 रामगोपाल*, डॉ0 विद्यासागर एवं डॉ0 प्रदीप कुमार*****
*वि0व0वि0 (एग्रोनामी), **वि0व0वि0 (पशुपालन), ***वि0व0वि0 (फसल सुरक्षा),
कृशि विज्ञान केन्द्र, अम्बेडकरनगर (उ0प्र0)

भारत अधिकतर क्षेत्र में यह विधि अधिक लोकप्रिय है इसमें जिस खेत में हरी खाद का उपयोग करना है उसी खेत में फसल को उगाकर एक निश्चित समय पश्चात पाटा चलाकर मिट्टी पलटने वाले हल से जोतकर मिट्टी में सड़ने को छोड़ दिया जाता है। वर्तमान समय में पाटा चलाने व हल से पलटाई करने के बजाय रोटा वेटर का उपयोग करने से खड़ी फसल को मिट्टी में मिला देने से हरे पदार्थ का विघटन शीघ्र व आसानी से हो जाता है। उत्तर प्रदेश समेत देशभर में रासायनिक खादों का सबसे ज्यादा इस्तेमाल हो रहा है. इसीलिए लगातार खेतों में रासायनिक खादों का अंधाधुंध प्रयोग हो रहा है जिसके कारण खेतों में जिंक सल्फेट और सल्फर की कमी भी खेतों में नजर आने लगी है. इसके लिए कृषि वैज्ञानिक काफी चिंतित है और वह इसकी कमी को पूरा करने के लिए ढैंचा की फसल को लगाने का कार्य कर रहे है. कृषि वैज्ञानिकों ने बताया कि मिट्टी में सल्फर, जिंक सल्फेट की कमी को पूरा करने के लिए किसान ढैंचा को बोकर हरी खाद बनाने का कार्य करें. वैज्ञानिकों का कहना है कि ऐसा करने से खेत में जीवांश की मात्रा में बढ़ोतरी होगी. जिन किसानों को धान की रोपाई करनी है वह अपने खेतों में ढैंचा की बुवाई कर सकते है. इसीलिए जमीन की उर्वरा क्षमता को बढ़ाने के लिए खाली खेतों में ढैंचा समेत कई तरह की तिलहनी फसले फायदेमंद होती है. दरअसल हरी खाद वह होती है जो कि खेती मिट्टी में पोषक तत्वों को बढ़ाने और उसमें जैविक पदार्थों की पूर्ति को करने के लिए की जाती है।

हरी खाद की बुवाई का समय

हमारे देश में कई तरह की जलवायु पाई जाती हैं. सभी को अपने क्षेत्र के अनुसार फसल का चयन और बुवाई करनी चाहिए. फसल की बुवाई बारिश होने के तुरन्त बाद कर देनी चाहिए. अगर खेत में सिंचाई की सुविधा है, तो हरी खाद की बुवाई बारिश के शुरू होने से पहले कर दें. ध्यान रहे कि हरी खाद के लिए फसल की बुबाई करते वक्त खेत में पर्याप्त नमी होनी चाहिए

ढैंचा की उन्नत किस्में

- सी. एस. डी. 137
- सी. एस. डी. 123
- पन्त ढैंचा - 1
- पंजाबी ढैंचा - 1
- हिसार ढैंचा - 1

हरी खाद तैयार करने की विधि

- गेहूं की कटाई के बाद अप्रैल से मई के बीच खेत की सिंचाई कर पानी में ढैंचा का बीज छितरा लें.
- बाद में **10** से **15** दिनों में ढैंचा फसल की हल्की सिंचाई कर लें.
- खेत में करीब **20** दिनों में **25** कि. प्रति है. की दर से यूरिया को छिड़क दें. इससे नोडयूल बनने में सहायता मिलती है.
- करीब **55** से **60** दिनों में हल चला दें. बीज को छिड़कते है

इसके लिए सबसे पहले बीज को जुताई करके छिड़क दिया जाता है. ढैंचा के हरी खाद को प्रति हेक्टेयर **60** किलो बीज की काफी जरूरत होती है. इसमें मिश्रित फसल के अंदर **30** से **40** किलो बीज प्रति हेक्टेयर पर्याप्त होता है. यह वास्तव में किसानों के लिए काफी ज्यादा फायदेमंद होता है.

ढैंचा के पौधों का इस्तेमाल भी हरी खाद को तैयार करने में भी किया जाता है. हरे पौधे को बिना सडा गलाकर जब भूमि में नाइट्रोजन और जीवांश की मात्रा बढ़ाने के लिए खेत में जुताई के माध्यम से दबाया जाता है तो इस क्रिया को हरी खाद बनाना कहा जाता है। ढैंचा की हरी खाद **(1)** हरी खाद बनाने के लिए ढैंचा की बुवाई बारिश के मौसम में की जाती है। **(2)** इसके पौधे को किसी भी तरह की जलवायु और मिट्टी में उगाया जा सकता है। **(3)** इसकी खेती जल भराव वाली जगह पर भी की जा सकती है. क्योंकि इसका पौधा **60** सेंटीमीटर पानी भराव में भी आसानी से विकास कर लेता है. ढैंचा की किस्में **(1)** पंत ढैंचा **(2)** हिसार ढैंचा ये दो ढैंचा की ऐसी किस्में हैं जिनसे हरे खाद की अच्छी गुणवत्ता डेढ़ से दो महीने में मिट्टी को दी जा सकती है.

हरी खाद के लिए कटाई जब इसका पौधा **4** से **5** फिट लम्बाई का हो जाता है**,** तब इसके पौधों को तवे वाले हलों से जोतकर खेत में ही काट दिया जाता है।जिससे खेत में हरा खाद तैयार होता है। ढैंचा की खाद से मृदा में लाभ **(1)** इसकी एक से डेढ़ महीने की खेती से ही **20-25** टन हरी खाद और **85-100** किलो तक नाइट्रोजन भूमि को मिल जाती है. जिससे खेत की उर्वरक क्षमता काफी बढ़ जाती है.**(2)** खेत में हरी खाद बनाने से मिट्टी भुरभुरी होती है। **(3)** इसके अलावा भूमि में हवा का संचार अच्छे से होता है। **(4)** भूमि की जलधरण क्षमता, अम्लीयता और क्षारीयता में भी सुधार देखने को मिलता है। **(5)** हरे खाद के निर्माण से खेत में मृदा क्षरण में कम होता है।**(6)** भूमि में हरे खाद के इस्तेमाल से मिट्टी में पाए जाने वाले उपयोगी

सूक्ष्मजीवों की संख्या और उनकी क्रियाशीलता में वृद्धि हो जाती है. जिससे मिट्टी की उर्वरक क्षमता बढ़ जाती है।(7) मृदा जनित रोगों रोगों में कमी देखने को मिलती है. जिससे किसान भाइयों का अपनी खेती के लिए रासायनिक उर्वरको पर होने वाला खर्च भी कम हो जाएगा।

जमीन को होता फायदा

ढैंचा और सनई की खेती करने से जमीन को काफी ज्यादा फायदा होता है. इन सभी फसलों की जड़ों में ऐसी कई तरह की गांठे होती है जिनमें कई तरह के बैक्टीरिया होते है. यह वातावरण से नाइट्रोजन को खींचकर जमीन के अंदर बैठ जाते है. इन फसलों के पौधों को बाद में मिट्टी में मिलाकर दिया जाता है. इसके सहारे जमीन की उर्वरा शक्ति बढ़ जाती है.

ऐसे लगाए ढैंचा

यह एक प्रकार की दलहनी फसल होती है. यह हर प्रकार के जलवायु और मिट्टी में पैदा होती है. यह **60** सेमी तक आसानी से जल भराव को भी सहन कर लेती है. ऐसे में ढैंचा के तने से जड़ निकालकर मिट्टी में पकड़ मजबूत बना लेती है. यह इसको तेज हवा चलने पर भी गिरने नहीं देती है. अंकुरित होने के बाद यह सूखे को सहन करने की पूरी क्षमता रखती है. यह फसल क्षारीय और मृदा लवणीयों में भी अच्छी तरह से तैयार हो जाती है. ऊपर में ढैंचा से **45** दिन में **20** से **25** टन तक हरी खाद और **85-100** किलो तक नाइट्रोजन मिल जाता है. धान और सोयाबीन की बुवाई पहले ढैंचा को पलटने से खरपतवार पूरी तरह से नष्ट हो जाते है.

हरी खाद के लाभ

- इससे मिट्टी की संरचना में सुधार होता है.
- मिट्टी की उर्वरता बढ़ती है.
- सूक्ष्म जीवाणुओं की गतिविधियों को बढ़ावा मिलता है.
- फसल की जड़ों का फैलाव ठीक होता है.
- हरी खाद के गलने-सड़ने से कार्बन डाइआक्साइड गैस निकलती है, जोकि मुख्य फसल के पौधों को आसानी से बढ़ाती है.
- ढैंचा की फसल से अच्छी पैदावार प्राप्त होती है, जिससे उनके बीजों को बाजार में बेचने पर किसानों को अच्छी आय प्राप्त हो जाती है।
- यह फसल बहुत ही कम समय में तैयार हो जाती है।

- इस फसल से प्रति हेक्टेयर भूमि में **80** किलोग्राम नाइट्रोजन इकट्ठी हो जाती है।
- इस फसल को शुष्क व नम जलवायु तथा सभी प्रकार की भूमियों में उगा सकते हैं।
- ढैंचा की फसल से हमें हरी खाद प्राप्त होती है।

ढैंचा का उपयोग एवं महत्व

ढैंचा एक कम अवधि(**45** दिन)की हरी खाद की फसल है। गर्मियों के दिनों में **5- 6** सिंचाई करके ढैंचा की फसल को तैयार कर लेते हैं तथा इसके बाद धान की फसल की रोपाई की जा सकती है। ढैंचा की फसल से प्रति हेक्टेयर भूमि में **80** किलोग्राम नाइट्रोजन इकट्ठी हो जाती है। जुलाई या अगस्त में ढैंचा की फसल की बुआई कर, **45- 50** दिन बाद खेत में दबाकर, हरी खाद का काम इस फसल से ले सकते हैं। इसके बाद गेहूं या अन्य रबी की फसल को उगा सकते हैं। ढैंचा की फसल को शुष्क व नम जलवायु व सभी प्रकार की भूमियों में उगा सकते हैं। जलमग्न वाली भूमियों में ही यह **1.5- 1.8** मी. ऊंचाई तक बढ़वार कर लेता है। यह एक सप्ताह तक **60** सेंटीमीटर पानी में खड़ा रह सकता है। भूमि का पी.एच. मान **9.5** होने पर भी इसे उगा सकते हैं। अतः लवणीय व क्षारीय भूमियों के सुधार के लिए यह सर्वोत्तम है। भूमि का पी.एच. मान **10-5** तक होने पर लीचिंग अपनाकर या जिप्सन का प्रयोग करके इस फसल को उगा सकते हैं। इस फसल से **45** दिन की अवधि में लवणीय भूमियों में **200 - 250** क्विंटल जैविक पदार्थ भूमि में मिलाया जा सकता है।

अदरक की वैज्ञानिक खेती

जय प्रकाश[1] , अनिल कुमार[2], एस0 के0 वर्मा[3] एवं सियाराम[4]

विषय वस्तु विशेषज्ञ (कृषि प्रसार)[1], सहा. प्राध्यापक, सब्जी विज्ञान आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौ0 वि0वि0 कुमारगंज, अयोध्या[2], वरिष्ठ वैज्ञाानिक एवं अध्यक्ष[3], विषय वस्तु विशेषज्ञ (शस्य विज्ञान)[4]

कृषि विज्ञान केन्द्र, पचपेड़वा, बलरामपुर

भूमिका

अदरक प्रमुख मसालों में एक है इसकी खेती नगदी फसल के रूप में की जाती हैं। अदरक का वानस्पतिक नाम जीन्जीबर अदरक ओफीसीनेली है। अदरक के भूमिगत रूपांतरित तन अर्थात प्रकद का उपयोग किया जाता हैं। इन प्रकदो को फसल के खोदाई के बाद हरा तथा सुखाकर दानों ही रूपों में उपयोग करते हैं। ताजा अदरक व्यंजनों को खुशबूदार तथा चटपटा बनाने एवं मुरब्बा बनाने के काम आती है। चाय का स्वाद बढ़ाने के लिये विशेष तौर पर सर्दियों में अदरक का उपयोग किया जाता है। अदरक का उपयोग मसालों के रूप में सलाद अचार मुरब्बा चटनी आदि के रूप में किया जाता हैं। पकी गांठों को सुखाकर उनसे सोंठ तैयार किया जाता है। जिसका काफी मात्रा में विदेशी निर्यात किया जाता है। सबसे अधिक अदरक का उत्पादन भारत वर्ष में होता है। सभी देशों को मिलाकर जितना अदरक का उत्पादन होता है उसमें भारत वर्ष अकेले 33 प्रतिशत अदरक का उत्पादन करता है ।

औषधीय गुण

अदरक का प्रयोग सब्जियों को चटपटा बनाने के साथ गुणकारी बनाने में किया जाता हैं। यह घबराहट थकान प्यास आदि को शांत करके शरीर में ताजगी और ठंडक भरती है। कफ से ग्रस्ति लोगो के लिये अदरक काफी कारगर औषधि के रूप में उपयोग होता है । अदरक के उपयोग से छाती पर जमा सारा बलगम निकालकर बाहर करती है अतः खांसी नहीं बनने पाती है। सिरदर्द कमर के दर्द पेट दर्द बेचैनी घबराहट आदि छोटे-मोटे रोगों के लिये यह रामबाण औषधि है। अदरक को चुसते ही मुंह में लार ग्रन्थि अपना काम शुरू कर देती है। इससे कठ की खशखशाहट दूर होती है। स्त्रियों के लिये भी अदरक वरदान है। जिन युवतियों को मासिक धर्मए गर्भाधानए प्रसव के बाद स्तन में दूध न उतरने की शिकायत रहती है उनके लिये अदरक कीमती दवा से भी बड़ा काम करती है।

जलवायु

अदरक की अच्छी अपज के लिए थोड़ी गर्म तथा नम जलवायु होनी चाहिए। अदरक की अच्छी ऊपज के लिए 20 से 30 डिग्री से0 तापमान उपयुक्त होता है। इससे ज्यादा होने पर फसल पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। कम तापमान के कारण पत्तों तथा प्रकन्दों को नुकसान पहुँचता है। बोआई के अंकुर फूटने तक हल्की नमीए फसल बढ़ते समय मध्यम वर्षा तथा फसल के उखाड़ने के एक माह पहले शुष्क मौसम होना चाहिए।

भूमि

अदरक की अधिक ऊपज के लिए हल्की दोमट या बलूई दोमट भूमि उयुक्त होती है। 60 से 7–5 पी0 एच0 मान वाली भूमि में अदरक की अधिक पैदावार होती है। अदरक के खेती के लिए ऊँची जमीन एवं जल निकासी की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए। भारी एवं क्षारीय भूमि में अदरक का उत्पादन अच्छा नहीं होता है। अदरक उत्पादन के लिए फसल चक्र अपनाना अति आवश्यक है।

भूमि की तैयारी

अदरक की खेती के लिए एक बार मिट्टी पलटने वाली हल से जुताई करने के बादए चार बार देशी हल या कल्टीवेटर से जुताई करते हैं। प्रत्येक जुताई के बाद पाटा अवश्य लगाना चाहिए। जिससे मिट्टी भूरभूरी हो जाए। अंतिम जुताई से 3 से 4 सप्ताह पूर्व खेत में 250 से 300 क्विंटल सड़ी हुई गोबर का खाद देते है। गोबर का खाद देने के बाद एक या दो बार खेत की जुताई कर गोबर के खाद को मिट्टी में मिला देते हैं।

बोआई की विधि

क्यारी विधि

इस विधि में 120 मीटर चौड़ी तथा 30 मीटर लम्बी उभारयुक्त क्यारियाँ जो जमीन की सतह से 15.20 से0मी0 ऊँची हो। प्रत्येक क्यारी के चारो तरफ 50 से0मी0 चौड़ी नाली बनानी चाहिए। क्यारी में 30.20 से0मी0 दूरी पर 8.10 से0मी0 की गहराई में बीज की बोआई करनी चाहिए। यह विधि जहाँ जलभराव होता है वैसे जगह पर इस विधि से बोआई करनी चाहिए।

मेड़ विधि

इस विधि में 60 से0मी0 की दूरी पर तैयार खेत में 20 से0मी0 दूरी पर बीज की बोआई करने के बाद मिट्टी चढ़ाकर मेड़ बनावें। इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि बीज 10 से0मी0 गहराई में हो जिससे बीजों का अंकुरण अच्छा हो यह विधि जहाँ पर जल जमाव की संभावना होती है वैसी जगह इस विधि से अदरक की खेती की जाती है ।

समतल विधि

यह विधि हल्की एवं ढ़ालू भूमि में अपनाई जाती है। इस विधि में 30 से0मी0 पंक्ति एवं 20 से0मी0 गांठ से गांठ या पौधे की दूरी तथा 8.10 से0मी0 की गहराई में बोआई की जाती है। जहाँ पर जल जमाव की संभावना नहीं होती है वैसे जगह पर इस विधि से खेती करते हैं।

अदरक की उन्नत किस्में

सुरुचि, सुरभी, नदिया, सुप्रभा **जोरहट रीयो-डी जेनेरियोए मननटोडी एवं मरान उपयुक्त किस्में हैं।**

नदिया - यह किस्म बिहार के लिये उपयुक्त है यह 8 से 9 माह में तैयार हो जाती है इसकी ऊपज क्षमता 200 से 250 क्विंटल प्रति हेक्टर होती है।

मरान - यह एक अच्छी किस्म है इसकी ऊपज क्षमता 175 से 200 क्विंटल प्रति हेक्टर होता है साथ ही इस किस्म में मृदु विगलन रोग नहीं लगता है।

जोरहट -यह असम की लोकप्रिय किस्म है इसकी ऊपज क्षमता 200.225 क्विंटल प्रति हेक्टर है यह 8 से 10 माह में तैयार हो जाती है।

सुप्रभा - यह किस्म 225 से 230 दिन में तैयार हो जाती है। इस किस्म में अधिक किर्लें (टोलरिंग) निकलते हैं प्रकद का सिरा मोटाए छिलका सफेद एवं चमकदार होता है। इस किस्म की ऊपज क्षमता छिलका 200–230 क्विंटल प्रति हेक्टर है। यह किस्म प्रकन्द विगलन रोग के प्रति सहनशील है।

सुरुचि - यह किस्म हल्के सुनहले रंग की होती है एवं 230–240 दिन में तैयार हो जाती है। इस किस्में की ऊपज 200–225 क्विंटल प्रति हेक्टर है। यह किस्म प्रकन्द विगलन रोग के प्रति निरोधक है ।

सुरभि - इसके गांठ काफी आकर्षक होते हैं। यह 225–235 दिन में तैयार हो जाती है। इसकी ऊपज क्षमता 200–250 क्विंटल प्रति हेक्टर है। यह किस्म भी प्रकन्द विगलन बीमारी के प्रति सहनशील है।

खाद एवं उर्वरक

अदरक लम्बी अवधि की फसल है तथा ज्यादा खाद चाहने वाली होती है। अतः अधिक ऊपज के लिये गोबर की सडी खाद 250–300 क्विंटल / हेक्टर नत्रजन फास्फोरस वा पोटाश कृमशः 80–100, 50–60 एवं 100 किलोग्राम/ हेक्टर की दर से खेत में डालें। गोबर खाद रोपाई से 20.30 दिन पहले तथा फास्फोरस एवं पोटाश की पूरी मात्रा खेत तैयार करते समय जबकि नेत्रजनित खाद को तीन बराबर भाग में बाँटकरए पहला भाग रोपाई से 40 से 45 दिन बाद या दो से अधिक पत्तियाँ होने के बाद दूसरा भाग 80 से 90 दिन बाद तथा तीसरा भाग 100 से 120 दिन बाद देना चाहिए। नत्रजनित उर्वरक का प्रयोग करते समय खेत में भरपूर नमी होनी चाहिए। बिहार में जिंकए बोरान (सुहागा) एवं लोहा की मिट्टी में कमी पायी गई है अतः मिट्टी का परीक्षण कराने पर सूक्ष्म तत्वों की कमी हो तो मिट्टी में रोपाई के पहले जिक सल्फेट एवं बोरेक्स का कमशः 20–25 एवं 10–12 किलो प्रति हेक्टर दें। आयरन की कमी की अवस्था में 0–5 से 0–8 प्रतिशत का घोल बनाकर उसमें 25 से 30 बून्द नींबू का रस डालकर दो छिड़काव करे। पहला छिड़काव रोपाई से 60 दिन के बाद तथा दूसरा रोपाई से 90 दिन के बाद करें।

कन्द (गांठ) की बोआई

बीज प्रकन्द मध्यम आकार के जिनका भार 20–25 ग्राम तथा 2–3 आँखो वाली ही कन्द का चुनाव करना चाहिए। बीज प्रकन्द स्वस्थ बीमारी वा कीट रहित होनी चाहिये । प्रति हेक्टर 18–20 क्विंटल कन्द की जरूरत होती है। कन्दो को इण्डोफिल एम-45 का 25 ग्राम एवं स्ट्रेप्टो-साइक्लिन (ग्राम प्रति लीटर पानी के मिश्रित घोल में या रोडोमिल के 2 से 2–5 ग्राम प्रति लीटर पानी के दर से घोल बनाकर आधा घंटे तक उपचारित करें। तत्पश्चात छाया में सुखाकर रोपाई करें। जिन

इलाकों में सूत्रकृमि का प्रकोप हो वहाँ पर नीम की खल्ली 25 क्विंटल या थिमेट 10 जी० 12 किलोग्राम प्रति हेक्टर की दर से खेत की तैयारी करते समय डालें। रोपाई 30 × 20 से०मी० की दूरी एवं 8.10 से०मी० गहराई पर करे। रोपाई का उचित समय 15 से 31 मई है। लेकिन विशेष परिस्थिति में इसकी रोपाई 20 जून तक की जा सकती है।

पलवार

रोपाई के बाद शीशम की हरी पत्ती या अन्य चीजों की मोटी तह बिछाकर ढ़क देना चाहिए। इससे मिट्टी में नमी बनी रहती है तथा कन्दों का अंकुरण सामान्य रूप में होता है तथा तेज धूप से अंकुरण का बचाव होता है। साथ ही खरपतवार कम निकलते हैं एवं ऊपज भी अधिक प्राप्त होती है।

सिंचाई

अदरक बरसात वाली फसल है इसलिए इसकी सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है लेकिन अक्टूबर-नवम्बर माह में वर्षा नहीं होने की परिस्थिति में सिंचाई करना आवश्यक हो जाता है क्योंकि अक्टूबर-नवम्बर माह में अदरक का गांठ बनता तथा उसका विकास होता है इसलिए अक्बूबर-नवम्बर माह में खेतों अधिक नमी होनी चाहिए।

फसल-प्रबंधन

रोपाई के दो से तीन माह बाद क्यारियों में निकाई-गुडाई कर मिट्टी चढ़ानी चाहिये। अदरक में खरपतवारनाशक दवाईयों का जयादा इस्तेमाल नहीं किया जाता है क्योंकि लम्बे समय की फसल होने के कारण रोपाई से पहले या तुरन्त बाद के छिड़काव से अच्छे परिणाम नहीं मिले हैं।अदरक की फसल सामान्यतः 8.9 महीनों में तैयार होती हैं जब पौधे की पत्तियाँ पीले पड़नी शुरू हो जाये तब खुदाई करनी चाहिए। जिन इलाकों में पाला नहीं पड़ता है वहां इसे कुछ दिन बाद भी खुदाई की जा सकती है। खुदाई के बाद इसे 2.3 दिन तक छाया में सुखायें। एक हेक्टर क्षेत्र में औसत 100 से 150 क्विंटल पैदावार होती है। कुछ किसानो को अच्छा भाव मिलने पर समय से पहले ही अदरक को उखाड़ लेते हैं ऐसी स्थिति में उखाड़ी गयी अदरक ज्यादा दिन तक अच्छी दशा में नहीं रहती हैं। अतः इसे तुरन्त बेच दें या इस्तेमाल कर लेना चाहिए। भण्डारण के लिये रखने वाली अदरक की कमी भी समय से पहले नहीं निकालना चाहिए।

भण्डारण

ज्यादातर अदरक अगले वर्ष में रोपाई हेतु भण्डारित किये जाते हैं। इसके लिये स्वस्थ्य वा बीमार रहित गांठ को छांट करके इन्डोफिल एम-45 का 2–5 एवं स्ट्रेप्टो-साइक्लिन 1–4 ग्राम प्रति लीटर पानी के हिसाब से मिश्रित घोल में उपचारित करके 48 घंटे तक छाया में सुखाने के बाद गडढों में रखें। गडढों में गांठ को रखने के बाद पुआल या लकड़ी के तख्तों से ढ़ककर तख्तों को गोबर से लेप दें लेप करते समय छोटी मुँह हवा निकास के लिए अवश्य रखें। हवा निकास के लिये सुराख वाली पाईप या नाली का भी इस्तेमाल किया जाता है जिसका एक मुँह गडढों से बाहर होना चाहिए।

भिण्डी की वैज्ञानिक खेती

आदित्य शर्मा एवं डॉ. हेमलता पन्त
शोध छात्र एवं असिस्टेन्ट प्रोफेसर
जन्तु विभान विभाग, सी.एम.पी. पी.जी. कालेज, प्रयागराज, (उ0प्र0), भारत

परिचय :–

भिण्डी (एबेलमोशस एस्कुलेंटस) जो कि एक मालवेसी कुल का पौधा है जिसकी खेती दुनिया भर में की जाती है इसका उत्पादन मुख्यतः सब्जी के लिए किया जाता है। भिण्डी का पौधा लगभग एक मीटर लम्बा तथा रोमो से युक्त होता है इसके फल अंगुली के समान लम्बे हरे रंग के होते है इसलिए इसे अंग्रेजी में (ladies finger) के नाम से जाना जाता है। भिण्डी के अंदर सफेद रंग के गोलाकार, चिपचिपे द्रव युक्त अनेक बीज होते है। गर्मी तथा बरसाती मौसम की सब्जियों में भिण्डी एक प्रमुख सब्जी है इसमें प्रचुर मात्रा में प्रोटीन, वसा, रेशा, कैल्शियम, मैगनीशियम, फास्फोरस, सोडियम, पोटेशियम, सल्फर, कॉपर, लोहा इत्यादि जैसे **पोषक** तत्व एवं खनिज पाये जाते है। इसके अतिरिक्त इनमें रीबोफ्लेविन, निकोटिनिक अम्ल, एस्कॉर्बिक अम्ल जैसे विटामिन की भी उपयुक्त मात्रा पायी जाती है। भिण्डी की खेती लगभग सालोभर की जाती है। इसकी फसल के लिए 25^0 से 30^0 सेंटीग्रेड का तापमान सबसे अच्छा होता है।

प्रजातियाँ :–

भिण्डी की बहुत सी प्रजातियाँ पायी जाती है जैसे लम्बी प्रजातियाँ, मध्य लम्बी प्रजातियाँ, बोनी प्रजातियाँ, कॉंटेदार, बिना कॉंटेदार, धनुआ, सतपनी, वेल्वेट ग्रीन, लांग ग्रीन, लखनऊ ड्वार्फ, पूसा सलेक्शन, वैशाली वधू, रेड वन्डर इत्यादि है इसके अतिरिक्त भारतीय कृषि अनुसन्धान द्वारा प्रस्तावित भिण्डी की कुछ उन्नत किस्में है जैसे पूसा मखमली, पूसा सावृनी, पंजाब पदमनी, कल्याणपुर –1,2,3,4 कोइम्बटूर–1 इत्यादि हैं।

फसल चक्र :–

1. भिण्डी–मटर–प्याज
2. भिण्डी–फूलगोभी–ग्वार
3. भिण्डी–मटर–मिर्च
4. भिण्डी–मूली–प्याज
5. भिण्डी–आलू–राजमा
6. लोबिया–मटर–भिण्डी
7. ग्वार–मटर–भिण्डी

जलवायु एवं मिट्टी :–

भिण्डी लम्बे एवं गर्म मौसम वाली फसल है। इसकी खेती सभी प्रकार की भूमि में की जाती है लेकिन बलुई दोमट या दोमट मिट्टी इसकी खेती के लिए विशेष उपयुक्त है। 6 से 8 पी. एच. मान मिट्टी इस फसल के लिए अच्छी होती है।

बोने का समय :–

मैदानी भागों के लिए ग्रीष्म ऋतु की फसल को जनवरी से मार्च में और व**र्षा** ऋतु की फसल को जून–जुलाई में बोना चाहिए। वहीं पर्वतीय क्षेत्रों के लिए अप्रैल से जुलाई माह में बोना चाहिए।

बीज एवं बुआई :–

बीज दर **ग्रीष्म** ऋतु की फसल के लिए 18–20 किग्रा0 तथा व**र्षा** ऋतु की फसल के लिए 10–12 किग्रा0 बीज प्रति हेक्टेयर पर्याप्त है।

ग्रीष्म ऋतु में बीज की बुआई के पहले बीज को 24 घंटे पानी में भिगोकर एवं अंकुरण कराकर करनी चाहिए। **ग्रीष्म** ऋतु में इसके बीजों की बुआई **45×30** सेंमी (कतार से कतार की दूरी 45 सेमी0 तथा पौधे से पौधे की दूरी 30 सेमी0 तथा पौधे से पौधे की दूरी 45 सेमी0) पर करें। एक स्थान पर एक या दो बीज की बुआई करनी चाहिए। फसल की सिंचाई के लिए मेढ़ व नाली बुआई से पूर्व बना लें।

खाद एवं उर्वरक :–

भिण्डी की अच्छी उपज हेतु सही और संतुलित मात्रा में खाद एवं उर्वरक का व्यवहार मिट्टी के जांच के उपरान्त ही करना चाहिए। इसकी खेती में कम्पोस्ट 150–200 किंवटल प्रति हेक्टेयर या 60–80 किंव. /हेक्टेयर वर्मी कम्पोस्ट, यूरिया 200–350 किग्रा0 तथा पोटाश 80–100 किग्रा0 प्रति हेक्टेयर।

निकाई–गुड़ाई एवं सिंचाई :–

बोने के समय यदि नमी की कमी हो तो एक हल्की सिंचाई करके बोवाई करनी चाहिये। इसके बाद गर्मियों में एक सप्ताह के अन्तर पर तथा **वर्षा** में जब पानी की आवश्यकता हो सिंचाई करते रहना चाहिये।

खेत को निकाई करके खरपतवारों से मुक्त रखना चाहिये। **ग्रीष्म** ऋतु की फसल में 3–4 गुड़ाई तथा **वर्षा** ऋतु की फसल में 2–3 गुड़ाई करना चाहिये। **वर्षा** की फसल में मिट्टी भी चढ़ा देनी चाहिये।

कटाई :–

भिण्डों की प्रथम फली बनने के बाद प्रत्येक दूसरे तीसरे दिन फलियों की तोड़ाई कर लेनी चाहिये। तोड़ाई करने का सबसे अच्छा समय फूल खुलने के 6–7 दिन बाद होता है लेकिन यह जातियों के अनुसार बदलता रहता है। यदि फलियों को जल्दी न तोड़ा गया तो पौधे की वृद्धि एवं फलियों के लगने की क्षमता के ऊपर बुरा प्रभाव पड़ता है।

पैदावार :–

ग्रीष्म ऋतु की फसल से पैदावार 50 किंवटल प्रति हेक्टर तथा **वर्षा** की फसल से 100 क्विंटल उपज प्रति हेक्टर प्राप्त हो जाती है।

बीज उत्पादन :–

बीज प्रायः **वर्षा** की फसल से तैयार किया जाता है जिसकी पैदावार 10–12 क्विंटल बीज प्रति हेक्टर होती है। बीज पैदा करने वाले फलों को पौधों पर छोड़ देते हैं जब फलियाँ पक जाती हैं तो उनमें दरारें पड़ जाती है। तत्पश्चात् फलियों को तोड़कर बीज निकालकर सुरक्षित कर लेते हैं।

कीट– पोस्ट :–

1. **जैसिड्स :–** यह कीड़े पत्तियों का रस चूसते है जिससे पत्तियाँ मुड़कर गिरने लगती है। इसकी रोकथाम के लिए इन्डोसल्फान 35 ई0 सी0 का 0.05% या 0.02% इन्ड्रिन घोल का छिड़काव करना चाहिए।

2. **काटन बाल वार्म** :— यह फसल की अन्तिम अवस्था में आक्रमण करता है और यह भिण्डी के फली को नुकसान पहुँचाता है। इसकी रोकथाम के लिए इन्ड्रिन 0.02% का छिड़काव करना चाहिए।

बीमारियाँ :—

1. **यैलो वेन मोजेक** :— यह एक वाइरस बीमारी है जिसके कारण पत्तियाँ तथा फल पीले पड़ जाते है। रोकथाम हेतु रोग ग्रसित पौधे को उखाड़ कर जला देना चाहिये अथवा मेटासिसटाक्स 25 ई. सी. के 1 लीटर मात्रा को 1000 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टर की दर से छिड़काव करना चाहिए।
2. **पाउडरी मिल्डयू** :— यह एक प्रकार का कवक रोग है। जिसमें पत्तियों की निचली सतह पर सफेद पाउडर के समान पदार्थ जमा जो जाता है साथ ही पत्तियाँ पीली होकर गिरने लगती है। इसके रोकथाम हेतु 25 किलो0 सल्फर का बुरकाव करना चाहिए अथवा 0.06% केराथान के घोल का 15 दिन के अन्तर पर 2—3 बार छिड़काव करना चाहिए।
3. **जड़ गाँठ सूत्रकृमि** :— यह सूत्रकृमि जड़ ऊतकों के कार्यों में बाधा पहुँचाते है जिससे जड़े मिट्टी से उचित **पोषण** एवं पानी नही ले पाती। जिससे पौधे की वृद्धि रूक जाती है। पत्तियाँ पीली पड़ जाती है तथा **शाखायें** कम निकलती है। इनके रोकथाम के लिए नीम, गेंदा, धतूरा की पत्तियों का अर्क का प्रयोग करने से सूत्रकृमि की संख्या कम हो जाती है अथवा हमें जैव नियंत्रक कारकों जैसे ट्राइकोडर्मा विरिडी, ट्राइकोडर्मा हारजिएनम, पेसिलोमाइसीज लिलासिनस, एस्पजिलस नाइजर, वर्टीसीलियम क्लेमाइडोस्पोरियम, पेनिसीलियम नोटेटम, वाम, बैसिलस थ्यूरेनजिएसिस एवम् बीबैरिया बैसियाना आदि के प्रयोग से जड़ गाँठ रोग को रोका जा सकता है। इसके अतिरिक्त हमें भिण्डी की रोगरोधी प्रजातियों जैसे :— के. एस. — 381, के. एस. — 114 तथा के. एस. एल. — 380 का प्रयोग करना चाहिए।

खाद्य सुरक्षा : शुष्क क्षेत्रों में उन्नत खेसारी उत्पादन एवं सुरक्षित उपभोग

प्रदीप कुमार, राम गोपाल, विद्या सागर एवं राम जीत
कृषि विज्ञान केन्द्र, पांती, अम्बेडकर नगर

खेसारी (*Lathyrus sativus* L.) अति प्राचिन काल से स्थानीय तौर पर उगाई जाने वाली खेसारी एक महत्वपूर्ण दलहन फसल है। भारत में छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, बिहार, उड़ीसा, पश्चिम बंगाल और उत्तर प्रदेश प्रमुख राज्य है। जिनमें इसकी खेती की जाती है। जब अन्य फसल प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण असफल हो जाती है, तब खेसारी एक उत्तम उपलब्ध खाद्य स्रोत हो सकता है। देश में 0.47 लाख टन की वार्षिक उत्पादन के साथ 0.9 लाख हेक्टेयर के क्षेत्र में इसकी खेती है। यह मुख्य रूप से दाल, अरहर दाल, चना और बेसन के साथ मिलावट के रूप प्रयोग किया जाता है। साथ ही इसका उपयोग साग के रूप में तथा धान पुआल के साथ पशुओं के चारे के रूप में भी होता है। इसके बीज में स्टार्च 48.0–52.3% और प्रोटीन 25. 6–31.6% की अच्छी मात्रा होती है, और इस प्रकार यह पोषण सुरक्षा हेतु एक उत्तम उपलब्ध खाद्य स्रोत है। किन्तु खेसारी का उपयोग एक न्यूरोटॉक्सिन की उपस्थिति के कारण कम होता था, परन्तु आज रतन, प्रतीक इत्यादि प्रभेदों के आ जाने से इसका उत्पादन पुनः किसान करने लगे है। खेसारी एक फलीदार फसल होने के कारण वायु मंडलीय नाइटोजन को भी स्थिर करती है, तथा मिट्टी में कार्बन और कार्बनिक पदार्थ में सुधार भी करती है, इस प्रकार खेसारी सामूहिक रूप से मिट्टी के स्वास्थ्य में सुधार कर टिकाउ उत्पादन प्रणाली हेतु आधार भी प्रदान करता है।

भारत में खेसारी उत्पादन की मुख्यतः 3 प्रणालियाँ विद्यमान हैं–

- **मिश्रित फसल**– परंपरागत तौर पर खेसारी को अन्य रबी फसलों के साथ मिश्रित और अन्तराल सस्य फसल के रूप में भी उगाया जाता है। इस प्रकार प्रमुख फसल के विफल होने का जोखिम कम हो जाता है। क्योंकि इस विधि में एक ही क्षेत्र से एक समय में एक ही एक से अधिक फसलों का उत्पादन कर सकते है। आम तौर पर गेंहूँ, चना, जौ, अल्सी, सरसों और गन्ने साथ खेसारी को साथी फसल के रूप में मिश्रित किया जाता है।
- **उटेरा प्रणाली (रिले क्रापिंग)**– यह भारत के धान आधारित कृषि क्षेत्रों में सबसे प्रचलित खेती प्रणाली है। किसान अपनी फसल की कटाई से 15–20 दिनों पहले धान की खड़ी फसल में खेसारी के बीज का छिड़काव करते हैं।
- **एकल फसल** – वर्षा आधारित क्षेत्रों में वर्टेसोल प्रकार की मृदा में जहां सिंचाई का पानी सर्दियों की फसलों के लिए उपलब्ध नहीं है, उचित जुताई के बाद सर्दियों के दौरान खेसारी की खेती की जाती है।

खेसारी उत्पादन तकनीक

बीज दर :– उतेरा/पैरा खेती की बजाय 42–50 किलो हेक्टेयर की दर से धान की फसल की कटाई के बाद, जीरो टिलेज मशीन द्वारा बुआई करनी चाहिए इससे बेहतर पैदावार प्राप्त होती है।

बुआई विधि एवं बीजोपचार:– बुआई से पहले कवकनाशी और राइजोबियम के साथ बीज उपचार करने के लिए सुनिश्चित करें जिससे बढ़िया अंकुरण हो सके और उच्च उपज प्राप्त हो सके। बीज उपचार के लिए

कार्बेन्डाजिम (1 ग्राम/किग्रा बीज) + थिरम (2 ग्राम /कि.ग्रा. बीज) का प्रयोग मिट्टी जनित रोग अर्थात उकठा, विगलन के प्रबंधन के लिए किया जाना चाहिए तथा राइजोबियम के साथ (15–20 ग्राम/कि.ग्रा. बीज) बीजोपचार करना चाहिए।

उन्नतशील प्रजातियां :–

क.सं.	प्रजाति	β-ODAP (%)	औसत उपज (कु./हे.)
1.	रतन	0.05	25.30
2.	महातिवरा	0.07	15.50
3.	प्रतीक	0.08	15.60
4.	निर्मल	0.15	15.00
5.	पूसा –24	0.20	16.55
6.	स्थानीय	0.50–2.50	4.55–6.40

पोषण उर्वरकः–

नत्रजन : फास्फोरस : पोटाश : गंधक का प्रयोग 20:50:30:20 कि.ग्रा./हे0 की दर से प्रयोग किया जाना चाहिए। जिन क्षेत्रों में एस एस पी का प्रयोग किया जाता है वहाँ अलग से गंधक प्रयोग करने की कोई जरूरत नहीं है। गुणवत्तायुक्त गोबर की खाद/हरी खाद का प्रयोग (5 टन/हे0) जैविक घटक के रूप में किया जाना चाहिए।

खरपतवार प्रबंधनः–

खरपतवार नियंत्रण हेतु शाकनाशी पेन्डिमेथिलिन पी. ई./ 1.5 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व/हे. बुआई के तुरंत बाद एवं कुवीनजलोफोप एथिल (टरगा सुपर) 40–50 ग्राम/हे. की दर से बुआई के 15–20 दिन बाद प्रयोग करना चाहिए अथवा हाथ से एक निराई करनी चाहिए।

कीट एवं रोग प्रबंधनः–

माहूँ प्रबंधन के लिए 5 % कच्चे नीम सत्व या 2% नीम तेल या डाइमेथोएट 30 ई. सी. (1.7 मि.ली. /ली.) अथवा एमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस एल / 0.2 मि.ली./ली. का स्प्रे किया जाना चाहिए। जैव नियंत्रण के लिए कोक्सिनेलिड भवरे (बीट्लस), उनके गृब्स और क्रिसोपर्ला का प्रयोग किया जा सकता है। चूर्णिल आसिता (च्वूमत डपसकमू) के नियंत्रण के लिए सल्फेक्स/थायोविट का 3 कि.ग्रा./हे. अथवा कार्बेन्डाजिम 50 डब्लू पी / 1 ग्राम/ली. या इसके अतिरिक्त युकलिप्टस पत्तियों के 10 % सत्व का प्रयोग किया जा सकता है। मृदुरोमिल आसिता के लिए कार्बेन्डाजिम कवकनाशी से बीजोपचार करनी चाहिए।

खेसारी का सुरक्षित उपभोगः

खेसारी मनुष्य और पशुओं के लिए प्रोटीन के स्रोत के अलावा एक प्राकृतिक एंटीऑक्सीडेन्ट की भी स्रोत है जो हृदय रोगों और कैंसर के जोखिम को कम करता है। खेसारी को एक उत्तम खाद्य और फीड के रूप में सुरक्षित बनाने की जरूरत है। यह उद्धेश्य दो संभव तरीकों के माध्ययम के किया जा सकता है।

(क) आनुवांशिक :– इस विधि मे कम न्यूरोटॉक्सीन वाली लाइनों के लिए प्रजनन एवं चयन शामिल है, उच्च उपज के साथ कम ODAP लाइनों को विकसित किया जाता है। और भारत मे खेसारी के लिए इन प्रजातियों को प्रोत्साहित किया जा रहा है।

(ख) भौतिक रासायनिक :– इसमें मुख्यतया न्यूरोटॉक्सिन निस्तारण के सरल और कारगर तरीकों में गृहिणियों को शिक्षित किया जाना शामिल है।

1. खेसारी दाल/बीजों को एक घंटा अवधि के लिए पानी में उबाल कर पानी को फेक दें, इस प्रकार 95 प्रतिशत तक न्यूरोटॉक्सिन निछार के साथ निकल जाता है।
2. दाल/बीजों को रात भर सादे पानी अथवा 5 प्रतिशत चूने को पानी में भिगोकर रख दें तथा निछार को फेंक देने के पश्चात भोज्य पदार्थ बनाने में प्रयोग करें।
3. 150 सेंटीग्रेड ताप पर बीजों को भूनने से भी न्यूरोटॉक्सिन का निस्तारण होता है किन्तु इससे खेसारी में उपलब्ध अमीनों एसिड एवं प्रोटीन का भी ह्रास हो जाता है।
4. चावल पारबोइलिंग के समान खेसारी बीजों की पारबोइलिंग करें।
5. खेसारी के पत्तों का साग के रूप में सेवन प्याज, लहसुन, अदरक और अनाज के साथ –साथ करना चाहिए।

खेसारी उत्पादन में प्रमुख बाधाएँ:–

1. उन्न्त किस्मों एवं गुणवत्ता के बीजों की अनुपलब्धता:– भारत में खेसारी की कुछ ही उच्च उपज और कम न्यूरोटॉक्सिन वाली किस्मों को जारी किया गया है। जिन की जानकारी हमारे किसान भाइयों को उपलब्ध नहीं है। कम न्यूरोटॉक्सिन वाली उन्न्त किस्म उनके बीज भी किसानों को उपलब्ध नहीं है।
2. अपर्याप्त पादप संख्या :– कम पादप आबादी अधिकतम उपज प्राप्त करने के लिए एक प्रमुख बाधा है। फसल बुआई और विकास के चरणों में पानी तनाव/जल भराव/अत्यधिक नमी, परिपक्वता के समय कम पादप संख्या का प्रमुख कारण है।
3. पौध संरक्षण :– काला माहूँ और एक प्रकार की सूड़ी (कलिओथ्रिप्स इंडिकस) प्रमुख चूर्णिल आसिता और मृदुरोमिल आसिता प्रमुख रोग है, जिनके कारण उपज में अत्यधिक नुकसान होता है। तथा आमतौर पर पौध संरक्षण के उपायों पर कोई ध्यान नहीं रखा जाता है।
4. बेहतर उत्पादन प्रद्यौगिकी के लाभ के बारे में किसानों के बीच जागरूकत्ता की कमी है।

मत्स्य उत्पादन हेतु तालाब प्रबन्धन

प्रमोद कुमार[1], ए0के0 पान्डेय[2] एवं एस0के0 वर्मा[3] एवं सियाराम[4]
वि0 व0 वि0 (मत्स्य)[1], वि0 व0 वि0 (कृषि अभि0)[2], वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष[3],
वि0 व0 वि0 (शस्य विज्ञान)[4] कृषि विज्ञान केन्द्र, पचपेड़वा, बलरामपुर

भारत, जल कृशि के क्षेत्र में अपनी जड़े मजबूत कर रहा है। भारत के कई राज्य मीठा पानी जल कृशि को अपना रहे है। क्योंकि भारत में मीठे पानी का क्षेत्र, तालाबो, जल कुण्डो, नहरों जलाशयो, झीले बड़ी मात्रा में उपलब्ध है। विश्व में कार्प मछलियों की मांग दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। इन मछलियों में प्रोटीन की मात्रा 30–45 प्रतिशत होने के कारण इनका मानव जाति के आहार में एक उच्च स्थान बनता जा रहा है। देश की बढ़ती जनसंख्या को ध्यान में रखते हुए तथा खाद्य पदार्थो की बढ़ती हुई मांग की पूर्ति के लिए यह आवश्यक हो गया है, कि ऐसे जल संसाधनो का प्रयोग अतिरिक्त खाद्य उत्पादन के लिए किया जाए। मछली पालन द्वारा ग्रामीण वर्ग अपनी आर्थिक तथा सामाजिक दशा को सुधारने के साथ बेरोजगारी की समस्या को भी समाप्त करने में सहायता कर सकता है। ऐसी परिस्थिती में अधिक से अधिक मछली उत्पादन करने के लिए आम तौर पर ऐसी विधियां जो कृशि विधियों के अनुरूप है अपनायी जा सकती है।

मत्स्य पालन के विविध तरीकेंः–

1. **विस्तृत पालन**
2. **अर्धसघन पालन**
3. **सघन पालन**

तालाब का क्षेत्रफलः– मत्स्य पालन हेतु 0.2 हेक्टेयर से 5.0 हेक्टेयर तक के ऐसे तालाबों का चयन किया जाना चाहिए जिनमे वर्श भर 8–9 माह पानी भरा रहे। जल आपूर्ति के साधन होने के साथ तालाब में वर्श भर 1 से 2 मीटर पानी अवश्य बना रहे।

तालाब का चुनावः– तालाब ऐसे क्षेत्रों में चुने जाये जो बाढ़ से प्रभावित न हो, तालाब तक आसानी से पहुंचा जा सके। बन्धों का कटा, फटा व ऊँचा होना तट का असमान होना, पानी आने जाने के रास्तो का न होना आदि कमियां तालाब में पायी जाती है। जिन्हे सुधार कर दूर किया जा सकता है।

सावधानियाः– तालाब के बन्धे बाढ़ स्तर से ऊँचे रखने चाहिए पानी के आने व निकास के रास्ते में जाली की व्यवस्था आवश्यक है ताकि पाली जाने वाली मछलियां बाहर न जा सके व अवाछनीय मछलियां तालाब में न आ सके। तालाब का सुधार कार्य माह अप्रैल व मई तक अवश्य करा लेना चाहिए तालाब में बंधे मे दोनो ओर के ढ़लानो हेतु आधार व ऊचाई का अनुपात 2:1 या 1.5:1 होना उपयुक्त है जो मिट्टी की गुणवत्ता पर निर्भर करता है।

तालाब प्रबन्ध व्यवस्थाः– मत्स्य पालन हेतु चिकनी मिट्टी व चिकनी दोमट मिट्टी जिसकी जल धारण क्षमता अधिक होती है तालाब के लिए उपयुक्त है मिट्टी का पी.एच. 6.5–8.0, आर्गनिक कार्बन 1 प्रतिशत तथा मिट्टी में रेत 40 प्रतिशत, सिल्ट 30 प्रतिशत व क्ले 30 प्रतिशत होना चाहिए। पुराने तालाब में मत्स्य पालन प्रारम्भ करने से पूर्व यह अति आवश्यक है कि मछली का बीज डालने के लिए तालाब पूर्ण रूप से उपयुक्त है

या नही जिनकी तैयारी निम्न विधियो से करते है।

1. **अनाव�यक जलीय–पौधों का उन्मूलनः** तालाब में आवश्यकता से अधिक जलीय पौधों का होना मछली की अच्छी उपज के लिए हानिकारक है। सामान्यतः तालाबों में जलीय पौधे तीन प्रकार के होते हैं– एक पानी की सतह वाले जैसे जलकुम्भी, लेमना आदि, दूसरे जड़ जमाने वाले जैसे कमल इत्यादि और तीसरे जल में डूबे रहने वाले जैसे हाइड्रिला नाजा आदि। अधिक जलीय वनस्पति होने की दशा में 2–4डी सोडियम लवण टेफीराइड, हेक्सामार व फरनेक्शन 8–10 किग्रा/हे0 जल क्षेत्र में प्रयोग करना चाहिए। कुछ जलमग्न पौधे ग्रास कार्प मछली का प्रिय भोजन होते है। अतः इनकी रोकथाम ग्रास कार्प मछली पालकर की जा सकती है। एल्गलब्लूम या काई हेतु कापर सल्फेट 0.2–1 मिली/ली0 का प्रयोग लाभ कारी है।

अवांछनीय मछलियों का उन्मूलनः पुरानें तालाबों में बहुत से अनावश्यक जन्तु जैसे कछुआ, मेढ़क, केकड़े और मछलियाँ जैसे सिधरी, चेलवा आदि एवं भक्षक मछलियाँ जैसे पढ़िन, टैंगन, सौर, गिरई, सिंधी, मांगुर आदि जो तालाब में उपलब्ध भोज्य पदार्थों को अपने भोजन के रूप में ग्रहण करती है व मांसाहारी मछलियां कार्प बच्चों को खा जाती है। जिससे मत्स्य पालन पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। इनका उन्मूलन बार–बार जाल चलाकर अथवा महुआ की खली 25 कुन्तल/हे0/मी0 दर से प्रयोग करना चाहिए। इसके परिणाम स्वरूप मृत मछलियाँ जिन्हे जाल चलाकर एकत्र करके बाजार में बेचा जा सकता है। तालाब मे महुए की खली का प्रयोग विश के अलावा 15–20 दिन बाद यह खाद का भी कार्य करती है। जिससे मछलियो के प्राकृतिक भोजन का उत्पादन होता है।

2. **जलीय उत्पादकता हेतु चूने का प्रयोगः** चूना जल की अम्लीयता व क्षारीयता को संतुलित करने के अतिरिक्त मछलियों को विभिन्न परिजीवियों के प्रभाव से मुक्त रखता है तालाब में चूने का प्रयोग मत्स्य बीज संचय से एक माह पूर्व निम्न दरो से करना चाहिए।

पी0एच0	चूने की मात्रा (किग्रा0/हे0)	पानी का प्रकार
4–4.5	1000	अत्यधिक अम्लीय
4.6–5.5	700	मध्यम अम्लीय
5.6–6.5	500	थोड़ा अम्लीय
6.6–7.5	200	तटस्थ के पास

3. **गोबर की खाद का प्रयोगः** तालाब की तैयारी में गोबर की खाद की महत्वपूर्ण भूमिका है। इससे मछली का प्राकृतिक भोजन (प्लाक्टान) उत्पन्न होता है। मत्स्य बीज संचय से 15–20 दिन पूर्व सामान्यतः 10–20 टन/हे0 /वर्श 10 समान मासिक किस्तों मे गोबर की खाद का प्रयोग करना चाहिए। यदि तालाब की तैयारी में अवांछनीय मछलियों के उन्मूलन के लिए महुआ की खली प्रयोग की गयी हो तो गोबर की पहली किस्त डालने की आवश्यकता नही है।

4. **रासायनिक खादों का प्रयोगः** सामान्यतः रासायनिक खादों में यूरिया 200 किग्रा0, सिंगल सुपर फास्फेट 250 किग्रा0 व म्यूरेट आफ पोटाश 40 किग्रा0 के कुन मिश्रण का 49 किग्रा0/हे0/माह गोबर की खाद के प्रयोग के 15 दिन बाद तालाब में डाला जाना चाहिए। यदि तालाब के पानी का रंग गहरा हरा (जो प्रकृतिक आहार का सूचक है) हो जाये तो उर्वरकों का प्रयोग तब तक बंद कर देना चाहिए जब तक पानी का रंग उचित अवस्था में न हो जाए।

5. **मत्स्य बीज संचय:** मिश्रित मत्स्य पालन हेतु तालाब में ऐसी मत्स्य प्रजातियों का पालन किया जना चाहिए, जो एक ही पर्यावरण में रहकर एक दूसरे को क्षति न पहुंचाते हुए प्रत्येक सतह पर उपलब्ध भोजन का उपयोग करते हुए तीव्र गति से बढ़ने वाली हो ताकि एक सीमित जल क्षेत्र से अधिक से अधिक मत्स्य उत्पाद सुनिश्चित हो सके। तालाब के 50 ली0 पानी में एक मिली. प्लांकटान (प्राकृतिक आहार) की उपलब्धता इस बात का द्योतक है कि मत्स्य बीज संचय किया जा सकता है।

मिश्रित मत्स्य पालन में प्रति हेक्टेयर प्रजाति अनुपात

मत्स्य बीजों का आकार	मत्स्य बीजों की कुल संख्या
50 मिमी से कम का	10000
50 मिमी से अधिक	5000

स्वभाव	प्रजाति	छः प्रजाति	चार प्रजाति	तीन प्रजाति
सतह स्तर पर रहने वाली	भाकुर सिल्वर कार्प	20 10	40	40
मध्यस्तर पर रहने वाली	श्रोहू ग्रास कार्प	30 10	30	30
तलस्तर पर रहने वाली	मृगल कामन कार्प	15 15	15 15	30

6. **मछली का आहार:** मछली की अधिक पैदावार के लिए यह आवश्यक है कि पूरक आहार ऐसा होना चाहिए जो कि प्राकृतिक आहार की भांति पोशक तत्वों से परिपूर्ण हो, परिपूरक आहार में चावल की पालिस व सरसों की खली को 1:1 तथा सोयाबीन 10–15 किग्रा एवं मिनिरल मिक्चर 2–3 किग्रा प्रति कुन्तल तैयार कर प्रति किग्रा आहार में 1–2 ग्रा0 नमक को मिलाकर कुल मछलियों के वजन के अनुसार देते हैं। जिसका विवरण निम्नवत है–

मिश्रित मछली पालन के लिए आहार मात्रा

समय अंतराल	तीन प्रजाति पालन (किग्रा/हे0)	चार प्रजाति पालन (किग्रा/हे0)	छः प्रजाति पालन (किग्रा/हे0)
प्रथम तीन माह	2.0	2.5	3.0
द्वितीय तीन माह	4.0	5.0	6.0
तृतीय तीन माह	6.0	7.5	9.0
अंतिम तीन माह	8.0	10.0	12.0
कुल मात्रा	2000	2500	3000

मिश्रित मछली पालन में मध्यम प्रबंधन एवं संतुलित आहार की सही मात्रा देने पर 2.5–3.0 टन/हे0 औसत उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

भारतीय नारी की स्थिति : एक अध्ययन

रत्न कुमार पाण्डेय
सहायक आचार्य
नेहरू ग्राम भारती मानित यूनिवर्सिटी, प्रयागराज, (उ0प्र0), भारत

' यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमंते तत्र देवता ' की उक्ति भारतीय नारी के अप्रतिम महत्व को स्वयं प्रमाणित करती है। अध्यात्म प्रधान भारतीय संस्कृति की मान्यता है कि शिव शक्ति के बिना नहीं हैं। इतिहास के आलोक में उसकी सामाजिक स्थिति में उत्थान - पतन की झलक दिखाई देती है। महिला वर्ष के व्यतीत होने के पश्चात उसकी स्थिति में यत्किंचित परिवर्तन हुआ अथवा नहीं , यह देखना भी प्रस्तुत का अभीष्ट है।

नारी स्नेह और सौम्यता की प्रतिमा है। त्याग और समर्पण की मूर्ति है। दया , करुणा और श्रद्धा की आगार है। वह देवी भी है और दानवी भी है। दुष्ट मर्दन में वह चंडी तुल्य है। संग्राम में कैकई तुल्य है। श्रद्धा में सबरी तुल्य है। सौंदर्य में दमयंती तुल्य है। सुगृहिडी में सीता तुल्य, अनुराग में राधिका तुल्य है , विद्वता में सरोजिनी नायडू तुल्य है तथा राजनीति और प्रभाव में इंदिरा गांधी तुल्य है।भारतीय नारी की स्थिति : एकअध्ययन

' यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमंते तत्र देवता ' की उक्ति भारतीय नारी के अप्रतिम महत्व को स्वयं प्रमाणित करती है। अध्यात्म प्रधान भारतीय संस्कृति की मान्यता है कि शिव शक्ति के बिना नहीं हैं। इतिहास के आलोक में उसकी सामाजिक स्थिति में उत्थान - पतन की झलक दिखाई देती है। महिला वर्ष के व्यतीत होने के पश्चात उसकी स्थिति में यदि यत्किंचित परिवर्तन हुआ अथवा नहीं , यह देखना भी प्रस्तुत का अभीष्ट है।

नारी स्नेह और सौम्यता की प्रतिमा है। त्याग और समर्पण की मूर्ति है। दया , करुणा और श्रद्धा की आगार है। वह देवी भी है और दानवी भी है। दुष्ट मर्दन में वह चंडी तुल्य है। संग्राम में कैकई तुल्य है। श्रद्धा में सबरी तुल्य है। सौंदर्य में दमयंती तुल्य है। सुगृहिडी में सीता तुल्य, अनुराग में राधिका तुल्य है , विद्वता में सरोजिनी नायडू तुल्य है तथा राजनीति और प्रभाव में इंदिरा गांधी तुल्य है। मानव जीवन में उसका महत्वपूर्ण स्थान है। नारी की उपेक्षा करके मानव जीवन एक पल भी आगे नहीं बढ़ सकता। जिस प्रकार शरीर में प्राणों के निकल जाने पर , चंद्रमा से चांदनी के दूर हो जाने पर ,कोकिल के कंठ से कुन्जन नष्ट हो जाने पर, सागर के उदार तरलता समाप्त हो जाने पर, वाटिका से पुष्पों के सूख जाने पर, सूर्य से प्रकाश की इतिश्री हो जाने पर इनका कोई अस्तित्व और सार्थकता नहीं रह जाती। उसी प्रकार मानव जीवन से नारी के अस्तित्व को अलग कर देने पर मानव जीवन जर्जर , नीरस, शुष्क और व्यर्थ हो उठता है।

भारतीय नारी संस्कृत की अनादिकाल से ही अनंत गुणों की खान रही है। भारतीय इतिहास का सर्वोदय वैदिक युग से होता है। वैदिक युग हमारे देश के बौद्धिक, आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक विकास का युग है। इस युग में हम देखते हैं कि नारी सामाजिक, धार्मिक और आध्यात्मिक क्षेत्रों में पुरुष की सहभागिनी है। वह वंदनीय है , पूजनीय और सम्मानित है। वह पुरुषों के समान ही विभिन्न प्रकार के अधिकारों का उपयोग करती है। पुरुषों के साथ वह यज्ञ में भाग लेती है। उससे शास्त्रार्थ करती है और उन्हें पराजित कर करती है। कुछ नारियाँ तो अपनी विद्वता के बल पर ऋषि का पद तक प्राप्त कर लेती हैं। मैत्रेयी, विश्ववरा , गार्गी, अनुसूया आदि उस युग की ऐसी नारियाँ हैं जो पुरुषों से किसी प्रकार हीन नहीं हैं।उल्टे और भी देदीप्यमान हैं। इस प्रकार वैदिक युग का इतिहास नारी जाति के समानाधिकारों का इतिहास है।

वैदिक युग के पश्चात भी बहुत समय तक भारतीय समाज में नारी का महत्वपूर्ण स्थान बना रहा है। युद्ध भूमि में भी स्त्रियां पुरुषों की सहायता करती हैं। राजा दशरथ के साथ कैकेई के युद्ध में जाने और रथ के पहिए की धुरी टूट जाने पर अपनी शक्ति से उसे रोके रखने का प्रसंग सभी जानते हैं। रामायण युग (त्रेता) युग की सीता, अनुसूया, सुलोचना आदि भारत की सती नारी के आदर्श हैं। मंदोदरी अपने पति परम प्रतापी राजा रावण को भी समय-समय पर सत्य परामर्श देकर सन्मार्ग पर ले जाने की चेष्टा करती है। महाभारत काल (द्वापर) में नारी चारित्रिक, सामाजिक, राजनीतिक गतिविधियों से संचालित करने वाली केंद्रीय शक्ति रखती है। शक्ति स्वरूपा द्रोपदी ही महाभारत के मूल में है। गांधारी, कुंती और द्रोपदी तत्कालीन भारतीय नारी के पत्नीत्व, मातृत्व और शक्ति के रूप में क्रमशः आदर्श है। उपनिषद्, स्मृति, पुराण, तथा संस्कृत साहित्य में नारी की अशेष महिमा का गान है। शिव की कल्पना अर्धनारीश्वर के रूप में हुई है। नारी को गृहलक्ष्मी स्वीकार करते हुए यह घोषणा की गई कि गृहिदी विहीन घर निर्जन वन समान है। मनु ने नारी को पूज्य माना है और कहा है कि --

' यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमंते तत्र देवता '

कालांतर में, युग परिवर्तन के साथ नारी की सामाजिक स्थिति में भी परिवर्तन आता है। आदर्शों की उत्तुंग शिखर पर बैठने वाली नारी पुरुष के हाथ की कठपुतली बन जाती है। वह बंद हो जाती है घर की चहारदीवारी में और गिर जाती है अशिक्षा, अज्ञान तथा जड़ता के अंधकार से। तथागत गौतम बुद्ध द्वारा नारी को सम्मान दिए जाने पर भी बौद्ध काल से भारतीय नारी के गौरव का ह्रास होने लगता है। फिर भी सामाजिक जीवन में वह स्वतंत्रता पूर्वक भाग लेती है। पुरुष को सहभागिनी और समानाधिकारिनी का उसका रूप पूर्णतः लुप्त नहीं हो पाता है। इसी बीच भारत पर मुसलमानों का तीव्र आक्रमद होता है और सम्राट पृथ्वीराज चौहान की पराजय के साथ-साथ भारतीय नारी के जीवन की करुण गाथा का इतिहास प्रारंभ होने लगता है। यवनों की काम- लोलुप दृष्टि से बचाने के लिए भारतीय नारी की रक्षा का उपक्रम होता है। उसे घर के भीतर धीरे-धीरे पर्दे के अंदर रखा जाता है। कन्या के रूप में पिता द्वारा, पत्नी के रूप में पति द्वारा और वृद्धा के रूप में पुत्र द्वारा रक्षिता नारी पुरुष पर आश्रित होती चली जाती है। किंतु भारतीय नारी का तेजस्वी और गरिमामय रूप पूर्णतः विलुप्त नहीं हो पाता। वह जौहर की ज्वाला में प्रदीप्त होता है। दुर्गावती, अहिल्याबाई आदि की तलवारों के माध्यम से चमकने लगता है। पर यह अपवाद ही है। सामान्यतः तो भारतीय नारी दृढ से दृढतर बंधनों में जकड़ती चली जाती है। शक्ति की प्रतीक भारतीय नारी अबला हो जाती है। उसकी दशा पर करुणा को भी करुणा आने लगती है। गुप्त जी की प्रसिद्ध पंक्तियाँ वस्तुतः मध्ययुगीन भारतीय नारी का सच्चा रूप प्रस्तुत करती है --

'अबला जीवन हाय तुम्हारी यहीकहानी आंचल में है दूध और आंखों में पानी।'

बेचारी अवश नारी को भक्ति, ज्ञान और वैराग्य के ज्वर में पुरुष काम की पुतली घोषित करके अपमानित करता है। संतों, नाथ, पंथियों
एवं रस सिद्ध कवियों की रचनाएं इस कथन का स्पष्ट उदाहरण हैं।क्योंकि उनकी रचनाओं में उस युग का समाज बोला है। इन लोगों ने नारी को ईश्वर प्राप्ति मोक्ष आदि में बाधक समझते हुए, उसे 'माया', ' महाठगिनी ' आदि कहा है। उत्तर मुगल काल (रीतिकाल) में नारी की स्थिति और भी गिर जाती है। देसी राजे - महाराजे, मुसलमान शासक, सामंत आदि सभी नारी को भोग की वस्तु ही मानने लगते हैं। वह केवल पुरुष की यौन भावनाओं की तृप्ति का साधन भर रह जाती है।

अंग्रेजों के संपर्क में आने के साथ-साथ भारत आधुनिक युग में प्रवेश करता है। जागरण, चेतना और विकास के इस युग में नारी का भाग्य करवट लेता है। बंगाल में राजाराममोहन राय नारी को अभिशाप मुक्त करने के लिए क्रांति का बिगुल बजाते हैं। 'उत्तर भारत में महर्षि दयानंद उसे पुरुष समानाधिकारिणी घोषित कर अनाचार के कारावास से निकालने की चेष्टा करते हैं। स्वयं राष्ट्र नायक गांधीजी उसके चतुर्मुखी विकास के लिए अथक प्रयास करते हैं।

कवि प्रसाद ने भारतीय नारी को श्रद्धेय तथा सम्मान की श्रोतस्विनी के रूप में माना है --

" नारी तुम श्रद्धा हो , विश्वास रजत नग- पग- तल में
पीयूष स्रोत सी बहा करो , जीवन के सुंदर समतल में ।। "

उस नारी का दासतमय रूप देखकर प्रत्येक प्रबुद्ध मन कांप उठता है। अपने - अपने स्तर पर सभी की वाणी विरोध के स्वर में फूट पड़ती है। कवि पंत नारी के विविध रूपों को वरेन्य मानते हुए उनकी मुक्ति का आहवान करते हुए कहते हैं --

"मुक्त करो नारी को मानव, चिर वंदिनी नारी को।
युग युग की निर्मम कारा से , जननि, सखी प्यारी को ।। "

इस प्रकार आधुनिक युग में नारी पुनः मुक्त होती है। देवी, मां , सहचारी और प्राण के रूप में उसकी पुनः प्रतिष्ठा होती है। घर की चहारदीवारी से निकलकर वह खुले वातावरण में संचरण करने लगती है। देश के राजनीतिक और सामाजिक आंदोलनों में वह सक्रिय भाग लेती है। भारतीय जीवन के उज्ज्वल आकाश में कस्तूरबा गांधी , सरोजिनी नायडू कमला नेहरू , विजयलक्ष्मी पंडित, राजकुमारी अमृत कौर , सुचेता कृपलानी , महादेवी वर्मा , सुभद्रा कुमारी चौहान , तारकेश्वरी सिंध और श्रीमती इंदिरा गांधी के नाम नक्षत्र के रूप में जगमगाने लगते हैं।

पराधीनता की कारा से मुक्त होकर जहां भारतीय नारी अपने गौरव और शालीनता की प्रतिष्ठा करके हमारी शुद्धि का भाजन बन रही है, वहीं वह पश्चिम के अंधानुकरण से भारतीय नारी के आदर्श को तिलांजलि देने की ओर भी अग्रसर हो रही है। सार्वजनिक जीवन में प्रवेश कर और आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त कर वह भोग की ओर बढ़ रही है। अतिशय भोग की प्रवृत्ति उसे फूल - फूल कर रस लेने वाली तितली का रूप दिए डाल रही है। आज की भारतीय नारी को वेशभूषा, अंगराज और केस विन्यास में अधिक समय बिताते हुए मेम साहब बनाने का शौक है। मातृत्व से उसे घृडा होने लगती है। यद्यपि भारतीय संस्कृति में मातृत्व को पत्नी या सहचरी से अधिक महत्व दिया जा रहा है। घर ऐसी जगह है जहां हमें स्नेह, आश्रय, सहानुभूति , संतोष , त्याग आदि की शिक्षा मिलती है। यही वह स्थान है , जहां समाज के वीर, राजनेता , सम्राट, योगी , तपी, संन्यासी , महात्मा , ज्ञानी, विज्ञानी जन्म लेते हैं। किन्तु आज उस उच्छृंखल नारी आजाद चिड़िया की तरह उड़-उड़ कर आनंद उठाना चाहती है। वह पुरुष का रूप धारण करके उससे होड़ लेती है। इधर गृहस्थी बढ़ती जा रही है , उधर जीविकोपार्जन में नर - नारी में प्रतिस्पर्धा बढ़ती जा रही है। नारी का पुरुष के साथ बराबरी का नाता तभी सार्थक हो सकता है जब दोनों का लक्ष्य पारिवारिक शांति संतान की देखरेख भौतिक सुख जुटाने में सहयोग और पारस्परिक प्रेम हो। आज की नारी इस ओर पर्याप्त सजग है। वह अपने अस्तित्व या महत्व के प्रति जागरुक होकर प्रयास कर रही है। इस समय आवश्यकता इस बात की है कि उसे स्पष्ट समर्थन मिले। फलस्वरूप पुरुष तथा स्त्री का समन्वित प्रयास सुखद सृष्टि की रचना करेंगे --

"जगजीवन मानव के संग, हो माननीय प्रतिष्ठित।
प्रेम स्वर्ग हो धरा मधुर, नारी महिमामंडित।
नारी सुख की नवकिरणो से, युग प्रभात हो ज्योतित।।"

भारतीय संस्कृति में नारी का उच्च स्थान है। उसे पुनः प्राप्त करने के लिए पश्चिम का अनुकरण करने से काम नहीं चलेगा। वहां तो नारी सदैव अशांत और दुखी रही है। अतः भारतीय नारी को भारतीय आदर्श सामने रखकर अपने स्वरूप की प्रतिष्ठा करनी होगी। उसे याद रखना है कि --

"मानवता की मूर्ति मती तू भव्य भाव भूषण भंडार।

दया, क्षमा, ममता की आगार विश्व प्रेम की है आधार।

तेरी करुणा साधना का माँ, है मातृत्व स्वयं उपहार। "

मृदा एवं पर्यावरण स्वास्थ्य के लिए आवश्यक फसल अवशेष प्रबंधन

राम जीत, प्रवीण कुमार मौर्य, विद्या सागर एवं प्रदीप कुमार
कृषि विज्ञान केन्द्र, पांती, अम्बेडकर नगर
(आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या), उ0प्र0

किसानों के समक्ष फसलों के अवशेष खेत में जलाने की समस्या बीते कई वर्षों से देखी जा रही है। देश में कई क्षेत्र ऐसे है जहाँ अगली फसलों की बुवाई तथा खेत तैयार करने के लिए किसान फसलों के अवशेषों को जला देते हैं। यह उन क्षेत्रों में देखा गया है जहाँ धान और गेहूँ की फसल की कटाई कम्बाइन हार्वेस्टर से की जाती है जैसे पंजाब, हरियाणा और उत्तर प्रदेश, जिससे कि बची हुई फसलों के अवशेष जलाए जाने के कारण न केवल पर्यावरण प्रदूषित हो रहा है, साथ ही साथ मिटटी में उपलब्ध कई पोषक तत्त्व नष्ट होने के कारण मिट्टी को काफी नुकसान पहुँच रहा है। यदि किसान भाई इन फसल अवशेषों को खेत में मिलाएंगे तो न केवल मिट्टी अधिक उपजाऊ होगी, बल्कि खाद पर होने वाले खर्च पर करीब दो हजार रुपये प्रति हेक्टेयर की बचत होगी। फसल अवशेष खेत में ही रहें व इन्हें जलाया न जाए, इसी योजना के प्रोत्साहन के लिए कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा किसानों को फसल अवशेष प्रबंधन मशीनरी खरीदने हेतु 50 प्रतिशत का अनुदान दिया जा रहा है एवं फसल अवशेष प्रबंधन मशीनरी के कस्टम हाईरिंग केंद्र स्थापित करने हेतु 80 प्रतिशत तक का अनुदान दिया जा रहा है।

खेत में अवशेष जलाने से हानियाँ

- जब खेत में अवशेष जलाया जाता है तो उससे मिटटी का तापमान बढ़ जाता है और कई लाभकारी सूक्ष्म जीव, लाभदायक कीट जैसे केंचुए आदि जल कर नष्ट हो जाते हैं।
- फसल अवशेष जलाने पर वातावरण में कई हानिकारक गैस जैसे कार्बन मोनोऑक्साइड, कार्बन डाईऑक्साइड, नाइट्रस ऑक्साइड की मात्रा बढ़ जाती है, इससे वातावरण प्रदूषित होता है।
- मृदा में कई जरूरी पोषक तत्त्व जैसे नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटाश व सल्फर जैसे बेहद जरूरी पोषक तत्त्व जल कर नष्ट हो जाते है।

फसल अवशेष जलाने का दुष्प्रभाव मानव के स्वास्थ्य पर भी देखा गया है जैसे कि

- फसल अवशेष जलाने पर धुएं के कारण स्मोग जैसी स्थिति पैदा हो जाती है जिससे सड़क पर वाहनों के टकराने की दुर्घटनाएँ बढ़ जाती हैं।
- ग्रीन हाउस गैसों के अधिक मात्रा में उत्सर्जन से वैश्विक तपन बढ़ रही है।
- सल्फर डाईऑक्साइड, नाइट्रस ऑक्साइड के कारण आँखों में जलन हो जाती है।
- फसल अवशेष के साथ–साथ खेत के किनारों के पेड़ों को भी आग से नुकसान पहुँचता है।
- चर्म रोग की शिकायत बढ़ना।

खेतों में फसल प्रबंधन से लाभ

किसी भी दृष्टिकोण से फसल अवशेषों को जलाना उचित नहीं है, बल्कि फसल प्रबंधन के बहुत सारे लाभ हैं,

जैसे

1. मृदा के भौतिक गुणों में सुधार

फसल अवशेषों को मिलाने से मृदा की परत में कार्बोनिक पदार्थ की मात्रा बढ़ने से मृदा की सतह की कठोरता कम होती है तथा जलधारण क्षमता एवं मृदा में वायुदृसंचरण में वृद्धि होती है।

2. मिट्टी की उर्वराशक्ति में सुधार

फसल अवशेषों को मृदा में मिलाने से मृदा के रसायनिक गुण जैसे उपलब्ध पोषक तत्वों की मात्रा, मृदा की विद्युत चालकता एवं मृदा पीएच में सुधार होता है।

3. कार्बनिक पदार्थ की उपलब्धता में वृद्धि

कार्बनिक पदार्थ ही एकमात्र ऐसा स्त्रोत है जिसके द्वारा मृदा में उपस्थित विभिन्न पोषक तत्व फसलों को उपलब्ध हो पाते हैं तथा कम्बाइन द्वारा कटाई किए गए प्रक्षेत्र उत्पादित अनाज की तुलना में ज्यादा अवशेष होते हैं। यह सड़कर मृदा कार्बनिक पदार्थ की मात्रा में वृद्धि करते हैं।

4. पोषक तत्वों की उपलब्धता में वृद्धि

अवशेषों में लगभग सभी आवश्यक पोषक तत्वों के साथ 0.45 प्रतिशत नाइट्रोजन की मात्रा पाई जाती है, जो कि एक प्रमुख पोषक तत्त्व है।

5. उत्पादकता में वृद्धि

फसल अवशेषों को मृदा में मिलाने पर आने वाली फसलों की उत्पादकता में भी काफी मात्रा में वृद्धि होती है। अतः, मृदा स्वास्थ्य पर्यावरण एवं फसल उत्पादकता को देखते हुए फसल अवशेषों को जलाने की बजाए भूमि में मिला देने से काफी लाभ होता है।

कृषि मशीनों द्वारा फसल अवशेष प्रबंधन

पुरानी कृषि पद्धति के अनुसार धान की कटाई के बाद किसान फसल के अवशेष जलाकर खेतों की बार–बार जुताई करके गेहूँ की बिजाई करते हैं, जिस पर काफी खर्च आता है। इसे कम करने के लिए जागरूक किसान जीरो ड्रील व हैप्पी सीडर के इस्तेमाल से धान की कटाई के बाद बिना जुताई, बुवाई कर सकते हैं। इससे किसानों का गेहूँ की बिजाई पर खर्च कम आएगा।

हैप्पी सीडर से बुवाई करने के लाभ

- पर्यावरण प्रदूषण जो कि काफी बड़ी समस्या बन कर हमारे जीवन को प्रभावित कर रहा है, हैप्पी सीडर मशीन इस समस्या से कुछ हद तक निजात दिलाने में सक्षम है।
- सजीवांश पदार्थ को बढ़ाने एवं मिट्टी के भौतिक और रासायनिक अवस्था में सुधार के लिए फसलों के अवशेष मिट्टी में मिलना अत्यंत लाभदायक है।
- दानों के पूर्ण विकास के लिए मृदा का तापमान दिसम्बर–जनवरी में गर्म और मार्च–अप्रैल में ठंडा होना चाहिए, फसल अवशेष ऐसा करने में सहायक साबित होते हैं।

जीरो टीलेज सीड ड्रिल द्वारा बुवाई के लाभ

- खरपतवारों के प्रकोप को कम करने के लिए इस तकनीक से बुवाई करना लाभदायक है क्योकि जुताई न करने से खरपतवारों के बीज मृदा की गहराई में पड़े रहते है और उनका अंकुरण नहीं हो पाता है।
- पानी की बचत में भी यह तकनीक अहम् भूमिका निभाती है, जैसे धान की आखिरी सिंचाई की नमी में

भी गेहूँ की बुवाई की जा सकती है जिससे पानी की बचत होगी।

- प्रदूषण को कम करने में भी अहम् है क्योकि इस मशीन से गेहूँ की बुवाई करने पर धान के अवशेषों में आग नहीं लगानी पड़ती है।

चोपर या मल्चर मशीन के लाभ

फसल अवशेषों को काटकर उसके टुकड़े करना तथा अवशेषों को समान रूप से फैलाना इस मशीन द्वारा किया जाता है। भूमि की सतह पर फसल अवशेषों की सतह बनने से खरपतवारों का प्रकोप कम किया जा सकता है और मृदा की जलधारण क्षमता व पोषक तत्वों में वृद्धि की जा सकती है।

रिवर्सिब्ल मोल्ड बोर्ड प्लो के लाभ

इस मशीन का उपयोग करके अवशेषों को मृदा में 15 से 30 से.मी. गहराई में मिलाया जाता है। मृदा की जलधारण क्षमता को बढ़ाने के लिए यह उपयोगी है।

पूसा डीकम्पोजर का उपयोग

यह भाकृअनपु–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा के वैज्ञानिकों द्वारा बनाया गया एक ऐसा छोटा कैप्सूल है, जो फसल अवशेषों को लाभदायक कृषि अपशिष्ट खाद में बदल देता है। एक कैप्सूल की कीमत सिर्पफ 4–5 रुपये है और एक एकड़ खेत के अवशेष को उपयोगी खाद में बदलने के लिए केवल 4 कैप्सूल की आवश्यकता होती है।

मिश्रण को तैयार और उपयोग करने की विधि

सबसे पहले 150 ग्राम पुराना गुड़ मिश्रण को तैयार और उपयोग करने की विधि सबसे पहले 150 ग्राम पुराना गुड लेकर इसे पानी के साथ उबाल लें। अब गुड़ उबलने के दौरान जो गंदगी बाहर आ गई हो, उसको हटा दें। घोल को ठंडा करके इसमें लगभग 5 लीटर पानी में मिलाएं। अब इसमें लगभग 50 ग्राम बेसन मिलाएं। अधिक व्यास वाले प्लास्टिक या मिट्टी के बर्तन को प्राथमिकता दें। अब 4 कैप्सूल लें और उन्हें घोल में अच्छी तरह मिलाएं। बर्तन को कम से कम 5 दिनों के लिए गर्म स्थान पर रखें। अब एक परत पानी के ऊपर जम जाएगी। उस परत को अच्छी तरह से पानी में मिला दें। इसे मिलाते समय दस्तानें पहनना और मुंह पर मास्क लगाना न भूलें। पानी में मिलाने के बाद यह घोल (लगभग 5 लीटर) उपयोग के लिए तैयार है। यह प्रति 10 क्विंटल पुआल को खाद में बदलने के लिए पर्याप्त होता है।

निष्कर्ष

जिस प्रकार हमें एक शुद्ध वातावरण प्राप्त हुआ है, हमारी जिम्मेदारी है कि आने वाली पीढ़ी का जीवन भी स्वस्थ हो इसके लिए हमें कुछ जरूरी कदम उठाने की आवश्यकता है, जैसे कि फसल अवशेषों को जलाकर नष्ट ना करना। इससे न केवल पर्यावरण प्रदूषण से बचा जा सकता है, बल्कि मृदा की उपजाऊ शक्ति तथा फसल उत्पादन को भी बढ़ाया जा सकता है। इस प्रकार हम अपनी मृदा के जीवांश पदार्थ व उर्वरा शक्ति में वृद्धि करके जमीन को खेती योग्य सरुक्षित रख सकेगें आरै उसकी उपजाऊ शक्ति को बरकरार रख सकेगें ।

''फसल अवशेष प्रबंधन उपाय अपनाएं
खेत और पर्यावरण को नुकसान से बचाएं''

पोषण वाटिका कुपोषण दूर करने का जरिया

डा0 रेखा[1], डा0 प्रदीप[2] एवं डा0 वरून[3]
[1]वि0व0वि0 (प्रसार वैज्ञानिक) के0वी0के0 अम्बेडकर नगर
[2]वि0व0वि0 (प्लान्ट पैथालाजी)के0वी0के0 अम्बेडकर नगर
[3]वि0व0वि0 कृषि अभियन्त्रण के0वी0के0 जौनपुर

पोषण वाटिका या रसोई घर या फिर गृह वाटिका उस वाटिका को कहा जाता है जो घर के आगल–बगल में घर के आंगन में ऐसी खुली जगह पर होती है। जहां पारिवारिक श्रम से परिवार के इस्तेमाल हेतु विभिन्न मौसमों फल तथा विभिन्न सब्जियॉ उगायी जाती है।

भारत वर्ष में प्रति व्यक्ति फल एंव सब्जी की उपलब्धता अन्य देशों से काफी कम है। भारत चिकित्सा अनुसंधान परिशद के आनुसार प्रति व्यक्ति की फल उपयोग की आवश्यकता 120 ग्रम तथा सब्जी की 300 ग्राम की संस्तुति की गयी है। सब्जी की 300 ग्राम मात्रा में 125 ग्राम हरी पत्ती वाली सब्जी 100 ग्रा0 वाली तथा 75 ग्रा0 अन्य सब्जियों से पूरी की जानी चाहिए। हमारे देशे में फलों एंव सब्जी की उपलब्धता प्रति व्यक्त क्रमशः 80 ग्राम तथा 130 ग्रा0 है। नियमित रूप से फलों एंव सब्जियों में विटामिन ए,वी,सी, लोहा कैल्सियम तथा फोलिका, एसिड जैसे आवश्यक पोशक तत्व मिलते है। जिन किसान भाईयों के घर के आस –पास खाली जमीन हो वह गृह वाटिका स्थापित कर बिना अधिक मेहनत या धन खर्च किये वर्श भर अपने उपयोग के लिए मौसमी, फल, सब्जियाँ का उत्पादन कर सकते है। इस गृह वाटिका में मौसमी फूलों को उगाकर घर के आस–पास के वातावरण को भी सुन्दर बनाया जा सकता है।

<u>गृह वाटिका से लाभ</u>ः–

1. घर के आस पास बेकार खाली पड़ी भूमि का समुचित उपयोग होता है वहाँ वहाँ गन्दगी नही रहती और घर के गन्दे पानी को फल सब्जियों के पौधों को सींचने के काम में लाया जा सकता है।
2. परिवार के सदस्यों के खाली समय का सदुपयोग गृह वाटिका के कार्यो मे होता है जिससे स्वस्थ रहने हेतु शारीरिक श्रम हो जाता है।
3. परिवार के सदस्यों में विटामिन व खनिज तत्वों की पूर्ति होती है। जिससे स्वस्थ एंव निरोग रहता है।
4. कमजोर किसानों की आर्थिक स्थिति एंव स्वास्थय में सुधार रहता है।
5. बचचों, किशोरियों, गर्भवती व दूध पिलाती माँ में कुपोशण की समस्या का समाधान कराता है।
6. आसपास के वातावरण को शुद्व रखता है।

मौसेमी सब्जीः–

<u>गर्मी की सब्जी की खेती</u>

1. खीरा
2. करेला
3. लौकी

4. भिण्डी
5. तरोई
6. पालक
7. चुकन्दर
8. अरवी
9. परवल

<u>बरसात की सब्जियाँ</u>:—

1. लता वाली सब्जियाँ
2. लोविया
3. टमाटर
4. बैंगन
5. करेला
6. लौकी
7. कद्दू
8. मूली
9. चौराई

<u>ठण्डी मौसम की सब्जी</u>:—

1. आलु	2. बैंगन
3. पालक	4.राजमा
5.पत्तागोभी	6.शिमला मिर्च
7.फूलगोभी	8.मूली
9.सब्जी मटर	10.गाजर
11.लहसुन	12.घुइयां
13. प्याज	14.घुइयां
15. व्रोकली	

<u>गृह वाटिका की स्थापनाः—</u>

गृह वाटिका का योगजा बनाते समय परिवार के सदस्यों की स0 तथा घर के आस—पास भूमि की उपलब्धता के आधार पर 50 X 20 मीटर, 30 X 10 मीटर क्षे0 मे गृह वाटिका स्थापित की जा सकती है। जिनके पास जमीन कम हो उन्हों अपने आंगन में या घर के दरवाने पर पपीता, अमरूद के वुक्ष के दो—दो पौधे तथा धपिया, पोदीना, पालक तथा बैंगन, टमाटर इत्यादि की कुछ क्यारियाँ लगा लेनी चाहिए।

5—6 सदस्यों वाले परिवार के लिए 30 X 15मीटर क्षे0 की स्थापाना की जा सकती है। जिससे वर्श भर फल तथा सब्जी प्राप्त की जा सकती है। जिससे वर्श भर फल तथा सब्जी प्राप्त की जा सके।

<u>सब्जियों की एक वर्शीय फसल चक (जुलाई — जून)</u>

प्लाट सं0 —

1.	भिन्डी	+	पालक	+	लौकी
2.	टमाटर	+	प्याज	+	कद्दु
3.	धनिया	+	मिर्च	+	तरोई
4.	बैंगन	+	चुकन्दर	+	लोबिया

5.	चिचिडां	+	पत्ता गोभी	+	सेम
6.	टिण्डा	+	गाजर	+	चौलाई
7.	सूरन	+	सब्जीमटर	+	अरवी
8.	मूली	+	शिमलामिर्च	+	करेला

शिमला मिर्च की वैज्ञानिक खेती

डा0 रेखा[1], डा0 प्रदीप[2] एवं डा0 वरून[3]

1वि0व0वि0 (प्रसार वैज्ञानिक) के0वी0के0 अम्बेडकर नगर

[2]वि0व0वि0 (प्लान्ट पैथालाजी)के0वी0के0 अम्बेडकर नगर

[3]वि0व0वि0 कृषि अभियन्त्रण के0वी0के0 जौनपुर

सब्जियों में शिमला मिर्च की खेती का एक महात्वपूर्ण स्थान है। आकर तथा तीखापन में यह मिर्च से भिन्न होती है इसके फल गूदेदार, मांसल, मोटा, घएटीनुमा, कही से उभरा तो कही से नीचे दबा हुआ होता है। शिमला मिर्च की लगभग सभी किस्मों में तीखापन अन्यंत कम या नही के बराबर पाया जाता है। इसमें मुख्य रूप से विटामिन ए और सी की मात्रा अध्पिाक होती है। एसलिए इसको सब्जी के रूप में उपयोग किया जाता है।

उपयुक्त जलवायुः– यह नर्म जलवायु की फसल है। हमारे देश में जिन क्षेत्रों में शीत ऋतु में तापमान 10 डिग्री सेल्सियस से अक्सर नीचे नही जाता एंव ठंउ का प्रभार बहुत कम दिनों के लिये रहने के कारण इसकी वर्शभर फसलें ली जा सकती है। इसकी अच्छी वृद्धि एंव विकास के लिये 21 से 25 डिग्री सेल्सियस तापक्रम उपयुक्त रहता है। पाजा इयके लिये हानिकारण होता है। ठंडे मौसम में इसके फुल कम लगते है, फल छोटे, कड़े एंव टेड़े मेढ़े आकार के हो जाते हैं तथा अधिक तापक्रम (33 डिग्री सेल्सियस से अधिक) होने से भी इसके फूल झड़ने लगते है।

भूमि का चयन :– इसकी खेती के लिये अच्छे जल निकास वाली चिकनी मिट्टी जिसका पीएच मान 6 से 6.5 हो सर्वोत्तम माना जाता है। वही बलुई दोमट मिट्टी में भी अधिक खाद डालकर और सही समय व उचित सिंचाई प्रबंधन द्वारा खेती की जा सकती है

भूमि की सतह से नीचे क्यारियाँ की अपेक्षा इसकी खेती के लिये जमीन की सतह से ऊपर उटी एंव समतल क्यारियाँ ज्यादा उपयुक्त मानी जाती है।

उन्नत किस्में :– शिमला मिर्च की अनेक उन्न्त संकर किस्में है। लेकिन इसके उत्पादक भाइयों को अपने क्षेत्र की प्रचलित तथा अधिक उत्पादन देने वाली के सथा रोग प्रतिरोध किस्मों का चयन करना चाहिए। प्रमुख किस्मों में अर्का गौख, अर्का मोहनी, किंग आर्फनार्थ

कैलोफोर्निया वांडर अर्का बसंत, ऐश्वर्या, अलंकार अनुपम, हरी रानी, पूसा दिप्ती, ग्रीन गोल्डन हीरा, इंद्रा आदि है।

खाद एंव उर्वरक :– खेत की तैयारी के समय 25 से 30 टन गोबर की सड़ी खाद या कंपोस्ट खाद डालना चाहिए। आधार खाद के रूप में रोपाई के समय 6 किलोग्रम नत्रजन, 60 से 80 किलोग्राम सल्फर और 40 से 60 किलोग्राम पोटाश डालना चाहिये तथा 60 किलोग्राम नत्रजन को दो भागों में बाटकर खड़ी फसल में रोपाई के 30 एवं 55 दिन बाद टॉप ड्रेसिंग के रूप में बुरकना चाहिये।

श्री अन्न (मोटे अनाजों) का मानव जीवन में महत्व

डॉ0 राम जीत[1], डॉ0 विद्या सागर[2], डॉ0 प्रवीण कुमार[3], डॉ0 प्रदीप कुमार[4] एवं डॉ0 राम गोपाल यादव[5]

वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष[1], सह प्रा0 / वि0व0वि0 (पशु विज्ञान)[2], वि0 व0 वि0, उद्यान[3],
सहा0 प्रा0 / वि0व0वि0 (फसल सुरक्षा)[4], वि0व0वि0 (सस्य विज्ञान)[5]
, कृषि विज्ञान केन्द्र पांती, पोस्ट मंशापुर– 224168, अम्बेडकरनगर, उ0प्र0

आधुनिक के इस दौड़ में न सिर्फ खानपान की व्यवस्था में परिवर्तन आया है बल्कि,–खेती किसानी भी बदल गई है। ज्यादा नहीं, आज से सिर्फ तीन–चार दशक पहले हमारे खाने की परंपरा बिल्कुल अलग थी। हम सभी गाँव में ही पैदा होने वाली पौष्टिक खाद्य पदार्थो का सेवन करते थे। हमारी थाली का अधिकांश भाग हमारे खेत से ही आता था जो की पूर्णतया शुद्व एवं पौष्टिक होता था। हमारे भोजन में ज्वार, बाजरा, रागी (मडुआ), सवां, कोदों जैसे मोटे अनाजों का पूर्ण समावेश था और बरसात से बेपरवाह रखता था। लेकिन, देखते ही देखते हमने गेहूं व चावल को अपनी थाली में सजा लिया और मोटे अनाज को खुद से दूर कर दिया। जिस अनाज को हमारी कई पीढ़ियां खाते आ रही थी,उससे हमने मुहं मोड़ लिया और आज हम आधुनिकता की होड़ में बाजार बाजार आधारित खाद्य पदार्थों की तरफ ज्यादा आकर्षित होते है। यही कारण है कि हमारा पेट तो भर रहा है परन्तु हमें सही पोषण नहीं मिल पा रहा है और हमारी कमाई का एक बड़ा हिस्सा बीमारियों के इलाज में खर्च हो रहा है।

इसलिए आज आवश्यकता है कि पोषण में भूरपूर मोटे अनाजों को फिर से थाली में वापस लाकर इसपर भूली फसल का टैग हटायें। पोषण से भूरपर पारंपरिक मोटे अनाज गरीबों की पौष्टिक भोजन की जरूरतों खेती दूसरी फसलों के मुकाबलों आसानी से की जा सकती है। इसमें कीट व्याधियों का प्रकोप भी कम होता है।

मोटे अनाजों की इन्ही सब विशेषताओं को देखते हुए इसको ''श्री–अन्न'' नाम दिया गया है। यह कीट पंतगों से होने वाले रोगों से भी बचे रहते हैं। यही कारण है कि पिछले कुछ वर्षों से मोटे अनाजों को हमारी थाली में वापस लाने हेतु ठोस वैश्विक प्रयास किये जा रहे है। मोटे अनाजों के मूल्य संवर्धन तकनीकी विकसित करने पर तेजी से काम किया जा रहा है। मोटे अनाजों से नूडल्स, सेवाई, पास्ता, मैक्रोनी, बिस्कुट, दलिया, चूरा आदि बनाने की तकनीकी विकसित की जा चुकी है। साल 2023 को भारत में 'ईयर ऑफ मिलेट्स' के रूप में मनाया गया था। भारत के प्रस्ताव को स्वीकार करते हुए संयुक्त राष्ट्र ने साल 2023 को 'इटरनेशनल ईयर मिलेट्स' के रूप में मनाने का फैसला किया है।

मोटे अनाजों का प्रकार–

मोटे अनाजों (पौष्टिक अनाजों) को तीन भागों में बांटा गया है। पहला प्रमुख मोटे अनाज ;डरवत डपससमजेद्ध जिसमें ज्वार, बाजरा, रागी आते है तथा दूसरे लघु या गौण मोटे ;डरवत डपससमजेद्ध में सावां, कोदो, कुटकी, काकुन (कांगनी), चेना (जेठी सावां) आते है। तीसरे प्रकार में पौष्टिकता के दष्टी से कुछ अन्य फसलों को रखा गया है जिनको छद्रा अनाज ;च्मेनकव ब्मतमंसेद्ध कहते है इसमें राम दाना एवं कुट्टू आते है।

मोटे अनाजों की पोषण विशेषता–

कुपोषण की मुश्किल चुनौती, जो एक बड़ी आबादी को घेरे हुए है, उसमें छुटकारा पाने का सबसे कारगर तरीका है मोटे अनाजों का सेवन क्योंकि मोटे अनाज पोषक तत्वों का भंडार है। चावल और गेहूँ की तुलना में इनमें अधिक पोषक तत्व पाए जाते है। मोटे अनाजों में बीटाकैरोटीन,– नाइयासिन, विटामिनबी–6 फोलिक एसिड, कैल्सियम, पोटेशियम, मैग्रीशियम, जिंक आदि खनिज लवण और विटामिन प्रचुर मात्रा में पाए जाते है। स्वास्थ्य की दृष्टि से बेहद फायदेमंद रेशा भरपूर मात्रा में पाया जाता है। पोषण और स्वास्थ्य की दृष्टि से इसके फायदों के कारण ही इन्हे सुपरफूड भी कहा जाता है। इनका सेवन वजन कम करने, शरीर में उच्च रक्तचाप और अत्यधिक कोलेस्ट्राल को कम करने, हदय रोग, मधुमेह और कैंसर जैसे रोगों के जोखिम को कम करने के साथ–साथ कब्ज और अपच से भी निजात दिलाने में मदद करता है।

चावल एवं गेहूँ की तुलना में मोटे अनाजों का पोषक मान–

मोटे अनाजों का प्रकार	प्रोटीन	कार्बोहाइड्रेट	रेशा	वसा	कैल्सियम	आयरन	कापर
ज्वार	9.97	67.66	10.22	1.73	27.60	3.95	0.45
बाजरा	10.96	61.78	11.49	5.43	27.35	6.42	0.54
रागी	7.16	66.82	11.18	1.92	363.00	4.62	0.67
सावां	6.20	65.55	4.40	2.20	11.00	15.20	0.60
कोदो	8.92	66.19	6.39	2.55	15.27	2.34	0.26
कुटकी	8.92	65.55	6.39	2.55	16.00	1.26	0.34
काकुन	12.30	60.09	8.00	4.30	31.00	2.80	1.40
चेना	12.50	12.50	70.04	2.20	1.10	14.00	0.80
चावल (धान)	7.94	78.24	2.81	0.52	7.49	0.002	0.23
गेहूँ आंटा	10.36	74.27	2.76	0.76	30.40	1.77	0.17

प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, रेशा, वसाः ग्राम प्रति 100 ग्राम भार
कैल्सियम, आयरन एवं कापरः मिलीग्राम प्रति ग्राम भार

सावां Barn Yard Millet (Echniochloa furmentacea)

उपयोग एवं विशेषताः–

इसके दाने में अयारन एवं मैगनीसियम प्रचुर मात्रा में पाया जाता है जिसकों अधिकतर चावल के रूप में खाया जाता है। यह मधुमेह (डायबीटीज) रोगियों हेतु लाभप्रद है। इसमें अधिक मात्र में रेशा पाया जाता है जिस कारण पेट के लिए लाभदायक है। वर्षा आधारित क्षेत्रों के लिए काफी उपयोगी फसल है।

कोदो (Passpalum scrobiculetum)

उपयोग एवं विशेषताः–

कोदो अधिक पोषकता युक्त खरीफ सीजन की एक प्रमुख फसल है। इसके अनाज (दाने) को चावल के रूप में खाते है जो की मधुमेह (डायबीटीज), उच्च रक्तचाप तथा हदय रोगियों के लिए लाभदायक है। वर्षा आधारित क्षेत्रों के लिए काफी उपयोगी फसल है।

रागी / मडुआ Finger Millet (Eleusine coracana)

उपयोग एवं विशेषताः—

कैल्सियम से भरपूर रागी खरीफ सीजन की एक प्रमुख फसल है इसके अनाज (दाने) को आंटे के रूप में खाते है जो कि मधुमेह (डायबीटीज), उच्च रक्तचाप, हदय रोगियों तथा पेट के रोगियों के लिए लाभदायक है। वर्षा आधारित क्षेत्रों के लिए काफी उपयोगी फसल है।

कुटकी Little Millet (Panicum sumatrense)

उपयोग एवं विशेषताः—

इसके दाने में फॉस्फोरस, आयरन एवं मैगनीशियम तथा विटामिन बी3की अच्छी मात्रा पायी जाती है। जिसकों अधिकतर चावल के रूप में खाया जाता है। यह मधुमेह (डायबिटीज), तथा हदय रोग के लिए लाभप्रद। वर्षा आधारित एवं कम उपजाऊ भूमि के लिए उपयुक्त है।

कांगनी / काकुन Foxtail Millet(Setaria italiac)

उपयोग एवं विशेषताः—

इसके दाने में विटामिन बी1 बी.2 तथा कैल्शियम अच्छी मात्रा में पाया जाता है जिसकों अधिकतर चावल के रूप में खाया जाता है। यह मधुमेह (डायबिटीज), नर्वस सिस्टम, त्वचा, बालों एवं हड्डियों के लिए लाभप्रद। वर्षा आधारित एवं कम उपजाऊ के लिए उपयुक्त है।

जेठी सावां / चेना Porso Millet(Panicum miliaceum)

उपयोग एवं विशेषताः—

इसके दाने में फॉस्फोरस, मैगनीज एवं जिंक, विटामिन बी.6 तथा रेशा की अच्छी मात्रा पायी जाती है। इसको अधिकतर चावल के रूप में ही खाया जाता हैं यह उच्च रक्तचाप, स्त्री रोग तथा हदय रोग के लिए लाभप्रद। उत्तर प्रदेश में इसकी खेती जायद में की जाती है।

ज्वार Sorghum (Sorghum vulgare L.)

उपयोग एवं विशेषताः—

कार्बोहाइड्रेट से भरपूर ज्वार खरीफ सीजन की एक प्रमुख फसल हैं इसके अनाज को आटे (दाने) के रूप में प्रयोग किया जाता है पौधा पशुओं को हरे चारे के रूप में प्रयोग करते है। जलन मोटापा, गैस, घाव, बवासीर तथा रक्तपित्त को नष्ट करता है। दाने पौस्टिक, पाचक, खून साफ करने वाले तथा कफ आदि रोगियों के लिए लाभदायक हैं। वर्षा आधारित क्षेत्रों के लिए उपयोगी फसल है।

बाजरा Pearl Millet (Pennisetum glaucum)

उपयोग एवं विशेषताः—

बाजरा खरीफ सीजन की एक प्रमुख फसल है जिसमें कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, फाइबर जैसे पोषक तत्व पाये जाते है। इसके अनाज को (दाने) आटे के रूप में प्रयोग किया है तथा पशुओं को हरे चारे के रूप में भी खिलाया जाता है। बाजरे के प्रयोग से कब्ज दूर होता है। तथा यह रक्तचाप और कोलेस्ट्राल को कम में लाभदायक है।

वैज्ञानिक तथ्यों पर हो विज्ञान–गल्प–लेखन

संजय गोस्वामी
यमुना जी, 13–एख नगर, मुम्बई – 94
²वि0व0वि0 (प्लान्ट पैथालाजी)के0वी0के0 अम्बेडक

वैज्ञानिक तथ्यों की अतिशय अतिरंजना करने वाली कथाएं या कि अविज्ञान को स्थापित करती प्रतीत होने वाली कथाएं बच्चों के ज्ञान को संवर्धित तो नहीं, करतीं, अपितु उन्हें दिग्भ्रमित अवश्य करती हैं।चंदा मामा विषयक लोरियां और परीकथाओं, आदमी की बोली.बानी में बतियाने जानवरों आदि की कथाएं सुनकर और आगे चलकर उन्हें पढकर बच्चा बडा होता है। सारी दुनिया की भाषाओं में लोककथाओं की भरमार है तो क्या उन कथाओं के वैचित्र्य का संसार विज्ञान है पुराकथाओं या कि लोककथाओं में नैतिक जीवन-मूल्यों की तलाश तो की जा सकती है, पर विज्ञान की नहीं।आज से प्रायः 20 वर्ष पूर्व विज्ञान कथाओं की शतकीय यात्रा के संधान क्रम में जब बाल विज्ञान कथाओं पर मैंने कार्य आरंभ किया तो इन्हीं विसंगतियों पर प्रख्यात वैज्ञानिक डॉ. आत्माराम से विमर्श किया। उन्होंने लिखाः परीकथाओं के मोहजाल से निकालकर अपने आसपास को जानने.समझने की भूख बच्चों में जगाना बहुत बडा काम है। तभी आज के बच्चे बड़े होकर इस वैज्ञानिक युग की जटिलताओं से जूझ सकेंगे।

विज्ञान गल्पकारों का दायित्व रंजन.मनोरंजन के साथ अंधकार की कारा का निवारण भी है यह अपने आप में युक्ति.युक्ति है ण्विज्ञान कथाओं के अधिष्ठाता वर्न जब अवसान की ओर अग्रसर थे, तभी विज्ञान कथाकाश में एक ब्रितानी नक्षत्र एचण्जीण वेल्स उभरा, जिसने इस विधा को त्वरा तो दी ही वर्न की परंपरा का नैरंतर्य भी भंग न होने दिया। वस्तुतः आधारभूमि के लिए जो विचार. सरणियाँ निर्मित कींए वे ही आगे चलकर विज्ञान कथाओं की निमित्त बनींए फलस्वरूप दुनिया की तमाम भाषाओं में विज्ञान कथाएँ लिखी जाने लगीं।वर्न और वेल्स ने जिन भावभूमियों पर अपने गल्प संसार का ताना-बाना बुना उन्हीं थीमों पर ही भावी रचनाकारों ने गल्प लिखे। यह परंपरा विगत में तो थी ही आज भी बनी हुई है, जबकि इस अवधि में नाना ऐसे वैज्ञानिक तथ्यों का रहस्योद्घाटन हो चुका है जिन्हें विज्ञान.गल्पों का आधार बनाना हास्यास्पद तो है ही विज्ञानसम्मत भी नहीं है। मेरी डब्ल्यू. शेली (1797-1851 कृत फ्रैंकेंस्टाइन आधुनिक काल का प्रथम विज्ञान गल्प है। कथानायक फ्रैंकेंस्टाइन अपने संजीवनी मंत्र के सहारे निष्प्राण देह में प्राण का संचार करने में सफलीभूत हो जाता है लेकिन इस उपक्रम के बाद जो जीवधारी प्रकट होता है उसे देखकर फ्रैंकेंस्टाइन के होश फाख्ता हो जाते हैं। वास्तव में उसकी सर्जना की परिणति एक नर पिशाच के रूप में होती है।यद्यपि शेली विज्ञान में दीक्षित तो नहीं थीए फिर भी हमें उसकी कल्पनाशीलता, भावप्रवणता की सराहना करनी ही होगी। उसने अपने गल्प में निष्पाप्ति दी कि नैसर्गिक नियमों के

विरुद्ध कोई बी मानवीय प्रयास विफल ही होगा। उसके गल्प में आधुनिक विश्वामित्रों के विफल प्रयासों की स्पष्ट इंगिति है। मानव क्लोन बनाने के दुष्प्रयासों में तल्लीन आधुनिक मनुपुत्रों के लिए शेली ने आज से प्रायः दो शतियों पूर्व ही स्पष्ट संदेश दे दिया था। आज हम शेली की चर्चा किए बिना विज्ञान कथाओं पर विमर्श आरंभ ही नहीं कर सकते। शेली ने सामाजिक सरोकारों के दृष्टिगत एक कथा लिखी जिससे समाज में विद्रूपता न पनपेए विज्ञान के दुरूपयोगों से उपजी विसंगति की भी उसने इंगिति की थीए विज्ञानियों के लिए उसने अपनी कृति के माध्यम से एक लक्ष्मण रेखा भी खींची जिसका अतिरेक अहमन्यता है। शेली अपनी स्थापनाओं में पूर्णतः सफल रही है।शेली के बाद सुदीर्घ अवधि तक विज्ञान गल्प के क्षेत्र में शून्य ही शून्य व्याप्त है। 'फाइव वीक्स इन बैलू' (1863) के साथ फ्रेंच लेखक जूल्स वर्न का पर्दापण होता है जिन्हें इस विधा के कुशल शिल्पी होने और विज्ञान कथाओं के संस्थापक का श्रेय है। यद्यपि इस क्षेत्र में अचानक नाटकीय ढंग से उनका प्रवेश हुआ था। उन्होंने वैज्ञानिक तथ्यों में थोड़ी अतिरंजना करके कैशोर्य वय के पाठकों के लिए दर्जनों उपन्यास लिखे जिन्हें आबाल वृद्ध सभी पाठकों ने सराहा। उनके उपन्यासों पर फिल्में भी बनीं।विज्ञान कथाओं के अधिष्ठाता वर्न जब अवसान की ओर अग्रसर थे तभी विज्ञान कथाकाश में एक ब्रितानी नक्षत्र एच. जी. वेल्स उभरा जिसने इस विधा को त्वरा तो दी ही वर्न की परंपरा का नैरंतर्य भी भंग न होने दिया। वस्तुतः आधुनिक काल में वर्न और वेल्स ने विज्ञान कथाओं की निमित्त बनींए फलस्वरूप दुनिया की तमाम भाषाओं में विज्ञान कथाएं लिखी जाने लगीं।'कालयंत्र' की सैर और 'अदृश्य मानवः' परंपराएं और विसंगतियांवर्न और वेल्स ने जिन भावभूमियों पर अपने गल्प संसार का ताना.बाना बुना, उन्हीं थीमों पर ही भावी रचनाकारों ने गल्प लिखे। यह परंपरा विगत में तो थी ही, आज भी बनी हुई है जबकि इस अवधि में नाना ऐसे वैज्ञानिक तथ्यों का रहस्योद्घाटन हो चुका है जिन्हें विज्ञान गल्पों का आधार बनाना हास्यास्पद तो है हीए विज्ञान सम्मत भी नहीं है। लेकिन विज्ञान कथाकार इस व्यामोह से विरत नहीं हो सके हैं।वेल्स ने अपने प्रथम विज्ञान गल्प 'टाइम मशीन :1895 में एक ऐसे यंत्र की परिकल्पना की जिस पर सवार होकर भूत और भविष्य में झांका जा सकता है। यह परिकल्पना नवीन और रोमांचक थी अतः उसे पाठकों ने हाथों हाथ लिया और रातों रात वेल्स तक भी लिखे गए और आज तक भी लिखे जा रहे हैं। भूत और भविष्य के लोंकों का सैर कराने वाली ऐसी मशीन आज तक तो नहीं बन सकी है और भविष्य में बन पायेगी, इसकी भी संभावना नहीं है क्योंकि यह परिकल्पना वैज्ञानिक नियमों के किसी भी खांचे में फिट नहीं होती। लेकिन अभी तक गल्पकार 'काल यात्रा' रत हैं। निस्संदेह विज्ञान.गल्प लेखन एक ऐसी सरस और रोचक विधा है जो बच्चों की जिज्ञासाओं का समाधान करने के साथ.साथ ज्ञान के नए.नए गवाक्ष खोलने में सक्षम है बशर्ते वैज्ञानिक तथ्यों का अतिरेक न हो।